प्राचीन काव्य

स्वरूप, शैली एवं परम्परा

(Ancient Poetry: Form, Style and Tradition)

राम पाल सिंह

प्राचीन काव्य :
स्वरूप, शैली एवं परंपरा

प्राचीन काव्य :
स्वरूप, शैली एवं परंपरा
(Ancient Poetry:
Form, Style and Tradition)

राम पाल सिंह

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5462-8

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

काव्य, कविता या पद्य, साहित्य की वह विधा है, जिसमें किसी कहानी या मनोभाव को कलात्मक रूप से किसी भाषा के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। भारत में कविता का इतिहास और कविता का दर्शन बहुत पुराना है। इसका प्रारंभ भरतमुनि से समझा जा सकता है। कविता का शाब्दिक अर्थ है, काव्यात्मक रचना या कवि की कृति, जो छन्दों की शृंखलाओं में विधिवत बांधी जाती है।

कविता या काव्य क्या है इस विषय में भारतीय साहित्य में आलोचकों की बड़ी समृद्ध परंपरा है– आचार्य विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ, पंडित अंबिकादत्त व्यास, आचार्य श्रीपति, भामह आदि संस्कृत के विद्वानों से लेकर आधुनिक आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा जयशंकर प्रसाद जैसे– प्रबुद्ध कवियों और आधुनिक युग की मीरा महादेवी वर्मा ने कविता का स्वरूप स्पष्ट करते हुए अपने-अपने मत व्यक्त किए हैं। विद्वानों का विचार है कि मानव हृदय अनन्त रूपतामक जगत के नाना रूपों, व्यापारों में भटकता रहता है, लेकिन जब मानव अहं की भावना का परित्याग करके विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है, तब वह मुक्त हृदय हो जाता है। हृदय की इस मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी, जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। कविता मनुष्य को स्वार्थ सम्बन्धों के संकुचित घेरे से ऊपर उठाती है और शेष सृष्टि से रागात्मक संबंध जोड़ने में सहायक होती है। काव्य की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं। ये परिभाषाएं आधुनिक हिंदी काव्य के लिए भी सही सिद्ध होती हैं। काव्य सिद्ध चित्त को

अलौकिक आनंदानुभूति कराता है तो हृदय के तार झंकृत हो उठते हैं। काव्य में सत्यं शिवं सुंदरम् की भावना भी निहित होती है। जिस काव्य में यह सब कुछ पाया जाता है, वह उत्तम काव्य माना जाता है।

सामान्यत: संस्कृत के काव्य-साहित्य के दो भेद किये जाते हैं- दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य शब्दों के अतिरिक्त पात्रों की वेश-भूषा, भावभंगिमा, आकृति, क्रिया और अभिनय द्वारा दर्शकों के हृदय में रसोन्मेष कराता है। दृश्यकाव्य को 'रूपक' भी कहते हैं, क्योंकि उसका रसास्वादन नेत्रों से होता है। श्रव्य काव्य शब्दों द्वारा पाठकों और श्रोताओं के हृदय में रस का संचार करता है। श्रव्यकाव्य में पद्य, गद्य और चम्पू काव्यों का समावेश किया जाता है। गत्यर्थक में पद् धातु से निष्पन 'पद्य' शब्द गति की प्रधानता सूचित करता है। अत: पद्यकाव्य में ताल, लय और छन्द की व्यवस्था होती है। पुन: पद्यकाव्य के दो उपभेद किये जाते हैं–महाकाव्य और खण्डकाव्य। खण्डकाव्य को 'मुक्तकाव्य' भी कहते हैं।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**काव्य**	**1**
	परिचय	2
	काव्य का प्रयोजन	3
	काव्य परिभाषा	4
	काव्य के भेद	4
	प्रबंध काव्य	5
	शैली के अनुसार काव्य के भेद	6
	काव्य का इतिहास	6
	प्राचीनता	8
	परिचय	9
	काव्य-सम्प्रदाय	14
	काव्य-लक्षण	17
2.	**संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास**	**18**
	काव्यशास्त्रीय वैदिक परम्परा	19
	काव्यशास्त्रीय लौकिक परम्परा	21
	प्राचीन युग	22
	भामह	23

दण्डी 23
भट्टोदभट्ट 24
वामन 24
रुद्रट 24
मध्य युग 25
भोजराज 28
मम्मट 28
रुय्यक 29
वाग्भट 29
हेमचन्द्र 30
अमरचन्द्रसूरि 30
जयदेव 30
वाग्भट द्वितीय 31
विद्याधर 31
विद्यानाथ 31
विश्वनाथ 31
केशवमिश्र 32
भानुदत्त मिश्र 32
रूपगोस्वामी 32
अप्पय दीक्षित 32
पण्डितराज जगन्नाथ 33
आधुनिक युग 33
आचार्य हरिप्रसाद 34
चिरंजीव भट्टाचार्य 34
भट्टदेवशंकर पुरोहित 34
आचार्य कृष्णशर्मा 35
आचार्य नरसिंह कवि 35
आशाधर भट्ट 35
आचार्य अच्युतरामशर्मा 'मोडक' 36
3. रस (काव्य शास्त्र) 50
विभिन्न सन्दर्भों में रस का अर्थ 51

रस के प्रकार 51
अनुभाव 54
हास्य रस 60
शान्त रस 61
4. संस्कृत काव्य की परम्परा 63
लौकिक काव्य की उत्पत्ति 63
महाकाव्य का लक्षण 64
एकाक्षरपाद 68
5. महाकाव्य 71
महाकाव्य के लक्षण 71
महाकाव्य के सम्बन्ध में पश्चिमी मत 73
कथावस्तु 73
पात्र 74
प्रयोजन और प्रभाव 74
भाषा, शैली और छंद 74
सारांश 75
संस्कृत महाकाव्यों की उत्पत्ति एवं विकास 76
महाकाव्य की विशेषताएँ 79
महाकाव्य के लक्षण 80
कुमारसम्भव 82
पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार 82
प्रयोजन और प्रभाव 84
उदात्त कथानक 85
6. संस्कृत के महाकाव्य 86
संस्कृत के महाकाव्य 86
हिन्दू कालगणना के अनुसार रचनाकाल 87
राम कथा 87
संक्षेप में रामायण-कथा 88
महाभारत 97
मूल काव्य रचना इतिहास 97
अवस्थाएँ 98

महाभारत कालीन सरस्वती नदी	100
प्रारम्भिक चार अवस्थाएँ	101
भंडारकर संस्थान द्वारा	101
ऐतिहासिक एवं भाषाई प्रमाण	102
ग्रन्थ लेखन की कथा	104
पृष्ठभूमि और इतिहास	105
पाण्डवों का जन्म तथा लाक्षागृह षडयंत्र	107
द्रौपदी स्वयंवर	108
इन्द्रप्रस्थ की स्थापना	108
द्रौपदी का अपमान और पाण्डवों का वनवास	109
शांतिदूत श्रीकृष्ण, युद्ध आरंभ तथा गीता-उपदेश	110
भीष्म और द्रोण वध	111
कर्ण और शल्य वध	111
भीमसेन द्वारा दुर्योधन का वध	112
तृतीय सर्ग	118
चतुर्थ सर्ग	120
पंचम सर्ग	122
षष्ठ सर्ग	124
सप्तम सर्ग	125
अष्टम सर्ग	126
नवम सर्ग	127
दशम सर्ग	128
एकादश सर्ग	129
बीसवाँ सर्ग	136
इक्कीसवाँ सर्ग	136
बाइसवाँ सर्ग	137
तेइसवाँ सर्ग	137
चौबीसवाँ सर्ग	138
पच्चीसवाँ सर्ग	138
वैराग्य का कारण	141

संरचना 143
अष्टाध्यायी और भट्टिकाव्य 145
भट्टिकाव्य और जावा भाषा का रामायण 145
किरातार्जुनीयम् की कथा 161
नीति 163
काव्यसौन्दर्य एवं अर्थ गौरव 164
7. संस्कृत के प्राचीन कवि 172
वाल्मीकि 172
दीमक या चींटियों की बाँबी 173
वेद व्यास का योगदान 177
अश्वघोष 179
व्यक्तित्त्व तथा कर्त्तव्य 181
8. कालिदास 183
समय 184
प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व का मत 184
चतुर्थ शताब्दी ईसवी का मत 184
अभिव्यंजना 191
कालिदास जी की रचनाओं की खास बातें 191
आधुनिककाल में कालिदास 192
गाथाएँ 193

1

काव्य

काव्य, कविता या पद्य, साहित्य की वह विधा है, जिसमें किसी कहानी या मनोभाव को कलात्मक रूप से किसी भाषा के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। भारत में कविता का इतिहास और कविता का दर्शन बहुत पुराना है। इसका प्रारंभ भरतमुनि से समझा जा सकता है। कविता का शाब्दिक अर्थ है, काव्यात्मक रचना या कवि की कृति, जो छन्दों की शृंखलाओं में विधिवत बांधी जाती है।

काव्य वह वाक्य रचना है, जिससे चित्त किसी रस या मनोवेग से पूर्ण हो अर्थात् वह, जिसमें चुने हुए शब्दों के द्वारा कल्पना और मनोवेगों का प्रभाव डाला जाता है। रसगंगाधर में 'रमणीय' अर्थ के प्रतिपादक शब्द को 'काव्य' कहा है। 'अर्थ की रमणीयता' के अंतर्गत शब्द की रमणीयता (शब्दालंकार) भी समझकर लोग इस लक्षण को स्वीकार करते हैं पर 'अर्थ' की 'रमणीयता' कई प्रकार की हो सकती है। इससे यह लक्षण बहुत स्पष्ट नहीं है। साहित्य दर्पणाकार विश्वनाथ का लक्षण ही सबसे ठीक जँचता है। उसके अनुसार 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है'। रस अर्थात् मनोवेगों का सुखद संचार की काव्य की आत्मा है।

काव्य प्रकाश में काव्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य और चित्र। ध्वनि वह है, जिसमें शब्दों से निकले हुए अर्थ (वाच्य) की अपेक्षा छिपा हुआ अभिप्राय (व्यंग्य) प्रधान हो। गुणीभूत ब्यंग्य वह है, जिसमें गौण हो। चित्र या अलंकार वह है, जिसमें बिना ब्यंग्य के चमत्कार हो। इन तीनों को क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम भी कहते हैं। काव्यप्रकाशकार का जोर छिपे

हुए भाव पर अधिक जान पड़ता है, रस के उद्रेक पर नहीं। काव्य के दो और भेद किए गए हैं, महा काव्य और खंड काव्य। महा काव्य सर्गबद्ध और उसका नायक कोई देवता, राजा या धीरोदात्त गुंण संपन्न क्षत्रिय होना चाहिए। उसमें शृंगार, वीर या शांत रसों में से कोई रस प्रधान होना चाहिए। बीच बीच में करुणा, हास्य इत्यादि और रस तथा लोगों के प्रसंग भी आने चाहिए। कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए। महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चंद्र, रात्रि, प्रभात, मृगया, पर्वत, वन, ऋतु, सागर, संयोग, विप्रलम्भ, मुनि, पुर, यज्ञ, रणप्रयाण, विवाह आदि का यथास्थान सन्निवेश होना चाहिए। काव्य दो प्रकार का माना गया है, दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य वह है, जो अभिनय द्वारा दिखलाया जाय, जैसे–नाटक, प्रहसन, आदि जो पढ़ने और सुनेन योग्य हो, वह श्रव्य है। श्रव्य काव्य दो प्रकार का होता है, गद्य और पद्य। पद्य काव्य के महाकाव्य और खंडकाव्य दो भेद कहे जा चुके हैं। गद्य काव्य के भी दो भेद किए गए हैं- कथा और आख्यायिका। चंपू, विरुद और कारंभक तीन प्रकार के काव्य और माने गए हैं।

परिचय

सामान्यत: संस्कृत के काव्य-साहित्य के दो भेद किये जाते हैं- दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य शब्दों के अतिरिक्त पात्रों की वेश-भूषा, भावभंगिमा, आकृति, क्रिया और अभिनय द्वारा दर्शकों के हृदय में रसोन्मेष कराता है। दृश्यकाव्य को 'रूपक' भी कहते हैं, क्योंकि उसका रसास्वादन नेत्रों से होता है। श्रव्य काव्य शब्दों द्वारा पाठकों और श्रोताओं के हृदय में रस का संचार करता है। श्रव्यकाव्य में पद्य, गद्य और चम्पू काव्यों का समावेश किया जाता है। गत्यर्थक में पद् धातु से निष्पन 'पद्य' शब्द गति की प्रधानता सूचित करता है। अत: पद्यकाव्य में ताल, लय और छन्द की व्यवस्था होती है। पुन: पद्यकाव्य के दो उपभेद किये जाते हैं–महाकाव्य और खण्डकाव्य। खण्डकाव्य को 'मुक्तकाव्य' भी कहते हैं। खण्डकाव्य में महाकाव्य के समान जीवन का सम्पूर्ण इतिवृत्त न होकर किसी एक अंश का वर्णन किया जाता है–

खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च।–साहित्यदर्पण, 6/321

कवित्व के साथ-साथ संगीतात्कता की प्रधानता होने से ही इनको हिन्दी में 'गीतिकाव्य' भी कहते हैं। 'गीति' का अर्थ हृदय की रागात्मक भावना को छन्दोबद्ध रूप में प्रकट करना है। गीति की आत्मा भावातिरेक है। अपनी रागात्मक अनुभूति और कल्पना के कवि वर्ण्यवस्तु को भावात्मक बना देता है। गीतिकाव्य

में काव्यशास्त्रीय रूढ़ियों और परम्पराओं से मुक्त होकर वैयक्तिक अनुभव को सरलता से अभिव्यक्त किया जाता है। स्वरूपत: गीतिकाव्य का आकार-प्रकार महाकाव्य से छोटा होता है। इन सब तत्त्वों के सहयोग से संस्कृत मुक्तककाव्य को एक उत्कृष्ट काव्यरूप माना जाता है। मुक्तकाव्य महाकाव्यों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हुए हैं।

संस्कृत में गीतिकाव्य मुक्तक और प्रबन्ध दोनों रूपों में प्राप्त होता है। प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मेघदूत है। अधिकांश प्रबन्ध गीतिकाव्य इसी के अनुकरण पर लिखे गये हैं। मुक्तक वह है जिसमें प्रत्येक पद्य अपने आप में स्वतंत्र होता है। इसके सुन्दर उदाहरण अमरूकशतक और भतृहरिशतकत्रय हैं। संगीतमय छन्द मधुर पदावली गीतिकाव्यों की विशेषता है। श्रृंगार, नीति, वैराग्य और प्रकृति इसके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। नारी के सौन्दर्य और स्वभाव का स्वाभाविक चित्रण इन काव्यों में मिलता है। उपदेश, नीति और लोकव्यवहार के सूत्र इनमें बड़े ही रमणीय ढंग से प्राप्त हो जाते हैं। यही कारण है कि मुक्तकाव्यों में सूक्तियों और सुभाषितों की प्राप्ति प्रचुरता से होती है।

मुक्तककाव्य की परम्परा स्फुट सन्देश रचनाओं के रूप में वैदिक युग से ही प्राप्त होती है। ऋग्वेद में सरमा नामक कुत्ते को सन्देश वाहक के रूप में भेजने का प्रसंग है। वैदिक मुक्तककाव्य के उदाहरणों में वसिष्ठ और वामदेव के सूक्त, उल्लेखनीय हैं। रामायण, महाभारत और उनके परवर्ती ग्रन्थों में भी इस प्रकार के स्फुट प्रसंग विपुल मात्र में उपलब्ध होते हैं। कदाचित् महाकवि वाल्मीकि के शाकोद्गारों में यह भावना गोपित रूप में रही है। पतिवियुक्ता प्रवासिनी सीता के प्रति प्रेषित श्री राम के संदेशवाहक हनुमान, दुर्योधन के प्रति धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा प्रेषित श्रीकृष्ण और सुन्दरी दयमन्ती के निकट राजा नल द्वारा प्रेषित सन्देशवाहक हंस इसी परम्परा के अन्तर्गत गिने जाने वाले प्रसंग हैं। इस सन्दर्भ में भागवत पुराण का वेणुगीत विशेष रूप से उद्धरणीय है, जिसकी रसविभोर करने वाली भावना छवि संस्कृत मुक्तक काव्यों पर अंकित है।

काव्य का प्रयोजन

राजशेखर ने कविचर्या के प्रकरण में बताया है कि कवि को विद्याओं और उपविद्याओं की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। व्याकरण, कोश, छन्द, और अलंकार - ये चार विद्याएँ हैं। 64 कलाएँ ही उपविद्याएँ हैं। कवित्व के 8 स्रोत हैं- स्वास्थ्य, प्रतिभा, अभ्यास, भक्ति, विद्वत्कथा, बहुश्रुतता, स्मृतिदृढ़ता और राग।

स्वास्थ्यं प्रतिभाभ्यासो भक्तिर्विद्वत्कथा बहुश्रुतता।
स्मृतिदाढर्यमनिर्वेदश्च मातरोऽष्टौ कवित्वस्य/ (काव्यमीमांसा)

मम्मट ने काव्य के छः प्रयोजन बताये हैं–

काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।

(काव्य यश और धन के लिये होता है। इससे लोक–व्यवहार की शिक्षा मिलती है। अमंगल दूर हो जाता है। काव्य से परम शान्ति मिलती है और कविता से कान्ता के समान उपदेश ग्रहण करने का अवसर मिलता है।)

काव्य परिभाषा

कविता या काव्य क्या है इस विषय में भारतीय साहित्य में आलोचकों की बड़ी समृद्ध परंपरा है– आचार्य विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ, पंडित अंबिकादत्त व्यास, आचार्य श्रीपति, भामह आदि संस्कृत के विद्वानों से लेकर आधुनिक आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा जयशंकर प्रसाद जैसे– प्रबुद्ध कवियों और आधुनिक युग की मीरा महादेवी वर्मा ने कविता का स्वरूप स्पष्ट करते हुए अपने अपने मत व्यक्त किए हैं। विद्वानों का विचार है कि मानव हृदय अनन्त रूपतामक जगत के नाना रूपों, व्यापारों में भटकता रहता है, लेकिन जब मानव अहं की भावना का परित्याग करके विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है, तब वह मुक्त हृदय हो जाता है। हृदय की इस मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी, जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। कविता मनुष्य को स्वार्थ सम्बन्धों के संकुचित घेरे से ऊपर उठाती है और शेष सृष्टि से रागात्मक सम्बंध जोड़ने में सहायक होती है। काव्य की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं। ये परिभाषाएं आधुनिक हिंदी काव्य के लिए भी सही सिद्ध होती हैं। काव्य सिद्ध चित्त को अलौकिक आनंदानुभूति कराता है तो हृदय के तार झंकृत हो उठते हैं। काव्य में सत्यं शिवं सुंदरम् की भावना भी निहित होती है। जिस काव्य में यह सब कुछ पाया जाता है, वह उत्तम काव्य माना जाता है।

काव्य के भेद

काव्य के भेद दो प्रकार से किए गए हैं–

1. स्वरूप के अनुसार काव्य के भेद और
2. शैली के अनुसार काव्य के भेद

(1) स्वरूप के अनुसार काव्य के भेद

स्वरूप के आधार पर काव्य के दो भेद हैं - श्रव्यकाव्य एवं दृश्यकाव्य।

(2) श्रव्य काव्य

जिस काव्य का रसास्वादन दूसरे से सुनकर या स्वयं पढ़ कर किया जाता है उसे श्रव्य काव्य कहते हैं। जैसे–रामायण और महाभारत।

श्रव्य काव्य के भी दो भेद होते हैं - प्रबन्ध काव्य तथा मुक्तक काव्य।

प्रबंध काव्य

इसमें कोई प्रमुख कथा काव्य के आदि से अंत तक क्रमबद्ध रूप में चलती है। कथा का क्रम बीच में कहीं नहीं टूटता और गौण कथाएँ बीच-बीच में सहायक बन कर आती हैं। जैसे–रामचरित मानस।

प्रबंध काव्य के दो भेद होते हैं - महाकाव्य एवं खण्डकाव्य।

1. महाकाव्य–इसमें किसी ऐतिहासिक या पौराणिक महापुरुष की संपूर्ण जीवन कथा का आद्योपांत वर्णन होता है। महाकाव्य में ये बातें होना आवश्यक है-

महाकाव्य का नायक कोई पौराणिक या ऐतिहासिक हो और उसका धीरोदात्त होना आवश्यक है।

जीवन की संपूर्ण कथा का सविस्तार वर्णन होना चाहिए।

शृंगार, वीर और शांत रस में से किसी एक की प्रधानता होनी चाहिए। यथास्थान अन्य रसों का भी प्रयोग होना चाहिए।

उसमें सुबह-शाम दिन-रात नदी-नाले वन-पर्वत समुद्र आदि प्राकृतिक दृश्यों का स्वाभाविक चित्रण होना चाहिए।

आठ या आठ से अधिक सर्ग होने चाहिए, प्रत्येक सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन होना चाहिए तथा सर्ग के अंत में अगले अंक की सूचना होनी चाहिए।

2. खंडकाव्य–इसमें किसी की संपूर्ण जीवनकथा का वर्णन न होकर केवल जीवन के किसी एक ही भाग का वर्णन होता है। खंड काव्य में ये बातें होना आवश्यक है-

कथावस्तु काल्पनिक हो।

उसमें सात या सात से कम सर्ग हों।

उसमें जीवन के जिस भाग का वर्णन किया गया हो वह अपने लक्ष्य में पूर्ण हो।

प्राकृतिक दृश्य आदि का चित्रण देश काल के अनुसार और संक्षिप्त हो।

मुक्तक

इसमें केवल एक ही पद या छंद स्वतंत्र रूप से किसी भाव या रस अथवा कथा को प्रकट करने में समर्थ होता है। गीत कवित्त दोहा आदि मुक्तक होते हैं।

दृश्य काव्य

जिस काव्य की आनंदानुभूति अभिनय को देखकर एवं पात्रों से कथोपकथन को सुन कर होती है उसे दृश्य काव्य कहते हैं। जैसे–नाटक में या चलचित्र में।

शैली के अनुसार काव्य के भेद

1. पद्य काव्य – इसमें किसी कथा का वर्णन काव्य में किया जाता है, जैसे–गीतांजलि

2. गद्य काव्य – इसमें किसी कथा का वर्णन गद्य में किया जाता है, जैसे–जयशंकर की कमायनी।।। गद्य में काव्य रचना करने के लिए कवि को छंद शास्त्र के नियमों से स्वच्छंदता प्राप्त होती है।

3. चंपू काव्य – इसमें गद्य और पद्य दोनों का समावेश होता है। मैथिलीशरण गुप्त की 'यशोधरा' चंपू काव्य है।

काव्य का इतिहास

आधुनिक हिंदी पद्य का इतिहास लगभग 800 साल पुराना है और इसका प्रारंभ तेरहवीं शताब्दी से समझा जाता है। हर भाषा की तरह हिंदी कविता भी पहले इतिवृत्तात्मक थी। यानि किसी कहानी को लय के साथ छंद में बांध कर अलंकारों से सजा कर प्रस्तुत किया जाता था। भारतीय साहित्य के सभी प्राचीन ग्रंथ कविता में ही लिखे गए हैं। इसका विशेष कारण यह था कि लय और छंद के कारण कविता को याद कर लेना आसान था। जिस समय छापेखाने का आविष्कार नहीं हुआ था और दस्तावेजों की अनेक प्रतियां बनाना आसान नहीं था, उस समय महत्वपूर्ण बातों को याद रख लेने का यह सर्वोत्तम साधन था। यही कारण है कि उस समय साहित्य के साथ-साथ राजनीति, विज्ञान और

आयुर्वेद को भी पद्य (कविता) में ही लिखा गया। भारत की प्राचीनतम कविताएं संस्कृत भाषा में ऋग्वेद में हैं, जिनमें प्रकृति की प्रशस्ति में लिखे गए छंदों का सुंदर संकलन हैं। जीवन के अनेक अन्य विषयों को भी इन कविताओं में स्थान मिला है।

काव्यशास्त्र काव्य और साहित्य का दर्शन तथा विज्ञान है। यह काव्यकृतियों के विश्लेषण के आधार पर समय-समय पर उद्भावित सिद्धान्तों की ज्ञानराशि है। काव्यशास्त्र के लिए पुराने नाम 'साहित्यशास्त्र' तथा 'अलंकारशास्त्र' हैं और साहित्य के व्यापक रचनात्मक वाङ्मय को समेटने पर इसे 'समीक्षाशास्त्र' भी कहा जाने लगा। संस्कृत आलोचना के अनेक अभिधानों में अलंकारशास्त्र ही नितान्त लोकप्रिय अभिधान है। इसके प्राचीन नामों में 'क्रियाकलाप' (क्रिया काव्यग्रंथ, कल्प विधान) वात्स्यायन द्वारा निर्दिष्ट 64 कलाओं में से अन्यतम है। राजशेखर द्वारा उल्लिखित 'साहित्य विद्या' नामकरण काव्य की भारतीय कल्पना के ऊपर आश्रित है, परन्तु ये नामकरण प्रसिद्ध नहीं हो सके।

युगानुरूप परिस्थितियों के अनुसार काव्य और साहित्य का कथ्य और शिल्प बदलता रहता है, फलतः काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों में भी निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। भारत में भरत के सिद्धान्तों से लेकर आज तक और पश्चिम में सुकरात और उसके शिष्य प्लेटो से लेकर अद्यतन 'नवआलोचना' (नियो-क्रिटिसिज्म) तक के सिद्धांतों के ऐतिहासिक अनुशीलन से यह बात साफ हो जाती है। भारत में काव्य नाटकादि कृतियों को 'लक्ष्य ग्रंथ' तथा सैद्धांतिक ग्रंथों को 'लक्षण ग्रंथ' कहा जाता है। ये लक्षण ग्रंथ सदा लक्ष्य ग्रंथ के पश्चाद्भावनी तथा अनुगामी है और महान् कवि इनकी लीक को चुनौती देते देखे जाते हैं।

मूलतः काव्यशास्त्रीय चिंतन शब्दकाव्य (महाकाव्य एवं मुक्तक) तथा दृश्यकाव्य (नाटक) के ही सम्बन्ध में सिद्धान्त स्थिर करता देखा जाता है। अरस्तू के 'पोयटिक्स' में कामेडी, ट्रैजेडी, तथा एपिक की समीक्षात्मक कसौटी का आकलन है और भरत का नाट्यशास्त्र केवल रूपक या दृश्यकाव्य की ही समीक्षा के सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। भारत और पश्चिम में यह चिन्तन ई.पू. तीसरी चौथी शती से ही प्रौढ़ रूप में मिलने लगता है, जो इस बात का परिचायक है कि काव्य के विषय में विचार विमर्श कई सदियों पहले ही शुरू हो चुका था।

'अलंकारशास्त्र' में अलंकार शब्द का प्रयोग व्यापक तथा संकीर्ण दोनों अर्थों में समझना चाहिए। अलंकार के दो अर्थ मान्य हैं –

(1) अलङ्क्रियते अनेन इति अलङ्कारः ('काव्य में शोभा के आधायक उपमा, रूपक आदि, संकीर्ण अर्थ),

(2) अलङ्क्रियते इति अलङ्कारः ('काव्य की शोभा', व्यापक अर्थ)।

व्यापक अर्थ स्वीकार करने पर अलंकारशास्त्र काव्यशोभा के आधा एक समस्त तत्त्वों – गुण, रीति, रस, वृत्ति ध्वनि आदि––का विजा एक शास्त्र है, जिसमें इन तत्त्वों के स्वरूप तथा महत्व का रुचिर विवरण प्रस्तुत किया गया है। संकीर्ण अर्थ में ग्रहण करने पर यह नाम अपने ऐतिहासिक महत्व को अभिव्यक्त करता है।

साहित्यशास्त्र के आरम्भिक युग में 'अलङ्कार' (उपमा, रूपक, अनुप्रास आदि) ही काव्य का सर्वस्व माना जाता था, जिसके अभाव में काव्य उष्णताहीन अग्नि के समान निष्प्राण और निर्जीव होता है। 'अलंकार' के गंभीर विश्लेषण से एक ओर 'वक्रोक्ति' का तत्त्व उद्‌भूत हुआ और दूसरी ओर अर्थ की समीक्षा करने पर 'ध्वनि' के सिद्धान्त का स्पष्ट संकेत मिला। इसलिए रस, ध्वनि, गुण आदि काव्यतत्त्वों का प्रतिपादक होने पर भी, अलंकार प्राधान्य दृष्टि के कारण ही, आलोचनाशास्त्र का नाम 'अलङ्कारशास्त्र' पड़ा और वह लोकप्रिय भी हुआ।

प्राचीनता

अलंकारों की, विशेषतः उपमा, रूपक, स्वाभावोक्ति तथा अतिशयोक्ति की, उपलब्धि ऋग्वेद के मंत्रों में निश्चित रूप से होती है, परन्तु वैदिक युग में इस शास्त्र के आविर्भाव का प्रमाण नहीं मिलता। निरुक्त के अनुशीलन से 'उपमा' का साहित्यिक विश्लेषण यास्क से पूर्ववर्ती युग की आलोचना की परिणत फल प्रतीत होता है। यास्क ने किसी प्राचीन आचार्य के उपमालक्षण का निर्देश ही नहीं किया है, प्रत्युत कर्मोपमा, भूतोपमा, रूपोपमा, सिद्धोपमा, अर्थोपमा (लुप्तोपमा) जैसे–मौलिक उपमा–प्रकारों का भी दृष्टांतपुररूसर वर्णन किया है (निरुक्त 3। 13–18)। इससे स्पष्ट है कि अलंकार का उदय यास्क (सप्तम शती ई.पू.) से भी पूर्व हो चुका था। कश्यप तथा वररुचि, ब्रह्मदत्त तथा नंदिस्वामी के नाम तरुणवाचस्पति ने आद्य आलंकारिकों में अवश्य लिए हैं, परंतु इनके ग्रंथ और मत का परिचय नहीं मिलता। राजशेखर द्वारा 'काव्यमीमांसा' में

निर्दिष्ट बृहस्पति, उपमन्यु, सुवर्णनाभ, प्रचेतायन, शेष, पुलस्त्य, पाराशर, उतथ्य आदि अष्टादश आचार्यों में से केवल भरत का 'नाट्यशास्त्र' ही आजकल उपलब्ध है। अन्य आचार्य केवल काल्पनिक सत्ता धारण करते हैं। इतना तो निश्चित है कि यूनानी आलोचना के उदय शताब्दियों पूर्व 'अलंकारशास्त्र' प्रामाणिक शास्त्रपद्धति के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था।

परिचय

काव्यकृति मूलतः तिहरे आयाम से जुड़ी है–काव्य, काव्यकर्ता (कवि), काव्यानुशीलक। जहाँ तक नाट्यरूप काव्य का सम्बन्ध है, काव्यकर्ता के साथ उसमें नाट्य प्रयोगकर्ता नटादि का भी समावेश हो जाता है। काव्यशास्त्रीय चिन्तकों का ध्यान इन सभी पक्षों की ओर सदा जाता रहा है। सबसे पहला प्रश्न, जो कवि के संबंध में उठता है, वह यह है कि कवि या कलाकार अन्य मानव, धर्मोपदेशक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक विचारक से किस बात में विशिष्ट है और क्यों खास प्रकृति के व्यक्ति ही कवि या कलाकार बन पाते हैं? दूसरे शब्दों में, कवित्वशक्ति के हेतु क्या है। सुकरात और प्लेटो कवित्वशक्ति को दैवी आवेश की देन मानते हैं, अध्ययन और अभ्यास का प्रतिफल नहीं। भारत के काव्यशास्त्री काव्यरचना में प्रतिभा को प्रधान हेतु मानते हुए भी इसके साथ व्युत्पत्ति और अभ्यास को भी कम महत्व नहीं देते। परम्परावादी आलोचक केवल प्रतिभा को काव्यशक्ति का हेतु नहीं मानते। उधर पश्चिम के रोमैंटिक विचारक कलाकृति की मूल प्रेरणा एकमात्र प्रतिभा को ही मानते हैं। फिर भी इस बात में सभी चिंतक एकमत है कि कवि विशिष्ट प्रतिभाशील व्यक्ति है, जो अपनी प्रतिभा के माध्यम से काव्य के रूप में नई सृष्टि की उद्भावना करता है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, कविता का प्रयोजन क्या है? अखिर कवि कविता क्यों करता है? इस सम्बन्ध में चिंतकों के दो दल हैं– परंपरावादी चिंतक काव्य का लक्ष्य या प्रयोजन नैतिक उपदेश की प्रतिष्ठा मानते हैं। काव्य द्वारा कवि किन्ही मूल्यों की स्थापना करना चाहता है, ठीक उसी तरह जैसे–धार्मिक उपदेशक, किन्तु फर्क यह है कि उसकी कृति शैलीशिल्प की दृष्टि से रमणीय और रसमय होने के कारण धर्मग्रंथों या नीतिग्रंथों से विशिष्ट बन जाती है। स्वच्छंदतावादी चिंतक इसे नहीं स्वीकारता। वह कवि को उपदेशक नहीं मानता। उसके अनुसार कवि सर्जक है, सृष्टिकर्ता है, जो ब्रह्मा से भी विशिष्ट है। वह अपनी सृष्टि, अपनी कलाकृति के माध्यम से हमारे सामने रखता है। वस्तुतः वह

अपनी अनुभूतियों को काव्य के द्वारा वाणी देना चाहता है। काव्य और कुछ नहीं, उसकी समस्त अनुभूतियों का सारभूत तत्त्व और उसके अंतस्थ में उमड़ते-घुमड़ते भावों का स्वत: बहा हुआ परिवाह मात्र है। पूर्व और पश्चिम के प्राय: सभी मतमतांतर इन दो खेवों में मजे से समेटे जा सकते हैं।

काव्य का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष वह कृति है, जो हमारे समक्ष चाक्षुष (नाटक में), श्रावण तथा बौद्धिक सन्निकर्ष का माध्यम बनती है और इस माध्यम से वह हमारे मन या संवित् (चेतना) को प्रभावित करती है। अत: काव्यशास्त्रीय चिंतन में यह वह प्रधान पक्ष है, जिसके अनेक पहलुओं को लेकर पूर्व और पश्चिम के विचारक पिछले अढ़ाई हजार वर्षो से ऊहापोह करते आ रहे हैं। सबसे पहला सवाल जो काव्य के कथ्य के विषय में उठता है, वह यह है कि काव्य में वर्णित घटनाएँ आदि कहाँ तक वैज्ञानिक सत्य से मेल खाती हैं। यह प्राय: सभी समीक्षक स्वीकार करते हैं कि काव्य में तथ्य-कथन-प्रणाली का आश्रय नहीं लिया जाता। उसमें जिस सत्य का समुद्घाटन होता है, वह वास्तविक सत्य न होकर संभाव्य सत्य होता है। इसी आधार पर काव्यविरोधी कवि की कल्पना को भ्रमित या सत्य से बहुत दूर घोषित करते हैं। प्लेटो ने तो इसे सत्य से 'दुहरा दूर' सिद्ध किया है। भारत के विचारकों ने काव्यकृति को भ्रान्ति नहीं माना है, यद्यपि एक स्थान पर भट्ट लोल्लट ने रससूत्र की व्याख्या करते हुए नाटक के अभिनय में राम आदि का अनुकरण करते नटों में राम आदि के भ्रांतिज्ञान का संकेत किया है। पश्चिम में इधर मनोविज्ञान के विकास के परिप्रेक्ष्य में काव्यशास्त्रीय चिंतन ने भ्रांतिवाले इस पक्ष को और अधिक मजबूत किया है। कहा जाता है, कला मात्र भ्रांति है (आर्ट इज नथिंग बट इल्यूजन)। इसी से मिलता जुलता एक और मत भी है। कला कुछ नहीं महज सम्मोहन है (आर्ट इज नथिंग बट हेल्यूसिनेशन)। इधर नृतत्त्व विज्ञान के अध्ययन के आधार पर भी काव्य की सम्मोहिनी शक्ति पर जोर दिया जाने लगा है और यह मत प्रबल हो उठा है कि काव्य या कला में पुराने आदिम समाज के ओझाओं के मंत्रों की तरह जादुई असर होता है (आर्ट इज मैजिक)।

यहीं यह सवाल उठता है कि आखिर यह भ्रान्ति, सम्मोहन या जादुई असर, अगर हम पुराने विद्वानों के शब्द को उधार लेना चाहें तो काव्य का 'चमत्कार', किन तत्त्वों के कारण पैदा होता है? काव्य मूलत: भाषा में निबद्ध होता है। भाषा शब्द और अर्थ का संश्लिष्ट रूप है। अत: पहला सवाल यह उठेगा कि काव्य केवल शब्दमय है या शब्दार्थमय। भारत में ये दोनों मत प्रचलित हैं।

भामह, कुन्तक, मम्मट जैसे–चिंतक शब्द और अर्थ के सम्मिलित तत्त्व को काव्य मानते हैं, केवल शब्द को या केवल अर्थ को नहीं, क्योंकि काव्य में दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। इस मत के अनुसार काव्य को चमत्कारशाली या सम्मोहक बनाने के लिए शब्द और अर्थ दोनों की रमणीयता पर कवि को समान बल देना होगा। दूसरा मत काव्य की प्रभावान्विति में शब्द पर, अर्थात् उसके बौद्धिक पक्ष की अपेक्षा श्रवण पक्ष पर, अधिक जोर देता है। प्रसिद्ध संस्कृत कवि पंडितराज जगन्नाथ का यही मत है। यह मत उन लोगों का जान पड़ता है, जो काव्य की लय (रिद्म), शब्दचयन, छन्द और श्रावण बिंबवत्ता पर अधिक जोर देते हैं। पश्चिम के स्वच्छंदतावादी समीक्षक, विशेषत: फ्रांस के प्रतीकवादी कवि और आलोचक, साफ कहते हैं कि काव्य अर्थ या विचार से नहीं बनता, बल्कि शब्दों से बनता है (पोयट्री इज नाट मेड ऑव आइडियाज बट ऑव वर्ड्स)। अगर इस मत की तुलना हम ओझाओं के निरर्थक शाबरजाल मंत्रों से करें तो पता चलेगा कि यहाँ भी अर्थ का कोई महत्व नहीं, अपितु शब्दों की लय, झाड़ फूँक करने वाले ओझा के मंत्रोच्चार का लहजा ही रोगी को प्रभावित कर मनश्चिकित्सा करता कहा जाता है। यही पद्धति मनोविश्लेषणात्मक उपचार की भी है।

काव्य के प्रभाव को पैदा करने में शब्द और अर्थ का विशेष महत्व माना गया है, इसलिए काव्यशास्त्रीय चिंतन में शब्द और अर्थ के परस्पर सम्बन्ध पर विचार करना लाजमी हो जाता है। शब्द का अपने परम्परागत अर्थ से नियत सम्बन्ध होता है। इस संबंध को हमारे यहाँ अभिधा व्यापार कहा गया हैं, किन्तु भाषा में इस व्यापार के अतिरिक्त अन्य व्यापार भी कार्य करता देखा जाता है, जहाँ शब्द अपने नियत अर्थ को छोड़कर उससे सम्बद्ध किसी दूसरे अर्थ की प्रतीति भी करा सकता है, जिसे लक्षणा व्यापार कहते हैं। अरस्तू ने भी भाषा के इन दोनों व्यापारों का विवेचन अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'रिटोरिक्स' में किया है। काव्यभाषा में वस्तुत: शब्द अभिधापरक न होकर लाक्षणिक होते हैं। इस बात पर इधर पश्चिम में अधिकाधिक जोर दिया जाने लगा है और इसकी शुरूआत स्वच्छन्दतावादी कवि और विचारक कॉलरिज ने की थी। उसके अनुसार समस्त काव्यभाषा लाक्षणिक (मेटाफरिक) है। यह मत आई.ए.रिचर्ड्स, एम्पसन आदि अन्य आधुनिक काव्यचिंतकों ने भी स्वीकार किया है। इस मत के अनुसार काव्य में उपात्त बिंब, रूपक, प्रतीक और मिथक सभी भाषा की लाक्षाणिक प्रक्रियाएँ हैं और इतना ही नहीं, काव्य का छंदोविधान, लय और शब्दशय्या का प्रयोजन

भी सर्वथा लाक्षणिक है। इस मत से मिलता-जुलता मत हमारे यहाँ ध्वनिवादी काव्यशास्त्री का है, जो काव्यार्थप्रतीति में लक्षणा से भी एक कदम आगे बढ़कर व्यंजना की परिकल्पना करते हैं और काव्य के समस्त अवयवों को अनुभूति या रसरूप व्यंग्य का व्यंजक मानते हैं। उधर वक्रोक्तिवादी कुन्तक भी काव्य में उपात्त शब्द और अर्थ के व्यापार को साधारण अभिधान मानकर विचित्रभिधा या वक्रोक्ति कहते हैं और इस वक्रोक्ति का विनियोग वर्ण, पद, वाक्य, अर्थ प्रकरण, प्रबंध जैसे–काव्यांगों में निर्दिष्ट करते हैं। कुंतक के इस विभाजन की मूल नीव वस्तुतः वामन के रीतिवादी सिद्धांत पर टिकी है। यह काव्य की संघटना या संरचना का विश्लेषण कर उसके उन अंगों के सम्मोहक तत्त्व को समुद्घाटित करती है, जो काव्य सुनने या पढ़ने वाले को प्रभावित करते हैं। यह विश्लेषण एक ओर व्याकरण और भाषाशास्त्र से और दूसरी ओर कलाशास्त्रीय चिंतन से जुड़ा हुआ है। इधर अमेरिका में जो संरचनावादी पद्धति की नई काव्य समीक्षा चल पड़ी है, वह उसी दृष्टिकोण को लेकर चली, जिसका सूत्रपात संस्कृत काव्यों के विवेचन के संबंध में हमारे यहाँ अपने-अपने ढंग से वामन, आनन्दवर्धन और कुन्तक कर चुके हैं।

निबन्ध की सीमा देखते हुए यहाँ काव्य के विभिन्न अंगों पर समय-समय पर हुए सभी विचारों का विवेचन करना संभव नहीं है। काव्य के मूलतः दो पक्ष हैं। एक है कथ्यपक्ष, जिसे हम विषय-वस्तु के विशेष प्रकार के अभिधान में और उससे अभिव्यक्त कलात्मक अनुभूति या रसादि की आंतरिक संवेदना में पाते हैं। दूसरा है काव्य का शैलीपक्ष, जिसमें लय, छन्द, शब्दचयन, गुण और अलंकार की योजना का विवेचन होता है। इन तत्त्वों पर पूर्व और पश्चिम के विचारकों ने विस्तार से चिंतन किया है, किन्तु यहाँ इतना समझा लेना होगा कि काव्य की प्रभावान्विति समग्र होती है। ये सभी अवयव अपने-अपने ढंग से उस समग्र प्रभावान्विति में योगदान करते देखे जाते हैं। हमारे यहाँ अलंकारवादी और रीतिवादी समीक्षक इस समग्र प्रभावान्विति वाले मत को नहीं मानते। वे काव्य का सौंदर्य या चमत्कार शब्द अर्थ के अलंकार में या विशिष्ट पद रचना में मानते हैं। किंतु वक्रोक्तिवादी और ध्वनिवादी प्रभाव की दृष्टि से काव्य की समग्रता को लेकर चलते हैं, भले ही विश्लेषण की दृष्टि से वे भी उसके तत्तत् अंश की मीमांसा करते हों। पश्चिम में परंपरावादी समीक्षक इसी तरह काव्य की समग्रता को प्रभाव की दृष्टि से नहीं आँकते और काव्य में अलंकार (फिगर्स), उक्तिवैचित्र्य (विट्), दूरारूढ़ कल्पना (फैंसी) को महत्व देते देखे जाते हैं। वहाँ

भी ईसा की दूसरी शती में एक ऐसा चिंतक हुआ है, जिसने काव्य की इस समग्रता के सिद्धांत को प्रतिष्ठापित किया था। लोंगिनुस के उदात्त संबंधी सिद्धांत का मूल भाव यही है। पश्चिम के रोमैंटिक कवि और आलोचक भी काव्य का चमत्कार समग्रता में ही मानते हैं और कुछ ऐसी ही धारणा हिंदी के छायावादी और छायावादोत्तर आलोचकों की है। हमारे यहाँ अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, रस, ध्वनि, औचित्य, चमत्कार जैसे–विविध काव्यसिद्धांत जो चल पड़े थे, वे सब मूलत: काव्य का सौंदर्य किस अंश में है, इसी आधार पर हैं। इनका विशेष विवेचन यहाँ अनावश्यक होगा।

कवि और काव्य के बाद तीसरा तत्त्व काव्य का श्रोता या पाठक और नाटक का दर्शक है, जिसे ध्वनिवादी के शब्दों में सहृदय कहा जाता है। सहृदय का अर्थ है समान हृदयवाला वह व्यक्ति जो काव्यानुशीलन के समय उसमें तन्मयीभूत होकर कवि के समान हृदयवाला बन जाए। उसकी यह समानहृदयता काव्य में वर्णित विशिष्ट पात्रदि या नायकादि से भी होती है। इस समानहृदयता को स्थापित करने के लिए भट्ट नायक ने साधारणीकरण व्यापार की कल्पना की थी, जिसे अभिनवगुप्त ने भी मान लिया है। भारत के इन रसवादियों के अनुसार काव्यानुशीलक के मानस में राग द्वेषादि रूप रज और तम गुणों का तिरोभाव हो जाता है तथा सत्य के उद्रेक से मन को विश्रांति का अनुभव होता है। अभिनवगुप्त इस स्थिति को योगियों की समाधिस्थिति के समान मानते हैं। पश्चिम में काव्य की आत्मा को रस जैसे–तत्त्व के रूप में मानने वाला कोई सिद्धान्त उदित नहीं हुआ है, किन्तु वहाँ 19वीं सदी में स्वच्छन्दतावाद के उदय के कारण यह सिद्धान्त विकसित हुआ है कि काव्य का श्रोता या पाठक कवि या कविवर्णित पात्र के साथ समानुभूति (एम्पैथी) या सहानुभूति (सिम्पैथी) का अनुभव करता है, जैसी हमें शेक्सपियर के हैमलेट या मैकबेथ के साथ तथा शैली के प्रॉमिथ्युस के साथ होती है।

अपने यहाँ, रसदशा तक हम कैसे पहुँचते हैं, इसका अपने ढंग से मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अभिनवगुप्त के यहाँ मिलता है, पर वह ढाँचा मात्र है। अभी हाल में हुए मनोविज्ञानगत शोधों के कारण इस पक्ष पर अधिक प्रकाश पड़ा है। मनोविज्ञान की एक विशेष शाखा, जिसमें शरीरक्रिया के आधार पर हमारे स्नायुकेंद्र के समुत्तेजन का अध्ययन किया जाता है और श्रावण, चाक्षुष, स्पार्शन, घ्राणज तथा रसनज बिंबों का अथवा उनकी कल्पना मात्र का हमारे मस्तिष्क पर कैसे प्रभाव पड़ता है और उससे हमारा मानस कैसे आंदोलित होता है, इस पर

खोजें हुई हैं और होती जा रही हैं, जो काव्य और कलाकृति का काव्यनुशीलक पर कैसा, क्यों और कैसे प्रभाव पड़ता है, इसके विवेचन में व्यस्त हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होगा कि आज काव्यशास्त्रीय चिंतन का क्षेत्र कितना विस्तृत हो गया है। वह एक ओर व्याकरण, भाषाशास्त्र, कलाशास्त्र, दर्शन और छन्दशास्त्र के छोरों को छूता है, तो दूसरी ओर मनोविज्ञान और शरीरक्रिया विज्ञान से भी जा जुड़ा है। इतना ही नहीं, जब हम काव्य के ऐतिहासिक, सामाजिक प्रेरणास्त्रोतों की ओर भी ध्यान देने लगते हैं तो काव्यशास्त्र का दायरा और बढ़ जाता है और वह समाजशास्त्र, इतिहास तथा राजनीतिक चिंतन से भी जा जुड़ता है। यही कारण है कि आज के काव्यशास्त्रीय चिन्तन में कई दृष्टिभंगिमाएँ मिलेंगी। कुछ ऐसी हैं, जो परंपरावादी पूर्वी या पश्चिमी साँचे में ढली हैं, कुछ पश्चिम के स्वच्छंदतावादी, कलावादी, दादावादी, भविष्यवादी या अस्तित्त्ववादी सिद्धांतों से जुड़ी हैं और कुछ या तो फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद अथवा मार्क्स के सामाजिक यथार्थवादी दर्शन से सम्बद्ध हैं।

काव्य-सम्प्रदाय

'अलंकारसर्वस्व' के टीकाकार समुद्रबन्ध ने काव्यशास्त्र के अनेक सम्प्रदायों की विशिष्टता की सुन्दर विवरण प्रस्तुत किया है। काव्य के विभिन्न अंगों पर महत्व तथा बल देने से विभिन्न संप्रदायों की विभिन्न शताब्दियों में उत्पत्ति हुई। मुख्य सम्प्रदायों की संख्या छह मानी जा सकती है-

(1) रस सम्प्रदाय।
(2) अलंकार सम्प्रदाय।
(3) रीति या गुण सम्प्रदाय।
(4) वक्रोक्ति सम्प्रदाय।
(5) ध्वनि सम्प्रदाय।
(6) औचित्य सम्प्रदाय।

इन सम्प्रदायों ने अपने नाम के अनुसार तत्तत् (वे वे गुण) 'काव्य की आत्मा' अर्थात् मुख्य प्राण स्वीकार किया है।

(1) रस संप्रदाय के के मुख्य आचार्य भरत मुनि हैं (द्वितीय शताब्दी) जिन्होंने नाट्य रस का ही मुख्यतः विश्लेषण किया और उस विवरण को अवान्तर आचार्यों ने काव्य रस के लिए भी प्रामाणिक माना।

(2) अलंकार संप्रदाय के प्रमुख आचार्य भामह (छठी शताब्दी का पूर्वार्ध), दंडी (सातवीं शताब्दी), उद्‌भट (आठवीं शताब्दी) तथा रुद्रट (नवीं शताब्दी का पूर्वार्ध) है। इस मत में अलंकार ही काव्य की आत्मा माना जाता है। इस शास्त्र के इतिहास में यही संप्रदाय प्राचीनतम तथा व्यापक प्रभावपूर्ण अंगीकृत किया जाता है।

(3) रीति संप्रदाय के प्रमुख आचार्य वामन (अष्टम शताब्दी का उत्तरार्ध) हैं, जिन्होंने अपने 'काव्यालंकारसूत्र' में रीति को स्पष्ट शब्दों में काव्य की आत्मा माना है (रीतिरात्मा काव्यस्य)। दण्डी ने भी रीति के उभय प्रकार--वैदर्भी तथा गौड़ी--की अपने 'काव्यादर्श' में बड़ी मार्मिक समीक्षा की थी, परन्तु उनकी दृष्टि में काव्य में अलंकार की ही प्रमुखता रहती है।

(4) वक्रोक्ति संप्रदाय की उद्‌भावना का श्रेय आचार्य कुन्तक को (10वीं शताब्दी का उत्तरार्ध) है, जिन्होंने अपने 'वक्रोक्तिजीवित' में 'वक्रोक्ति' को काव्य की आत्मा (जीवित) स्वीकार किया है।

(5) ध्वनि संप्रदाय का प्रवर्तन आनन्दवर्धन (नवम शताब्दी का उत्तरार्ध) ने अपने युगान्तरकारी ग्रंथ 'ध्वन्यालोक' में किया तथा इसका प्रतिष्ठापन अभिनव गुप्त (10वीं शताब्दी) ने ध्वन्यालोक की लोचन टीका में किया। मम्मट (11वीं शताब्दी का उत्तरार्ध), रुय्यक (12वीं शताब्दी का पूर्वार्ध), हेमचन्द्र (12वीं शताब्दी का उत्तरार्ध), पीयूषवर्ष जयदेव (13वीं शताब्दी का उत्तरार्ध), विश्वनाथ कविराज (14वीं शताब्दी का पूर्वार्ध), पंडितराज जगन्नाथ (17वीं शताब्दी का मध्यकाल)--इसी संप्रदाय के प्रतिष्ठित आचार्य हैं।

(6) औचित्य संप्रदाय के प्रतिष्ठाता क्षेमेन्द्र (11वीं शताब्दी का मध्यकाल) ने भरत, आनन्दवर्धन आदि प्राचीन आचार्यों के मत को ग्रहण कर काव्य में औचित्य तत्त्व को प्रमुख तत्त्व अंगीकार किया तथा इसे स्वतंत्र संप्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित किया। अलंकारशास्त्र इस प्रकार लगभग दो सहस्र वर्षों से काव्यतत्त्वों की समीक्षा करता आ रहा है।

महत्व

यह शास्त्र अत्यन्त प्राचीन काल से काव्य की समीक्षा और काव्य की रचना में आलोचकों तथा कवियों का मार्गनिर्देश करता आया है। यह काव्य के

अंतरंग और बहिरंग दोनों का विश्लेषण बड़ी मार्मिकता से प्रस्तुत करता है। समीक्षासंसार के लिए अलंकारशास्त्र की काव्य तत्त्वों की चार अत्यंत महत्वपूर्ण देन है, जिनका सर्वांग विवेचन, अंतरंग परीक्षण तथा व्यावहारिक उपयोग भारतीय साहित्यिक मनीषियों ने बड़ी सूक्ष्मता से अनेक ग्रंथों में प्रतिपादित किया है। ये महनीय काव्य तत्त्व हैं--औचित्य, वक्रोक्ति, ध्वनि तथा रस।

औचित्य का तत्त्व लोक व्यवहार में और काव्यकला में नितांत व्यापक सिद्धांत है। औचित्य के आधार पर ही रसमीमांसा का प्रासाद खड़ा होता है। आनन्दवर्धन की यह उक्ति समीक्षाजगत् में मौलिक तथ्य का उपन्यास करती है कि अनौचित्य को छोड़कर रसभंग का कोई दूसरा कारण नहीं है और औचित्य का उपनिबंधन रस का रहस्यभूत उपनिषत् है–

अनौचित्या- ते नान्यत् रसभंगस्य कारणम।
औचित्योपनिधबंधस्तु रसस्योपनिषत् परा (ध्वन्यालोक)।

वक्रोक्ति लोकातिक्रांत गोचर वचन के विन्यास की साहित्यिक संज्ञा है। वक्रोक्ति के माहात्म्य से ही कोई भी उक्ति काव्य की रसपेशल सूक्ति के रूप में परिणत होती है। यूरोप में क्रोचे द्वारा निर्दिष्ट 'अभिव्यंजनावाद' (एक्सप्रेशनिज्म) वक्रोक्ति को बहुत कुछ स्पर्श करनेवाला काव्यतत्त्व है।

ध्वनि का तत्त्व संस्कृत आलोचना की तीसरी महती देन है। हमारे आलोचकों का कहना है कि काव्य उतना ही नहीं प्रकट करता, जितना हमारे कानों को प्रतीत होता है, प्रत्युत वह नितांत गूढ़ अर्थों को भी हमारे हृदय तक पहुँचाने की क्षमता रखता है। यह सुंदर मनोरम अर्थ 'व्यंजना' नामक एक विशिष्ट शब्दव्यापार के द्वारा प्रकट होता है और इस प्रकार व्यंजक शब्दार्थ को ध्वनिकाव्य के नाम से पुकारते हैं। सौभाग्य की बात है कि अंग्रेजी के मान्य आलोचक एबरक्रांबी तथा रिचर्ड्स की दृष्टि इस तत्त्व की ओर अभी-अभी आकृष्ट हुई है।

रसतत्त्व की मीमांसा भारतीय आलोचकों के मनोवैज्ञानिक समीक्षापद्धति के अनुशीलन का मनोरम फल है। काव्य अलौकिक आनंद के उन्मीलन में ही चरितार्थ होता है, चाहे वह काव्य श्रव्य हो या दृश्य। हृदयपक्ष ही काव्य का कलापक्ष की अपेक्षा नितांत मधुरतर तथा शोभन पक्ष है, इस तथ्य पर भारतीय आलोचना का नितांत आग्रह है। भारतीय आलोचना जीवन की समस्या को सुलझाने वाले दर्शन की छानबीन से कथमपि परांमुख नहीं होती और इस प्रकार यह पाश्चात्य जगत् के तीन शास्त्रों-- 'पोएटिक्स', 'रेटारिक्स' तथा 'ऐस्थेटिक्स'- का प्रतिनिधित्व अकेले ही अपने आप करती है। प्राचीनता, गंभीरता तथा

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में यह पश्चिमी आलोचना से कहीं अधिक महत्वशाली है, इस विषय में दो मत नहीं हो सकते।

काव्य-लक्षण

काव्य, मनुष्य-चेतना की महत्तम सृष्टि है। काव्यशास्त्र में काव्य का विश्लेषण किया जाता है। काव्य का लक्षण निर्धारित करना ही काव्यशास्त्र का प्रयोजन है। लक्षण का अर्थ है, 'असाधारण अर्थ'। वस्तुतः कोई कृति साहित्यिक कृति है या नहीं, यह जानना आवश्यक है और इसी के लिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि साहित्यिक दृष्टिकोण क्या है या साहित्य (काव्य) क्या है, उसकी परिभाषा क्या है। दूसरे शब्दों में, काव्य का वह असाधारण धर्म क्या है, जिसमें काव्य, 'काव्य' कहलाता है।

भारतीय काव्यशास्त्र में 'परिभाषा' को 'लक्षण' शब्द से अभिहित किया गया है। परिभाषा (लक्षण) के तीन दोष कहे जाते हैं- अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव। काव्य एवं काव्यांगों की परिभाषा करते समय सभी आचार्यों ने बड़े सजग होकर यह प्रयास किया है कि उनके द्वारा प्रतिपादित लक्षण अथवा सिद्धान्त निर्दोष हों। कुछ प्रमुख आचार्यों द्वारा प्रतिपादित 'लक्षण' निम्नलिखित हैं-

शब्दार्था सहितौ काव्यम् (शब्द और अर्थ का समन्वय काव्य है।)
(भामह),
संक्षेपात् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना, पदावली काव्यम् (अग्नि पुराण)।
शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली (दंडी)।
ननु शब्दार्थो कायम् (रुद्रट)।
काव्य शब्दोयं गुणलंकार संस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते (आचार्य वामन)।
शब्दार्थशरीरं तावत् काव्यम् (आनन्दवर्धन)।
निर्दोषं गुणवत् काव्यं अलंकारैरलंकृतं रसान्तितम् (भोजराज)।
तददोषौ शब्दार्थो सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि (मम्मट)।
गुणालंकाररीतिरससहितौ दोषरहिती शब्दार्थो काव्यम् (वाग्भट)।
निर्दोषा लक्षणवी सरीतिर्गुणभूषिता, सालंकाररसानेकवृत्तिर्भाक्
काव्यशब्दभाक् (जयदेव)।
काव्यं रसादिमद्वाक्यं श्रुतं सुखविशेषकृत् (आचार्य शौद्धोदनि)।
वाक्यं रसात्मकं काव्यम् (विश्वनाथ)।
गुणवदलङ्कृतंच काव्यम् (राजशेखर)।

2

संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास

संस्कृत साहित्य में काव्यशास्त्र के लिए अलंकारशास्त्र, काव्यालंकार, साहित्यविद्या, क्रियाकल्प आदि शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। इनमें अलंकारशास्त्र शब्द सर्वाधिक प्रचलित माना जाता है। भामह, वामन तथा उद्‌भट आदि प्राचीन आचार्यों ने काव्यविवेचन से सम्बद्ध ग्रन्थों के नाम में काव्यालंकार शब्द का प्रयोग किया है। इसे अलंकारशास्त्र कहने के दो कारण हो सकते हैं। एक तो प्राचीन आचार्यों ने समस्त सौन्दर्यजनक धर्मों का अलंकार शब्द से ग्रहण किया है। दूसरे प्राचीन आचार्यों की धारणा थी कि अलंकार ही काव्य में प्रधान है। इसी कारण काव्यविवेचना का नाम अलंकारशास्त्र रख दिया गया। आचार्य भामह के 'शब्दार्था सहितौ काव्यम' इस काव्यलक्षण से आचार्यों को पश्चात् काल में साहित्य शब्द की प्रेरणा मिली। इन सब नामों से भिन्न इस शास्त्र के लिए एक नाम और प्रयुक्त हुआ है वह है – 'क्रियाकल्प' इसका निर्देश वात्स्यायन के कामशास्त्र में गिनायी गयी चौसठ कलाओं में आता है।

सम्पाठ्यं, मानसी काव्यक्रिया, अभिधानकोषः, छन्दोज्ञानम् क्रियाकल्पः छलितकयोगाः।

इसके टीकाकार जयमंगलार्क ने क्रियाकल्प शब्द को क्रियाकल्प इति ''काव्याकरणविधिः काव्यालंकार इत्यर्थः'' इस अर्थ में किया है। इससे प्रतीत होता है कि कलाओं के अन्तर्गत प्रयुक्त हुआ क्रियाकल्प शब्द काव्यशास्त्र के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु यह नाम अत्यधिक प्रचलित नहीं हुआ। आचार्य

वात्स्यायन ने साधारण अधिकरण में प्रस्तुत विद्यासमुद्देश प्रकरण में क्रियाकल्प का उल्लेख किया। क्रियाकल्प अर्थात् काव्यालंकारशास्त्र के ज्ञान की कला।

काव्य के शास्त्र विषयक विचार के प्रवर्तन के सन्दर्भ में काव्यमीमांसाकार राजशेखर ने अपने काव्यशास्त्रीय प्रौढ़ ग्रन्थ काव्यमीमांसा में पौराणिक आधार का आश्रय लिया है। इस वर्णन के अनुसार भगवान श्रीकण्ठ ने काव्यविद्या का सर्वप्रथम उपदेश परमेष्ठी और वैकुण्ठ इत्यादि अपने चौसठ शिष्यों को दिया। इस विद्या का द्वितीय बार उपदेश भगवान परमेष्ठी द्वारा उनके इच्छाजन्य शिष्यों को दिया गया, जिनमें देववन्ध सरस्वती का पुत्र काव्यपुरुष भी एक था। काव्यपुरुष को त्रिकालज्ञ और दिव्यदृष्टि से सम्पन्न जानकर ब्रह्म ने उसे आज्ञा दी कि वह सर्वजनहित की कामना से भू-भुवः और स्वर्ग निवासनी प्रजा में काव्यविद्या का प्रचार करे। काव्यपुरुष ने काव्यविद्या को अट्ठारह भागों में विभक्त कर सहस्त्रक्ष आदि दिव्य स्नातकों को उपदिष्ट किया। उन शिष्यों ने काव्यविद्या को पृथक्-पृथक् भागों में विशेष योग्यता प्राप्त कर पृथक् पृथक् ग्रन्थों की रचना की। इन स्नातकों में सहस्त्रक्ष ने कविरहस्य, उक्तिगर्भ ने औक्तिक, सुवर्णनाभ ने रीतिनिर्णय, प्रचेता ने आनुप्रासिक, यम ने यमक, चित्रंगद ने चित्र, शेष ने शब्दश्लेष, पुलत्स्य ने वास्तव, औपकायन ने औपम्य, पराशर ने अतिशय, उत्थ्य ने अर्थश्लेष, कुबेर ने उभयालंकारकारिका, कामदेव ने वैनोदिक, भरत ने रूपक निर्णय, उपमन्यु ने गुणौपादानिक तथा कुचुमार ने औपनिषदिक नामक पृथक् पृथक् ग्रन्थ लिखे। इस प्रकार राजशेखर ने काव्यशास्त्र के उद्गम के ऊपर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया। इस आख्यान में काव्यशास्त्र की दैवी उत्पत्ति स्वीकार की गयी है। काव्यमीमांसा में वर्णित काव्यशास्त्र की उत्पत्ति का आख्यान पौराणिक काव्यात्मक कल्पनाओं की सृष्टि है।

काव्यशास्त्रीय वैदिक परम्परा

प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार वेद सभी विद्याओं की उत्पत्ति के मूल हैं। इसी दृष्टि से काव्यशास्त्र के मूल सिद्धान्तों का वेद में अन्वेषण करने का प्रयत्न किया गया है। साक्षात् काव्यशास्त्र का वेदों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वेदागों में भी शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष इन छः विद्याओं की गणना है पर काव्यशास्त्र की नहीं, परन्तु वेद को देव का अमर काव्य कहा गया है। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति'। वेदों में अनेक स्थानों पर कवि शब्द का प्रयोग किया गया है। इसलिए वेद स्वयं काव्यरूप है और उसमें काव्य का

सम्पूर्ण सौन्दर्य पाया जाता है। ऋग्वेद के सप्तम मण्डल में 'अरंकृतिः' शब्द का प्रयोग मिलता है। महर्षि वसिष्ठ इन्द्र से कहते हैं –

का ते अस्त्यरंकृति सूक्तैः।

काव्यशास्त्र में काव्यसौन्दर्य के आधायक जिन गुण, रीति, अलंकार, ध्वनि आदि तत्त्वों का विवेचन किया गया है, वे सभी तत्त्व का प्रायोगिक अथवा व्यावहारिक रूप से वेद में पाये जाते हैं। डा0 काणे का मत है कि ऋग्वैदिक कवियों ने उपमा, अतिशयोक्ति, रूपक आदि अलंकारों का केवल प्रयोग नहीं किया, वरन् काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों का भी उन्हें कुछ ज्ञान था। प्रस्तुत मन्त्र में मन्त्रदृष्टा ऋषि द्वारा किया गया उपमा का प्रयोग भी प्रशंसनीय है–

उतत्त्वः पश्यन न ददर्श वाच उतत्त्वः शृण्वन् न शृणोत्येननाम् उतोत्व स्मै तन्वं विससे जायेव पत्ये उक्ती सुवासा।

इसी प्रकार 'उषा हस्नेव निर्णीते अप्सः' में उत्प्रेक्षा का सुन्दर प्रयोग है। इसी प्रकार यह मन्त्र भी सुन्दर उदाहरण है यथा–

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्धत्ति अनश्नन्नयो अभिचाकशीति।

प्रस्तुत मंत्र में पीपल पर रहने वाले दो पक्षियों का वर्णन है, जिनमें एक तो पीपल के मीठे फल खा रहा है दूसरा बिना फल भक्षण के आनन्दमग्न है। इन पक्षियों के माध्यम से जीवात्मा तथा परमात्मा का चित्रण किया गया है। जीव इन्द्रिय सुखों का भोग करता है तथा परमात्मा फलों का भोग न करता हुआ संसार में चारों ओर अपने सौन्दर्य को प्रकाशित करता है। यहाँ विभावना का सुन्दर उदाहरण है। इसके अतिरिक्त रूपक, अनुप्रास, विशेषोक्ति का प्रयोग सुस्पष्ट है। अन्य संहिताओं, ब्राह्मणग्रन्थों, आरण्यकों तथा उपनिषदों में भी काव्यशास्त्र का स्वतन्त्र अस्तित्त्व नहीं प्राप्त होता है। परवर्ती काल में छः वेदांगों का विकास हुआ, उनमें काव्यशास्त्र से सम्बद्ध विषयों का न्यूनाधिक प्रतिपादन दृष्टिगत होता है। निरुक्त में यास्क ने उपमा के पाँच भेदों–भूतोपमा, सिद्धोपमा, कर्मोपमा, लुप्तोपमा का उल्लेख किया है। साथ ही अपने पूर्ववर्ती आचार्य गर्ग के उपमानिरूपक लक्षण को उद्धृत किया है।

आचार्य यास्क ने 'अथाप्युपमार्थे भवित' की व्याख्या करते हुए इव, यथा, न, चित्, नु तथा आ के प्रयोगों की सार्थकता सिद्ध की है। निरुक्त में पारिभाषिक अर्थ में अलंकार शब्द का प्रयोग नहीं मिलता, किन्तु यास्क ने ''अलंरिष्णु' शब्द को अलंकृत करने के स्वभाववाला के सामान्य अर्थ में प्रयुक्त किया है। पाणिनि

के युग तक उपमा का प्रयोग स्पष्ट रूप से उपलब्ध होता है। यथा, वा, इव का प्रयोग तत्र तस्येव, तेन तुल्यं क्रिया चेद्धति आदि सूत्रों में व्याख्यायित हुआ है। 'चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः व्याकरणशास्त्र की देन है। अभिधा, लक्षणा शब्दशक्तियों को सर्वप्रथम वैयाकरणों ने परिभाषित किया। व्यंजना शक्ति भी स्फोटसिद्धान्त पर आधारित है। उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि वेदाग् निरुक्त तथा व्याकरण में काव्यशास्त्र का सम्बन्ध है। इस प्रकार वेद तथा वेदांगों में काव्यशास्त्र के मौलिक तत्त्वों के बीज पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

काव्यशास्त्रीय लौकिक परम्परा

ईस्वी सन् से शताब्दियों पूर्व उत्तम प्रकार की काव्य रचना हुई, इसके पर्याप्त प्रमाण है। रामायण और महाभारत इन दोनों महाकाव्यों में उत्तम प्रकार की काव्य रचना मिलती है। महाभारत काव्य की अपेक्षा धर्मशास्त्र है फिर भी यह अनेक कवियों का उपजीव्य रहा है। रामायण अपने उद्देश्य, स्वरूप, विषय की दृष्टि से वास्तव में काव्य है, जहाँ तक काव्य रचना और काव्य समीक्षा के सामान्य सिद्धान्तों के विकास का प्रश्न है वाल्मीकीय रामायण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसे आदि काव्य और इसके रचयिता को आदि कवि होने का सम्मान प्राप्त है। उदात्त शैली के ऐसे महान काव्यात्मक प्रयास के साथ काव्य विवेचन के सिद्धान्तों के निर्माण का प्रयास स्वभाविक है।

रामायण में इस दिशा का कुछ संकेत उपलब्ध है रामायण तथा महाभारत के रूप में काव्यत्व का समृद्ध रूप सामने होने पर काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों की स्थापना का मार्ग बड़ी स्पष्टता के साथ प्रशस्त हुआ होगा ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है।

यद्यपि इस समय संस्कृत काव्य शास्त्र की स्वतन्त्र रचना नहीं हुई, फिर भी कुछ साक्ष्य उपलब्ध होते हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस काल में भी पर्याप्त काव्यरचना हुई थी। महाकाव्य का स्वरूप निरूपण 'वाल्मीकि रामायण' के आधार पर किया गया। रूद्रट के टीकाकार नामिसाधु ने पाणिनि के नाम से 'पातालविजय' नामक महाकाव्य का उल्लेख किया है- तथाहि पाणिनेः पतालविजये महाकाव्ये-''सन्ध्यावधूंगृह्यकरेण''। जबकि राजशेखर उन्हीं नाम से जाम्बवतीजय काव्य को उद्धृत करते हैं।

स्वस्ति पणिनये तस्मै यस्य रुद्र प्रसादतः।
आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवती जयः॥

सुवृत्ततिलक में क्षेमेन्द्र ने उपजाति में पाणिनि के वैशिष्ट्य प्राप्ति की चर्चा की है।

कात्यायन के वार्तिक में आख्यायिका शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है कि आख्यायिका नामक काव्यांग कात्यायन से पूर्व प्रचलित हो चुका था। महाभाष्य में 'वारुरुचं काव्यम' का उल्लेख आता है। साथ ही वासवदत्ता, सुमनोत्तरा तथा भैमरथी नामक आख्यायिकाओं का भी उल्लेख है पतंजलि ने कंसवध तथा बलिबन्धन की कथाओं पर दो कृतियों तथा उसके नाटकीय प्रदर्शन की चर्चा की है।

इन तथ्यों से यह सूचित होता है कि पतंजलि से पूर्व पर्याप्त मात्रा में काव्य-आख्यायिका तथा नाटकों का निर्माण हुआ था। भरत का नाट्यशास्त्र वर्तमान काल में काव्यशास्त्र का प्राचीनतम् ग्रन्थ उपलब्ध है, किन्तु ऐसे साक्ष्य प्राप्त हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि नाट्यशास्त्र भारतीय काव्यशास्त्र का आदि ग्रन्थ नहीं है। इस प्रकार स्पष्ट है कि काव्यशास्त्र के मौलिक तत्त्वों का पर्याप्त मात्रा में उल्लेख होते हुए उसका समुचित शास्त्रीय निरूपण भरत कृत नाट्यशास्त्र से पहले प्राप्त नहीं होता है। नाट्शास्त्र के पश्चात् काव्यविवेचन सम्बन्धित ग्रन्थों के प्रणयन की परम्परा प्राप्त होती है और काव्यशास्त्रीय धारणाओं का विकास उपलब्ध होता है। विवेचन की दृष्टि से इसको तीन भागों में विभक्त कर उसके विकास का अध्ययन किया जा सकता है-

(1) प्राचीन युग- आचार्य भरत से आचार्य रुट
(2) मध्य युग - आचार्य आनन्दवर्धन से पण्डितराज जगन्नाथ तक
(3) आधुनिक युग
    (क) पूर्वार्द्ध परम्परा - आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय से पण्डित छज्जूरामशास्त्री विद्यासागर।
    (ख) उत्तरार्द्ध परम्परा - स्वामी करपात्री से वर्तमान काल तक

प्राचीन युग

भरत

काव्यशास्त्र का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ आचार्य भरत कृत नाट्यशास्त्र है। नाट्यशास्त्र का समय 200 ई0पू0 माना गया है। नाट्यशास्त्र में 36 अध्याय है।

नाट्यशास्त्र तीन भागों में विभक्त है- गद्य, सूत्र विवरण, स्वभावाकारिका, अन्यश्लोक। नाट्यशास्त्र का प्रमुख प्रतिपाद्य नाट्य है, परन्तु अन्य साहित्यिक सिद्धान्तों की चर्चा है। आचार्य भरत की यह कृति काव्यशास्त्र का आदि स्रोत है। नाट्यशास्त्र में सर्वविद्यायें विद्यमान है। आचार्य भरत ने इसका उल्लेख स्वयं किया है-

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।

आचार्य भरत और आचार्य भामह के मध्य आचार्य मेधावी का उल्लेख मिलता है, परन्तु मेधावी का अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता है।

भामह

भामह कृत काव्यालंकार भरतोत्तर युग का प्रथम मान्य ग्रन्थ है। आचार्य भामह ने काव्यालंकार में अपना परिचय स्वयं किया है-

प्रणम्य सार्वसर्वज्ञं मनोवाक्कायकर्मभिः।
काव्यालंकार इत्येष यथाबुद्धि विधास्यते।।
अवलोक्य मतानि सत्कवीनामवगम्य स्वधिया च काव्यलक्ष्म
सुजनावगमाय भामहेन ग्रथितं रक्रिलगोमिसुनुनेदम्।

अलंकारशास्त्र इस ग्रन्थ के द्वारा नाट्यशास्त्र की परतन्त्रता से अपने को मुक्त कर स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में दृष्टिगत होता है। काव्यालंकार छः परिच्छेदों में विभक्त है। आचार्य भामह ने सर्वप्रथम काव्य को परिभाषित किया और काव्य का मुख्य तत्त्व अलंकार को स्वीकार करते हुए प्रथम बार 39 अलंकारों का विवेचन प्रस्तुत किया।

दण्डी

आचार्य दण्डी अलंकार-सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य हैं। आचार्य दण्डी ने अलंकारों की सूक्ष्म व्याख्या की और लिखा-

काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।
ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते कस्तान् कार्त्स्न्येन वक्ष्यति।।

काव्यादर्श आचार्य दण्डी की काव्यशास्त्रीय कृति है। आचार्य दण्डी का समय सप्तम् शताब्दी का उत्तरार्द्ध मान्य है। काव्यादर्श चार अध्यायों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद में काव्यलक्षण, काव्यभेद, वैदर्भी गौड़ी रीतियों, दस गुणों तथा

प्रतिभा इत्यादि तीन हेतुओं का निरूपण किया गया है। द्वितीय परिच्छेद में 35 अलंकारों का चित्रण है। तृतीय परिच्छेद में यमक तथा चित्रबन्ध के 16 प्रकारों का वर्णन है। चतुर्थ परिच्छेद में दोषों का वर्णन किया गया है।

भट्टोदभट्ट

भट्टोदभट्ट का समय आठवीं शताब्दी का अन्तिम भाग माना गया है। आचार्य उद्भट की तीन रचनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है– भामह विवरण, कुमारसम्भव काव्य, काव्यालंकारसार संग्रह। प्रथम दो अनुपलब्ध ग्रन्थ है। उद्भट प्रणीत काव्यालंकारसार संग्रह मात्र उपलब्ध ग्रन्थ है। यह छः वर्गों में विभक्त है। इसमें कुल 79 कारिकाएँ 41 अलंकारों की व्याख्या है।

वामन

काव्यालंकारसूत्र आचार्य वामन की काव्यशास्त्रीय कृति है। आचार्य वामन का समय आठवीं शती का उत्तरार्द्ध तथा नवीं के पूर्वार्द्ध में सिद्ध होता है। वामन ने काव्यात्मा के रूप में रीति का प्रथम बार प्रतिपादन किया रीतिरात्मा काव्यस्य काव्यालंकार में पाँच अधिकरण है। प्रथम शरीराधिकरण में काव्यलक्षण, काव्यप्रयोजन, काव्यशिक्षा, काव्यात्मा रीति, रीतित्रैविध्य आदि का निरूपण है। द्वितीय दोषदर्शन में पद, वाक्य तथा वाक्यार्थ दोषों का निरूपण है। तृतीय गुणविवेचन नामक अधिकरण में गुण तथा अलंकार का भेद तथा दश शब्दगुणों, दश अर्थगुणों का निरूपण किया गया है। चतुर्थ आलंकारिंक नामक अधिकरण में अलंकारों का निरूपण है। पंचम प्रायोगिक नामक अधिकरण में कविपरम्पराओं तथा प्रयोगों का निरूपण है। ये समस्त पाँच अधिकरण कुल बारह अध्यायों में विभक्त है।

रुद्रट

काव्यालंकार के लेखक आचार्य रुद्रट मूलतः अलंकारवादी कवि हैं। आचार्य रुद्रट का समय 850 ई0 माना गया है। काव्यालंकार सोलह अध्यायों में विभक्त है। यह आर्याछंद में है। काव्यालंकार में काव्यप्रयोजन, काव्यहेतु, काव्यलक्षण, रीतिशब्दालंकार, अर्थालंकार, चित्रलंकार, दोष विवेचन, रसविवेचन, नायिका निरूपण किया गया है। काव्यालंकार पर नामिसाधु की टीका का उल्लेख प्राप्त होता है। आचार्य रुद्रट काव्य में रस की महत्वपूर्ण उपस्थिति के समर्थक हैं।

तस्मात्कर्त्तव्यं यत्नेन महीयसा रसैर्युक्तम्

मध्य युग

आनन्दवर्धन

आचार्य आनन्दवर्धन का समय नवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। ध्वन्यालोक चार उद्योत में विभक्त है। आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा माना है 'काव्यस्यात्मा ध्वनिः'23 प्रथम उद्योत में ध्वनि विरोधी आचार्यों के मतों के प्रतिपादन के पश्चात् ध्वनि की समीक्षा है। द्वितीय उद्योत में ध्वनिभेदों की उदाहरण सहित समीक्षा है। तृतीय उद्योत में वर्ण, पद, वाच्य, संघटना तथा प्रबन्धादि व्यंजकों के भेदों का वर्णन है। चतुर्थ उद्योत में कवि प्रतिभा का विवेचन है। आचार्य अभिनवगुप्त रचित लोचन टीका ध्वन्यालोक की प्रसिद्ध टीका है।

राजशेखर

आचार्य राजशेखर का समय दशम शती पूर्वार्द्ध माना जाता है। राजशेखर ने काव्यमीमांसा नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की।

यायावरीयः संक्षिप्त मुनीनां मतविस्तरम्
व्याकरोत् काव्यमीमांसा कविभ्यो राजशेखरः।

काव्यमीमांसा में अट्ठारह अधिकरण हैं, परन्तु कविरहस्य नामक प्रथम अधिकरण उपलब्ध होता है। इस अधिकरण में 18 अध्याय है। इसमें शास्त्रसंग्रह, शास्त्रनिर्देश, काव्यपुरुषोत्पत्ति, पदवाक्यविवेक, शिष्यप्रतिभा, काव्यपाककल्प आदि विषयों का वर्णन है।

मुकुलभट्ट

आचार्य मुकुलभट्ट का समय दशम शती का पूवार्द्ध माना गया है। मुकुलभट्ट की एकमात्र काव्यशास्त्रीय रचना है- अभिधावृत्तिमातृका। भट्टकल्लटपुत्रेण मुकुलेन निरूपिता25 इसमें 15 कारिकाएँ हैं। अभिधावृत्तिमातृका में अभिधा और लक्षणा दो शब्दशक्तियों की मात्र समीक्षा है।

भट्टतौत

आचार्य भट्टतौत का समय दशम शती उत्तरार्द्ध माना गया है। काव्यकौतुक के रचयिता भट्टतौत का ग्रन्थ अनुपलब्ध है। भट्टतौत के काव्यशास्त्रीय मतों का उल्लेख अभिनवभारती में प्राप्त होता है। भट्टतौत की प्रेरणा से अभिनवभारती का प्रणयन अभिनवगुप्त ने किया।

सद्विप्रतोतवदनोदितनाटयवेदतत्त्वार्थमर्थिजनवांछतसिद्धिहेतोः।
माहेश्वराभिनवगुप्तपदप्रतिष्ठः संक्षिप्तवृत्तिविधिना विशदीकरोति॥

भट्टनायक

भट्टनायक का समय दशम शती उत्तरार्द्ध माना गया है। भट्टनायक का हृदयदर्पण नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ अनुपलब्ध है। भट्टनायक भरत रससूत्र के व्याख्याकारों में से हैं। भुक्तिवाद का समर्थन करते हुए भट्टनायक ने साधारणीकरण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

अभिधा भावना चान्या तद्भोगीकृतमेव च।
अभिधा धामतां याते शब्दार्थालंकृती सतः॥
भावना भाव्य एषोऽपि शृंगारादिगणो यत
तदभोकृतरूपेण व्याप्यते सिद्धिमान्नरः॥

अभिनवगुप्त

अभिनवगुप्त का समय दशम शती माना गया है। अभिनवगुप्त की प्रमुख कृतियों में अभिनवभारती नाट्यशास्त्रीय टीका तथा लोचन ध्वन्यालोकीय टीका है। अभिनवगुप्त ध्वनिसिद्धान्त के महान समर्थक है।

(1) 'ध्वन्यतेऽनेनेति ध्वनिः' शब्दार्थौ,
(2) ध्वन्यतेऽसौ ध्वनिः व्यंग्यार्थः,
(3) ध्वन्यतेऽस्मिन् ध्वनिः काव्यविशेषः
(4) ध्वननं ध्वनिः व्यंजनाव्यापारः।

इस प्रकार पाँच अर्थों में ध्वनिशब्द का प्रयोग किया।

धनंजय

आचार्य धनंजय का समय दशम शती का उत्तरार्द्ध माना गया है। दशरूपक आचार्य धनंजय कृत रचना है। इसका उल्लेख उन्होंने स्वयं ग्रन्थान्त में किया है।

विष्णोः सुतेनापि धनंजयेन विद्वन्दमनोरागनिबन्ध हेतुः।
आविष्कृतं मुन्जमहीशगोष्ठी वैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत्॥

यह ग्रन्थ भरत नाट्यशास्त्र पर आधारित है। दशरूपक में चार प्रकाश है। प्रथम प्रकाश में नृत्य लक्षण, अर्थप्रकृतियों, पंचसन्धियों विषकम्भक, प्रवेशक, अन्य नाट्य युक्तियों का विवेचन है। द्वितीय प्रकाश में नायक-नायिका, नाट्यवृत्तियों का विवेचन है। तृतीय प्रकाश में दस प्रकार के रूपकों का विवेचन है। चतुर्थ प्रकाश में रस सिद्धान्त की व्याख्या है।

कुन्तक

आचार्य कुन्तक का समय 11वीं शती का पूर्वार्द्ध माना गया है। वक्रोक्तिजीवित काव्यशास्त्रीय कृति के प्रणेता आचार्य कुन्तक वक्रोक्ति को काव्यात्मा स्वीकार करते हैं।

वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंकीभणितिरुच्यते। वक्रोक्तिः प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा। कीदृशी-वैदग्ध्यभंकीभणितिः। वैदग्ध्यं विदग्धभावः कविकर्मकौशलं तस्य भंकी विच्छित्तिः, तया भणितिः विचित्रैवाभिधा वक्रोक्तिरित्यच्यते।

वक्रोक्तिजीवित में कुल चार उन्मेष हैं। वक्रोक्तिजीवित कारिका, वृत्ति, उदाहरण में निबद्ध है। प्रथम उन्मेष में काव्यलक्षण, काव्यप्रयोजन, वक्रोक्तिस्वरूप, काव्यमार्ग का विवेचन किया गया है। द्वितीय उन्मेष में वर्णविन्यास वक्रता, पदपूर्वार्धवक्रता, प्रत्ययवक्रता का विवेचन किया गया है। तृतीय उन्मेष में वाक्यवक्रता तथा चतुर्थ में प्रकरण तथा प्रबन्ध वक्रता का विवेचन है।

महिमभट्ट

महिमभट्ट का समय ग्यारहवीं शती का उत्तरार्द्ध माना गया है। व्यक्तिविवेकार के नाम से महिमभट्ट प्रसिद्ध है। महिमभट्ट ने ध्वनि का व्यंग्यार्थ रूप में खण्डन किया है। व्यक्तिविवेक तीन विमर्शों में विभक्त है। प्रथम विमर्श में ध्वनि का खण्डन करते हुए अपने मत का प्रतिपादन किया है। द्वितीय विमर्श में अनौचित्य की व्याख्या की गयी है। तृतीय विमर्श में ध्वन्यालोक के चालीस उदाहरण को उद्धृत करने के पश्चात् यह प्रतिपादित किया गया है कि उदाहरण व्यंजना के न होकर अनुमान के है। आचार्य महिमभट्ट ने ध्वनि अथवा प्रतीयमानार्थ को अनुमान का विषय मानकर व्यक्तिविवेक की रचना की -

अनुमानेऽन्तर्भावं सर्वस्यैव ध्वनेः प्रकाशयितुम्।
व्यक्तिविवेकं कुरुते प्रणम्य महिमा परां वाचम्

क्षेमेन्द्र

आचार्य क्षेमेन्द्र का समय ग्यारहवीं शताब्दी का मध्यकाल माना गया है। औचित्यविचारचर्चा तथा कविकण्ठाभरण क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्यात्मा स्वीकृत किया

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते॥

औचित्यविचारचर्चा में 19 कारिकायें हैं। इसमें औचित्य को परिभाषित करने के पश्चात् क्षेमेन्द्र ने 27 प्रकार के औचित्य की सोदाहरण व्याख्या की है। कविकण्ठाभरण में 55 कारिकायें हैं। कविकण्ठाभरण पाँच सन्धियों में विभक्त है। यह ग्रन्थ कविशिक्षापरक है।

भोजराज

आचार्य भोज का समय 1010 ई0 सन् से 1055 ई0 तक माना गया है। भोज प्रणीत सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश दो काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है। सरस्वतीकण्ठाभरण में पाँच परिच्छेद है।

प्रथम परिच्छेद में काव्यलक्षण, काव्यप्रयोजन, दोष तथा शब्दगुणों, अर्थगुणों का विवेचन है। द्वितीय परिच्छेद में चौबीस शब्दालंकारों का वर्णन है। तृतीय परिच्छेद में 24 अर्थालंकारों का वर्णन है। चतुर्थ परिच्छेद में 24 उभयालंकारों तथा पंचम परिच्छेद में रस का विवेचन किया गया है। शृंगार प्रकाश 36 प्रकाशों में विभक्त है। डॉ0 रेवा प्रसाद द्विवेदी ने हार्वर्ड विश्वविद्यालय से प्राप्त शृंगार प्रकाश की पाण्डुलिपि का सम्पादन किया है। आचार्य भोज के अनुसार शृंगार सभी रसों का मूल है।

'शृंगारमेव रसनाद्रसमामनामः'।

मम्मट

ध्वनि प्रतिष्ठापनाचार्य मम्मट का समय 11वीं शती का उत्तरार्द्ध माना गया है। आचार्य मम्मट की प्रसिद्धि का कारण है। उनके द्वारा रचित काव्यशास्त्रीय कृति काव्यप्रकाश। काव्यप्रकाश में दस उल्लास, 142 कारिकायें है। काव्यप्रकाश

में काव्यलक्षण, काव्यप्रयोजन, काव्यभेद, शब्दशक्ति, त्रिविधि काव्यार्थ, ध्वनि, गुण, अलंकार, रीति, काव्यदोष आदि विषयों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। काव्यप्रकाश में काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का समन्वय दृष्टिगत होता है इसका उल्लेख स्वयं ग्रन्थकार ने किया है–

इत्येष मार्गो विदुषां विभिन्नोऽप्यभिन्नरूपः प्रतिभासते यत।
न तद्विचित्रं यद्मुत्र सम्यग्विनिर्मिता सग्टनैव हेतुः।

आचार्य मम्मट ने ध्वनि विरोधी आचार्यों का प्रबल रूप से खण्डन किया और ध्वनि सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की।

रुय्यक

आचार्य रुय्यक का समय 12वीं शती का मध्यभाग माना गया है। अलंकारसर्वस्व के रचनाकार आचार्य रुय्यक राजानक उपाधि से अलंकृत आचार्य थे–

राजानकरुचकापरनाम्नोऽलंकारसर्वस्वकृतः।

रुय्यक ने काव्यप्रकाश संकेत टीका की रचना की। रुय्यक ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ अलंकारसर्वस्व में 82 अलंकारों की व्याख्या की है। रुय्यक ने ध्वनि सिद्धान्त के प्रति अपनी आस्था प्रकट करने के पश्चात् पूर्ववर्ती आचार्यों के काव्यशास्त्रीय मतों का निरूपण किया है।

वाग्भट

आचार्य वाग्भट प्रथम का समय 12वीं शती का मध्यभाग माना गया है। वाग्भटालंकार वाग्भट की काव्यशास्त्रीय कृति है, जो पाँच परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद में काव्यलक्षण तथा काव्य हेतुओं का निरूपण है। द्वितीय परिच्छेद में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाची भाषा का उल्लेख करने के पश्चात् काव्यभेदों तथा पद वाक्य आठ दोषों की समीक्षा की गयी है। तृतीय परिच्छेद में काव्य के दस गुणों तथा चतुर्थ परिच्छेद में चार शब्दालंकारों, 35 अर्थालंकारों, वैदर्भी गौड़ी दो रीतियों का विवेचन किया गया है। पंचम परिच्छेद में रस, नायक, नायिका भेद निरूपण किया गया है। ग्रन्थ समाप्ति पर इस श्लोक से सम्पूर्ण ग्रन्थ का विवेच्य ज्ञात होता है–

दोषैरुज्झितमाश्रितं गुणगणैश्चेतश्चमत्कारिणं नानालंकृतिभिः परीतमभितो रीत्यास्फुरन्त्यासताम।

तैस्तैस्तन्मयतां गतं नवरसैराकल्पकालं कवि स्रष्टारो घटयन्तु काव्यपुरुषं सारस्वाध्यानि:।

हेमचन्द्र

आचार्य हेमचन्द्र का समय 12वीं शताब्दी का मध्यकाल माना गया है। हेमचन्द्र कृत काव्यशास्त्रीय कृति 'काव्यानुशासन' है। काव्यानुशासन में आठ अध्याय है। काव्यानुशासन सूत्र, वृत्ति उदाहरण तीन भागों में विभक्त है। कारिकादि पर हेमचन्द्र ने विवेक नाम की टीका भी लिखी। प्रथम अध्याय में काव्यलक्षण, काव्यप्रयोजन, काव्यहेतु, गुणदोष, अलंकारलक्षण, शब्दार्थलक्षण तथा लक्ष्यार्थ, मुख्यार्थ, व्यंग्यार्थ का विवेचन किया गया है। द्वितीय अध्याय में रसनिरूपण, तृतीय में काव्यदोष समीक्षा, चतुर्थ में गुण विवेचन, पंचम, षष्ठ में शब्दालंकार, अर्थालंकार व्याख्या, सप्तम में नायक-नायिका भेद निरूपण अष्टम अध्याय में काव्यभेदों की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

अमरचन्द्रसूरि

आचार्य अमरचन्द्रसूरि का समय 13वीं शती मध्यकाल माना गया है। आचार्य अमरचन्द्रसूरि कृत काव्यकल्पलता कविशिक्षा परम्परा का श्रेष्ठ ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ चार प्रतानों में विभक्त है। प्रतान अध्यायों में विभक्त है। इस ग्रन्थ में छन्द: सिद्धि, शब्द सिद्धि, श्लेषसिद्धि, अर्थसिद्धि का विवेचन किया गया है।

जयदेव

आचार्य जयदेव का समय 13वीं शती माना गया है। आचार्य जयदेव कृत चन्द्रालोक अपनी रुचिकर शैली के लिए प्रसिद्ध है। चन्द्रालोक दस मयूखों में विभक्त है। इसमें क्रमश: काव्यलक्षण काव्यहेतु, त्रिविध शब्द, दोष निरूपण, लक्षण निरूपण, गुणविवेचन, अलंकार, रस, भाव, रीति, वृत्ति, व्यंजनाविमर्श, ध्वनिभेद, गुणीभूतव्यंय काव्य, लक्षणाविवेचन तथा अभिधा निरूपण किया गया है। जयदेव ने अलंकार को काव्य का अनिवार्य तत्त्व कहा है -

अंकीकरोति य: काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती।।

वाग्भट द्वितीय

आचार्य वाग्भट द्वितीय का समय 13वीं शती उत्तरार्द्ध माना गया है। आचार्य वाग्भट कृत काव्यानुशासन सूत्र, वृत्ति उदाहरण में विभक्त है। काव्यानुशासन पाँच अध्यायों में विभक्त रचना है। प्रथम अध्याय में काव्यप्रयोजन, काव्यहेतु, काव्यभेद तथा महाकाव्यादि लक्षण का विवेचन है। द्वितीय अध्याय में गुण दोष विवेचन तृतीय में अर्थालंकारों, चतुर्थ में शब्दालंकारों तथा पंचम अध्याय में रस तथा नायक-नायिका भेद की समीक्षा है।

विद्याधर

आचार्य विद्याधर का समय 13वीं शती उत्तरार्द्ध का माना गया है। आचार्य विद्याधर कृत एकावली काव्यशास्त्रीय गन्थ में आठ उन्मेष हैं। एकावली में काव्यहेतु काव्यस्वरूप, त्रिविधशब्द, त्रिविध अर्थ, त्रिविध वृत्ति, ध्वनि, गुण, रीति, दोष, अलंकारों का विवेचन किया गया है। आचार्य विद्याधर के अनुसार शब्द अर्थ काव्य का शरीर है तथा ध्वनि काव्य की आत्मा है -

ध्वनिप्रधानं काव्यं तुत कान्तासम्मितमीरितम्।
शब्दार्थौ गुणतां नीत्वा व्यंजनाप्रवणं यतः॥

विद्यानाथ

आचार्य विद्यानाथ का समय चौदहवीं शती पूर्वार्द्ध माना गया है। आचार्य विद्यानाथ ने प्रतापरुद्रयशोभूषण नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ का प्रणयन किया।

प्रतापरुद्रदेवस्य गुणानाश्रित्य निर्मितः अलंकारप्रबन्धोऽयं सन्तः कणोत्सवोऽस्तु वः।

प्रतापरुद्रयशोभूषण में कुल नौ प्रकरण है। इस ग्रन्थ में क्रमशः नायक-काव्य, नाटक, रस, दोष, गुण, शब्दालंकारों, अर्थालंकारों, उभयालंकारों का वर्णन किया गया है।

विश्वनाथ

कविराज विश्वनाथ का समय 14वीं शती माना गया है। आचार्य विश्वनाथ प्रणीत साहित्यदर्पण काव्यशास्त्रीय रचना है। साहित्यदर्पण में दस परिच्छेद है। इसमें काव्यलक्षण, शब्दशक्ति, रस, ध्वनि, व्यंजना, दशरूपक, श्रव्यकाव्यभेद,

दोष, गुण, रीति, अलंकारों का विवेचन किया गया है। आचार्य विश्वनाथ ने रस की व्याख्या विस्तार के साथ की है –

विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम॥

आचार्य विश्वनाथ की दर्पण नामक काव्यप्रकाश की टीका भी है।

केशवमिश्र

आचार्य केशवमिश्र का समय 16वीं शती उत्तरार्द्ध माना गया है। अलंकारशेखर आचार्य केशवमिश्र कृत काव्यशास्त्रीय रचना है। यह ग्रन्थ 8 रत्नों तथा 22 मरीचियों में विभक्त है। अलंकारशेखर में काव्यलक्षण, काव्यहेतु, रीति, शब्दवृत्ति, दोष, गुण, अलंकार, कविसमय, वर्ण्यविषय, समस्यापूर्ति संख्याबोधक वस्तु रसादि का सारग्राही विवेचन किया गया है।

भानुदत्त मिश्र

आचार्य भानुदत्त मिश्र का समय 16वीं शताब्दी माना गया है। रसमंजरी–रसतरग्णि तथा अलंकारतिलक आचार्य भानुदत्त कृत काव्यशास्त्रीय कृतियाँ है। रसमंजरी, रसतरग्णि का प्रतिपाद्य विषय नायक नायिका भेद तथा रस विवेचन हैं। अलंकारतिलक पाँच परिच्छेदों में विभक्त है। अलंकारतिलक में काव्यस्वरूप, पद वाक्य वाक्यार्थ विवेचन, गुण शब्दालंकार तथा अर्थालंकार की समीक्षा प्रस्तुत की है।

रूपगोस्वामी

रूपगोस्वामी का समय 16वीं शती माना गया है। भक्तिरसामृतसिन्धु तथा उज्जवनीलमणि। रूपगोस्वामी कृत भक्तिपरक काव्यशास्त्रीय कृतियाँ है। रूपगोस्वामी कृत भक्तिरस को दशम रस के रूप में स्वीकार किया है। भक्तिरसामृतसिन्धु चार विभागों तथा अनेक लहरियों में विभक्त है।

अप्पय दीक्षित

आचार्य अप्पय दीक्षित का समय 16वीं शती माना गया है। वृत्तिवार्तिक, चित्रमीमांसा तथा कुवलयानन्द अप्पयदीक्षित कृत काव्यशास्त्रीय कृतियाँ है।

अमुं कुवलयानन्दमकरोदप्पदीक्षितः।
नियोगान्देटटपतेर्निरुपाधिकृपानिधेः॥
चन्द्रालोको विजयतां शरदागमसंभवः।
हृद्यः कुवलयानन्दो यत्प्रसादादभूदयम्॥

पण्डितराज जगन्नाथ

काशी की विभूति पण्डितराज जगन्नाथ का समय 17वीं शती स्वीकृत किया गया है। रसगगधर आचार्य जगन्नाथ कृत लोकप्रिय काव्यग्रन्थ है। रसगगधर दो आननों में विभक्त है। प्रथम आनन में काव्यलक्षण, काव्यहेतु, काव्यभेद तथा शब्द अर्थ गुणों की चर्चा की गयी है। इसके अतिरिक्त रस, भाव, रसाभास, भावसन्धि, भावशबलतादि का विवेचन प्रथम आनन में है। द्वितीय आनन में संलक्ष्यक्रमध्वनि, 70 अलंकारों की उदाहरण सहित व्याख्या की गयी है। आचार्य जगन्नाथ ने अनेक पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का खण्डन करते हुए अपनी विद्वता का परिचय रसगगधर में प्रस्तुत किया है।

मननतरितीर्णविद्याऽर्णवो जगन्नाथपण्डितनरेन्द्रः।
रसगधरनाम्नीं करोति कुतुकेन काव्यमीमांसाम्।

आधुनिक युग

पूर्वार्द्ध परम्परा

काव्यशास्त्रीय परम्परा आचार्य जगन्नाथ के पश्चात् समाप्त नहीं हुई। 18वीं शती के आचार्यों के कर्तृत्व की संक्षिप्त समीक्षा इस प्रकार है।

आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय

पण्डितराजोत्तर आचार्यों में आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय का श्रेष्ठ स्थान है। इनका समय 18वीं शती पूर्वार्द्ध माना गया है। आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय कृत 24 गन्थ प्रसिद्ध है। अलंकारकौस्तुभ, अलंकारमुक्तावली, अलंकारप्रदीप, रसचन्द्रिका, कवीन्द्रकण्ठाभरण कवि कृत काव्यशास्त्रीय रचनाएँ हैं। इन ग्रन्थों में कवि ने रस, रीति, गुण, वृत्ति, दोषादि का चित्रण किया है। अलंकारकौस्तुभ काव्यशास्त्र की प्रमुख कृति है, जो 66 कारिकाओं में निबद्ध है। अर्थालंकारों की लक्षण सहित

व्याख्या इस ग्रन्थ में है। अलंकारमुक्तावली में कौस्तुभ के ही अलंकारलक्षण वर्णित है, परन्तु उदाहरण भिन्न है। यह ग्रन्थ सरल भाषा में है।

नानापक्षविभावनकुतुकमलंकारकौस्तुभंकृत्वा।
सुखबोधाय शिशूनां क्रियते मुक्तावलीतेषाम्॥

अलंकारप्रदीप में एक सौ बीस अलंकारों की परिभाषा सूत्रों में है। रसचन्द्रिका में नौ रसों का विवेचन किया गया है।

आचार्य हरिप्रसाद

आचार्य हरिप्रसाद का समय 18वीं शती माना गया है। आचार्य हरिप्रसाद कृत काव्यलोक सात प्रकाशों में विभक्त है। काव्यलोक में काव्यलक्षण, ध्वनिनिरूपण, रसविकास, दोषविवेचन, गुणनिरूपण, शब्दालंकारविवेचन, अर्थालंकार निरूपण का विवेचन किया गया है। कवि ने चमत्कार को काव्यात्मा कहा है।

भाव्यमाने चमत्कारः सुखातिशयकारणम।
वस्त्वलंकाररुपोऽपि काव्यस्यात्मा गतं मम्।

चिरंजीव भट्टाचार्य

आचार्य चिरंजीव भट्टाचार्य का समय 18वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध है। आचार्य चिरंजीव प्रणीत काव्यविलास काव्यशास्त्रविषयक रचना है। काव्यविलास दो भग्यिं में विभक्त है। प्रथम भंकीं में काव्य हेतु, काव्यलक्षण, काव्य प्रयोजन तथा नौ रसों का विवेचन है। द्वितीय भंकी में अलंकारों का निरूपण है। अलंकार निरूपण काव्यप्रकाश पर आधारित है। कवि ने चमत्कार को काव्य का जीवंत तत्त्व माना है। वह चमत्कार रस और अलंकार से सम्भव है। ऐसा कवि का मन्तव्य है।

भट्टदेवशंकर पुरोहित

भट्ट देवशंकर पुरोहित का समय 18वीं शती उत्तरार्द्ध माना गया है। देवशंकर पुरोहित कृत अलंकारमंजूषा काव्यशास्त्रीय रचना है।

उरःपत्तनकृततानिवासेन रानेरनगरजन्मभुवा पुरोहितनाहनाभयिसुतेन पुरोहितोपनामकभट्टदेवशंकरेण विरचिता अलंकारमंजूषा।

अलंकारमंजूषा में 115 अलंकारों का वर्णन है।

आचार्य कृष्णशर्मा

आचार्य कृष्णशर्मा का समय 1835 से 1909 ई0 के मध्य माना है। मन्दारमरन्दचम्पू आचार्य कृष्णशर्मा की काव्यशास्त्रीय रचना है। इसमें छन्दशास्त्र, नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र कविशिक्षा का निरूपण किया गया है। इसके अतिरिक्त कवि कृत काव्यलक्षण, रसप्रकाश इत्यादि रचनाएँ हैं। मन्दारमरन्दचम्पू चम्पू काव्य नहीं है। यह आद्यान्त काव्यशास्त्रीय रचना है। मन्दारमरन्दचम्पू के प्रत्येक बिन्दु के अन्त में आत्मवृत्त इस प्रकार दिया है–

इति श्रीमद्घटिकाशतघण्टाविहिताष्टभाषाचरणनिपुणस्य वासुदेवयोगीश्वरस्यान्तेवास्यन्यतमस्य गुहपुरवासशर्मणः स कृष्णशर्मणः कवेः कृतौ मन्दारमरन्देचम्पू प्रबन्धे वृत्तबिन्दुः प्रथमः समाप्तिमगमत्।

आचार्य नरसिंह कवि

आचार्य नरसिंह कवि का समय 18वीं शती उत्तरार्द्ध माना गया है। नंजराजयशोभूषण कवि नरसिंह कृत काव्यशास्त्रीय रचना है। नंजराजयशोभूषण के अन्त में इसका उल्लेख है–

श्री परम शिवावतार शिवरामदेशिक चरणा रविन्दानुसन्धान् महिमसमासादितनिः सहय दैनन्दिन प्रबन्ध निर्माण साहसिक निखिल विद्वज्जन लालनीय सरस साहित्य सम्प्रदाय प्रवर्तक नरसिंह कवि विरचिते नंजराजयशोभूषणे...।

इस काव्यग्रन्थ में सात विलास है। प्रथम विलास में नायक नायिका भेद निरूपण है। द्वितीय विलास में शब्दार्थभेद, रीतिभेद तथा काव्यभेद का निरूपण किया गया है। तृतीय विलास में गुणीभूतव्यंग्य तथा महाकाव्यादि का लक्षण उपलब्ध है। चतुर्थ विलास में रसभावादि, पंचम विलास में दोष, गुण तथा षष्ठ विलास में नाट्यतत्त्वों का निरूपण किया गया है। सातवें विलास में शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का निरूपण किया गया है।

आशाधर भट्ट

आशाधर भट्ट का समय 18वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध माना गया है। कोविदानन्द और त्रिवेणिका आशाधर भट्ट कृत प्रमुख काव्यशास्त्रीय रचनाएँ हैं। त्रिवेणिका की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि आशाधर भट्ट व्याकरण, मीमांसा, न्यायशास्त्र के पण्डित थे–

इति पद वाक्य प्रमाण पारावारीण श्री रामजी भट्टात्मजा शाधर भट्टविरचिता त्रिवेणिका समाप्ता।

इसमें अभिधा, लक्षणा, व्यंजना शब्दशक्तियों का विस्तारपूर्वक निरूपण किया है। त्रिवेणिका कोविदानन्द का संक्षिप्त रूप है।

आचार्य अच्युतरामशर्मा 'मोडक'

पण्डितराज जगन्नाथ के पश्चात काव्यशास्त्रीय आचार्यों में आचार्य अच्युतरायशर्मा मोडक का प्रमुख स्थान है। आचार्य शर्मा का समय 19वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध माना गया है। साहित्यसार अच्युतराय कृत काव्यशास्त्रीय रचना है। साहित्यसार की पुष्पिका में इसका उल्लेख है।

इति श्री मत्पद वाक्य प्रमाण क्षीरार्णव विहरण श्री मदद्वैत विद्येन्दि रारमणषष्ट्युप- नामक श्री मन्नानारायण शास्त्रि गुरुवर चरणार विन्दराजहंसायमानेन मोङकोप नाम्ना च्युतशर्मणा।

साहित्यसार बारह रत्नों में विभक्त रचना है। धन्वन्तरिरत्न में मंगलाचरण, काव्यप्रकार, काव्यस्वरूप का निरूपण है। ऐरावतरत्न में शब्दशक्तियाँ, इन्दिरारत्न में अर्थव्यंजकता का निरूपण है। दक्षिणावर्तकम्बुरत्न में ध्वनिभेद, रसभेद, व्यभिचारिभाव लक्षणादि का निरूपण है। अश्वरत्न में गुणीभूतव्यङग्य, विषरत्न में दोष, गुणरत्न में काव्यगुण, कौस्तुभरत्न में अर्थालंकार, कामधेनुरत्न में अधमकाव्यभेद, शब्दालंकार तथा कौस्तुभरत्न में अर्थालंकार का निरूपण है। कामधेनुरत्न में अधमकाव्य भेद, शब्दालंकार, रम्भारत्न में नायिका भेद, चन्द्ररत्न में नायक भेद तथा अमृतरत्न उपसंहार के रूप में वर्णित है। साहित्यसार 1313 कारिकाओं में निबद्ध रचना है।

आचार्य कृष्णब्रह्मतन्त्र परकालसंयमीन्द

आचार्य कृष्णब्रह्मतन्त्र परकालसंयमीन्द्र का समय 1839 से 1916 ई0 माना गया है। अलटरमणिहार संयमीन्द्र की काव्यशास्त्रीय कृति है।

नवदुर्गतादेशिककृष्णाम्बासूनुरातनोतीमम्।
श्रीशैलान्वयजन्मा कृष्णोऽलंकारमणिहारम्॥

यह चार खण्डों में विभक्त है। इसमें कवि ने 121 अर्थालंकारो तथा चार शब्दालंकारों का विवेचन किया है। ग्रन्थ में कुवलयानन्द तथा रसगंगाधरादि के उद्धरण का उल्लेख प्राप्त होता है।

पं. छज्जूरामशास्त्री विद्यासागर

बीसवीं शताब्दी के काव्यशास्त्रीय आचार्यों में पं0 छज्जूरामशास्त्री आचार्यों में विद्यासागर का प्रमुख स्थान है। साहित्यबिन्दु छज्जूरामशास्त्री प्रणीत काव्यशास्त्रीय रचना है। यह काव्यग्रन्थ पाँच खण्डों में विभक्त है। यह पाँच खण्ड पाँच बिन्दु हैं। प्रथम बिन्दु में काव्यलक्षण, काव्यप्रयोजन, काव्यहेतु, काव्यप्रकार तथा रूपकादि का निरूपण है। द्वितीय बिन्दु में शब्दार्थ त्रैविध्य तथा रसादि का निरूपण है। तृतीय बिन्दु में दोषनिरूपण है। चतुर्थबिन्दु में रीति, गुण का निरूपण है। पाँचवें बिन्दु में अलंकारों की उदाहरण सहित व्याख्या है। साहित्यबिन्दु 20वीं शताब्दी के काव्यशास्त्रपरक ग्रन्थों में लोकप्रिय रचना है।

आचार्य विद्याराम (1706)

आचार्य विद्याराम कृत रसदीर्घिका काव्यशास्त्रीय महत्वपूर्ण कृति है। इसमें साहित्यशास्त्र के रस, अलंकार, भाव, वृत्ति, नायक नायिका भेद, गुण, दोष आदि अगों पर सुन्दर रीति से विवेचन किया गया है। यह रचना पाँच सोपानों में विभक्त है।

अनायासेन बालानां रसास्वादनहेतवे।
विद्यारामः करोत्येतां मनोज्ञां रसदीर्घिकाम्॥

इस प्रकार आचार्य विद्याराम ने स्वयं कहा है कि यह काव्यशास्त्रीय रचना बालबोध के लिये श्रेष्ठ रचना है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक युग की पूर्वार्द्ध परम्परा के संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने प्रायःअपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में मम्मट, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि आचार्यों के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का अनुसरण किया है। 18वीं शती से 20वीं शती के काव्यशास्त्रियों द्वारा रचित काव्यग्रन्थों में देश, स्थान, व्यक्तित्त्व की विभिन्नता के कारण मौलिकता है। उनके काव्य ग्रन्थों में पूर्व आचार्यों के मतों का प्रायः विश्लेषण तथा समीक्षा करते हुए अपने मतों को प्रस्तुत किया गया है। पण्डितराज जगन्नाथ के पश्चात् संस्कृत काव्यशास्त्र में उपर्युक्त काव्यशास्त्रियों का विशिष्ट योगदान है, क्योंकि इन्होंने अलंकारशास्त्र की परम्परा को आगे बढ़ाया है।

उत्तरार्द्ध परम्परा

ईसापूर्व के समय से प्रारम्भ होने वाली काव्यशास्त्रीय रचनाओं की सरणि 21वीं शती में भी प्रवाहमान है। इक्कीसवीं शती के प्रमुख काव्यशास्त्रियों का परिचय निम्न प्रकार से किया गया है।

स्वामी करपात्री

आधुनिक भक्ति सम्प्रदाय के संस्कृत काव्यशास्त्रियों में स्वामी करपात्री जी ने भक्ति का विवेचन विस्तृत रूप से किया है। स्वामी करपात्री रचित ग्रंथ है – 'भक्तिरसार्णव'। इसमें ग्यारह अनुच्छेद हैं।

कपिलदेव ब्रह्मचारी

भक्तिरससम्प्रदाय के काव्यशास्त्री हैं- कपिलदेव ब्रह्मचारी। 'भक्तिरसविमर्श' कपिलदेव ब्रह्मचारी कृत भक्तिरसप्रधान रचना है। भक्तिरसविमर्श में भक्ति का विवेचन रस रूप में है। यह ग्रन्थ चार अध्यायों में विभक्त है। इस ग्रन्थ में वैदिक सम्प्रदाय से प्रारम्भ करते हुए समस्त वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों तक के विचारों को प्रस्तुत किया गया है। कपिलदेव ब्रह्मचारी का मत है कि प्रेम से युक्त विभाव, अनुभाव, संचारीभावों के संयोग से भक्ति का रस रूप में अनुभव होता है।

ब्रह्मानन्द शर्मा

सत्यानुभूति को काव्य की आत्मा स्वीकार करने वाले डॉ0 ब्रह्मानन्द शर्मा ख्याति प्राप्त कवि हैं। शब्दार्थ में सत्य के रमणीय प्रतिपादन को उन्होंने काव्य की संज्ञा दी है।

शब्दार्थवर्तिसत्यस्य सुन्दरं प्रतिपादनम्।
काव्यस्य लक्षणं ज्ञेयम् सत्यस्यमात्र विशेषता।

डा0 ब्रह्मानन्द शर्मा कृत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है – वस्त्वलंकारदर्शन, काव्यसत्यालोक वस्त्वलंकारदर्शन में अलंकारविषयक विचार व्यक्त किये हैं। काव्यसत्यालोक के माध्यम से डा0 ब्रह्मानन्द शर्मा ने एक नवीन तत्त्व को संस्कृत काव्यशास्त्रीय परम्परा में समाहित किया है। काव्यसत्यालोक में पाँच उद्योत है। प्रथम उद्योत में सत्य का निरूपण है। द्वितीय उद्योत में सत्य में सूक्ष्मता विवेचन है। तृतीय उद्योत में अलंकार तथा चतुर्थ उद्योत में भावयोग तथा पंचम उद्योत में काव्यलक्षण, काव्यभेद, काव्यप्रयोजन की समीक्षा है।

गोविन्दचन्द्र पाण्डे

अर्वाचीन काव्यशास्त्रियों में आचार्य गोविन्दचन्द्र पाण्डे इलाहाबाद के श्रेष्ठ कवियों में हैं। 'आत्मविश्रान्ति ही सौन्दर्य है' ऐसा गोविन्दचन्द्र पाण्डे का मन्तव्य है –

आत्मविश्रान्त्यभेदेन सौन्दर्य व्यपदिश्यते

आचार्य गोविन्दचन्द्र पाण्डे कृत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ हैं – सौन्दर्यदर्शनविमर्श, भक्तिदर्शन विमर्श। सौन्दर्यदर्शनविमर्श तीन परिच्छेदों में विभक्त है। 132 कारिकाओं में विभक्त यह ग्रन्थ सौन्दर्यदर्शनकारिका रूपतत्त्व विमर्श तथा रसतत्त्वविमर्श नामक खण्डों में विभक्त है। दूसरा ग्रन्थ भक्तिदर्शनविमर्श तीन व्याख्यानों में विभक्त है।

आचार्य शिव जी उपाध्याय

साहित्यशास्त्र के श्रेष्ठ विद्वानों में आचार्य शिव जी उपाध्याय श्रेष्ठ है। शिव जी उपाध्याय कृत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है– साहित्यसन्दर्भ। साहित्यसन्दर्भ आठ विमर्श में विभक्त है। ये क्रमशः रसतत्त्वविमर्श, काव्यस्वरूपविमर्श, काव्येधर्मधर्मिभाव, साहित्यस्वरूपविमर्श, सौन्दर्यविमर्श, रसबोधविमर्श, मोक्षतत्साधनविमर्श, धर्मतत्त्वविमर्श हैं। कवि ने शब्द और अर्थ का सहभाव साहित्य है ऐसा निर्दिष्ट किया है।

सहभावेन साहित्यं काव्ये शब्दार्थयोर्मतम्।
तयोरेकतरस्यापि द्वयोर्वासुष्ठुसंस्थितौ।।

जगन्नाथ पाठक

डॉ. जगन्नाथ पाठक अर्वाचीन युग के प्रमुख काव्यशास्त्री है। जगन्नाथ पाठककृत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है – सौन्दर्यकारिका। 102 कारिकाओं में रचित सौन्दर्यकारिका सौन्दर्य पर आधारित रचना है। डॉ0 पाठक का मानना है सौन्दर्य से ही साहित्य श्रेष्ठ सिद्ध होता है। सौन्दर्य से युक्त होने पर कला और साहित्य सरस और सार्थक हो जाते है।

सौन्दर्य हि कलायाः साहित्यस्यापि केवलोपनिषत्।
तेनैवोभयमपि तत् सरसं स्यात् सार्थकं च स्यात्।।

रमाशंकर तिवारी

डा. रमाशंकरतिवारी आधुनिक काव्यशास्त्री है। काव्यतत्त्वविवेक डॉ0 तिवारी की काव्यशास्त्रीय रचना है। यह कृति 24 परिच्छेदों में विभक्त है। काव्यतत्त्वविवेक में काव्यस्वरूप–काव्यहेतु काव्यप्रयोजनादि की समीक्षा की गयी है।

चन्द्रमौलि द्विवेदी

आचार्य चन्द्रमौलि रससूत्र पर अपने विचार व्यक्त करने वाले आधुनिक काव्यशास्त्री है। आचार्य चन्द्रमौलि द्विवेदी कृत काव्यशास्त्रीय रचना रसवसुमूर्ति है- रसवसुमूर्तिरिति नाम्ना रचितोऽयं काव्यशास्त्रीयो ग्रन्थः। यह रचना कारिका तथा गद्य में समन्वित है। रसवसुमूर्ति में असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य के आठ भेदों का निरूपण किया गया है।

हरिश्चन्द्र दीक्षित

हरिश्चन्द्र दीक्षित वैदेशिक परम्परा को स्वीकार करने वाले आधुनिक काव्यशास्त्री हैं। काव्यात्मनिर्णय तथा काव्यशास्त्रीय निबन्धावली हरिश्चन्द्र दीक्षित कृत काव्यरचनाएँ है। डा0 दीक्षित ने वस्तु भावना को काव्य की आत्मा माना है।

शोभा मिश्रा

शोभा मिश्रा आधुनिक काव्यशास्त्रियों में प्रमुख हैं। तृतीयशब्दशक्तिविमर्श डा0 शोभा मिश्रा कृत काव्यशास्त्रीय रचना है। तृतीयशब्दशक्ति विमर्श पाँच अध्यायों में विभक्त रचना है। ग्रन्थ का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय गौणी, तात्पर्या, व्यंजना तीन वृत्तियाँ हैं। उन्होनें अभिधा, लक्षणा, व्यंजना को शब्दशक्ति मानने में संकोच किया है। शोभा मिश्रा का कथन है कि प्रायः आचार्यों ने इन्हीं को ही शब्दशक्ति के रूप में प्रतिपादित किया है, परन्तु इसके अतिरिक्त भी अनेक शब्दशक्तियाँ हैं इनका निरूपण उन्होंने किया है।

रामप्रताप वेदालंकार

चमत्कार को काव्य का सर्वस्व मानने वाले आधुनिक काव्यशास्त्री डॉ0 रामप्रताप वेदालंकार रचित काव्य ग्रन्थ चमत्कारविचारचर्चा है। यह ग्रन्थ तीन अनुच्छेदों में विभक्त है। डॉ0 रामप्रताप वेदालंकार ने चमत्कार के अभाव में काव्य सत्ता को अस्वीकार कर दिया है। प्रथम विचार में चमत्कार की विस्तृत व्याख्या की है। द्वितीय विचार में चमत्कार का लक्षण तथा उदाहरण का निरूपण किया है। तृतीय विचार में काव्यभूमि कश्मीर की प्रसंशा की है। अन्त में चमत्कार को साध्य माना है।

आचार्य चण्डिकाप्रसाद शुक्ल

आचार्य चण्डिकाप्रसाद शुक्ल आधुनिक काव्यशास्त्रियों में प्रसिद्ध है। ध्वन्यालोक टीका 'दीपशिखा' उनके द्वारा रचित काव्यकृति है। दीपशिखाकार ने ध्वन्यालोक की व्याख्या आनन्दवर्धन के अनुसार की है।

ध्वन्यालोकस्य सिद्धान्ता दुर्व्याख्यानतमोवृताः।
प्राप्य दीपशिखालोकं पुनरद्य प्रकाशिताः॥

डॉ0 रेवा प्रसाद द्विवेदी

काशी की संस्कृत काव्यशास्त्रीय परम्परा के आधुनिक विद्वानों में डा0 रेवा प्रसाद द्विवेदी ख्याति प्राप्त आचार्य है। विश्वभारती आदि श्रेष्ठ पुरस्कारों से पुरस्कृत आचार्य रेवा प्रसाद द्विवेदी की काव्यशास्त्रीय रचनाएँ हैं- काव्यालंकारकारिका, साहित्यशारीरक काव्यालंकारकारिका में 261 कारिकाएँ हैं। इस ग्रन्थ में काव्यलक्षण, काव्यप्रयोजन, काव्य हेतु आदि विषयों पर विचार व्यक्त किए गये हैं।

इमा रेवाप्रसादारव्य-सनातन-कवीरिताः।
दिव्यांजनेयुः सद्दृक्षु काव्यालंकारकारिकाः॥

साहित्यशारीरक में डॉ0 द्विवेदी ने काव्यशास्त्रीय विकास परम्परा का उल्लेख किया है। डॉ0 द्विवेदी वर्तमान अलंकारवादी आचार्य है।

डॉ. राजेन्द्र मिश्र

अभिराज राजेन्द्र मिश्र वर्तमान संस्कृत काव्यजगत के श्रेष्ठतम् रचनाकार हैं। अनेक संस्कृत विषयों पर उत्कृष्ट रचना कर डा0 राजेन्द्र मिश्र ने संस्कृत अभिनव काव्यशास्त्र में अपना श्रेष्ठ योगदान सिद्ध कर दिया है।

प्रणीयेदभिराजयशोभूषणमिंचतम्।
भूयः प्रवर्तये रुद्धां काव्यशास्त्रपरम्पराम्॥

अभिराजयशोभूषणम् डा0 मिश्र जी कृत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ उन्मेषों में विभक्त विशालतम काव्यशास्त्र है। परिचयोन्मेष, वस्तुतत्त्वोन्मेष, आत्मोन्मेष, निर्मित्युन्मेष, प्रकीर्णोन्मेष में संस्कृत के अभिनव सिद्धान्तों की विवेचना की है। परिचयोन्मेष में काव्यप्रसंशा, काव्यप्रयोजन, काव्य हेतु, काव्यलक्षण, काव्यविभाजन की चर्चा है। शरीरोन्मेष में शब्दार्थसम्बन्ध, शब्दशक्ति, रीतिवृत्ति, गुणालंकार का विवेचन किया गया है। आत्मोंन्मेष में इस, अलंकार,

रीति, वक्रोक्ति, औचित्य, ध्वनि पर विचार व्यक्त किये गये हैं। निर्मित्युन्मेष में आधुनिक काव्यविधाओं यथा- उपन्यास, एकांकी, लहरी काव्य, विमान काव्य, दीर्घकथा, लघुकथा पर विचार व्यक्त किये गये हैं। प्रकीणोन्मेष में गीत, गजल, छन्दोमुक्त कविता पर ग्रन्थकार ने अपने विचार व्यक्त किये हैं।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी

डा0 राधावल्लभ त्रिपाठी अर्वाचीन काव्यशास्त्रियों में लोकप्रिय आचार्य है। अभिनवकाव्यालंकारसूत्र आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी प्रणीत काव्यशास्त्रीय कृति है। यह तीन अधिकरणों में विभक्त है। काव्यस्वरूपनिरूपण नामक प्रथम अधिकरण में छः अध्याय है। द्वितीय अधिकरण अलंकारविमर्श में छः अध्याय है। तृतीय अधिकरण काव्यविशेषविमर्श में एक अध्याय है। अभिनवकाव्यालंकारसूत्र में तेरह अध्याय तथा सौ सूत्र हैं। डा0 राधावल्लभ त्रिपाठी अर्वाचीन युग के अलंकारवादी आचार्य है।

डॉ0 त्रिपाठी ने अनेक संस्कृत की आधुनिक नवीन विधाओं का उल्लेख अपने ग्रन्थ में किया है, जो आधुनिक युग में संस्कृत काव्यशास्त्र की प्रगति की परिचायिका है। अभिनवकाव्यालंकारसूत्र की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि उन्होंने प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों का मन्थन कर नवसिद्धान्तों के मौक्तिक निकाले हैं।

प्राच्यपाश्चात्यसाहित्यशास्त्रणां क्षीरसागरम्।
निस्सारितं विनिर्मथ्य नवसिद्धान्तमौक्तिकम्।
राधावल्लभ इत्याख्यो विदुषा स वंशवदः।
काव्यालंकारसूत्रं सोऽभिनवं व्यदधादिदम्॥

आचार्य रहसविहारी द्विवेदी

आचार्य रहस विहारी द्विवेदी संस्कृत काव्यशास्त्र आधुनिक परम्परा के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। 'नव्यकाव्यतत्त्वमीमांसा' आचार्य द्विवेदी कृत संस्कृत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ हैं। आधुनिक परिवेश को केन्द्र मानकर आचार्य द्विवेदी ने काव्यप्रयोजन, काव्यलक्षण, काव्यहेतु, का निरूपण किया है। आचार्य द्विवेदी ने हाइकू, सीजो, तान्का आदि पाश्चात्य काव्यतत्त्व के आधार पर काव्य के विशिष्ट भेदों का विवेचन किया है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि काव्यशास्त्र के मूल तत्त्वों का अन्वेषण वेदों में किया गया है। काव्यशास्त्र की यह परम्परा वेदों से प्रारम्भ होकर

अद्युनातन विद्यमान है। काव्यशास्त्र के आचार्यों में भरत, भामह, दण्डी, वामन, रुद्रट, मम्मट, विश्वनाथ, आनन्दवर्धन, जगन्नाथ इत्यादि ने रस, छन्द, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि अपने-अपने स्वतंत्र विचार प्रस्तुत किये हैं। इसी क्रम में आधुनिक युग के आचार्यों ने भी अपने काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

21वीं शती में भी अनेक नवीन संस्कृत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ रचे जा रहे हैं, जो संस्कृत काव्यशास्त्र की उन्नति के परिचायक है।

काव्य, कविता या पद्य, साहित्य की वह विधा है, जिसमें किसी कहानी या मनोभाव को कलात्मक रूप से किसी भाषा के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। भारत में कविता का इतिहास और कविता का दर्शन बहुत पुराना है। इसका प्रारंभ भरतमुनि से समझा जा सकता है। कविता का शाब्दिक अर्थ है काव्यात्मक रचना या कवि की कृति, जो छन्दों की श्रृंखलाओं में विधिवत बांधी जाती है।

काव्य वह वाक्य रचना है, जिससे चित्त किसी रस या मनोवेग से पूर्ण हो। अर्थात् वह कला जिसमें चुने हुए शब्दों के द्वारा कल्पना और मनोवेगों का प्रभाव डाला जाता है। रसगंगाधर में 'रमणीय' अर्थ के प्रतिपादक शब्द को 'काव्य' कहा है। 'अर्थ की रमणीयता' के अंतर्गत शब्द की रमणीयता (शब्दलंकार) भी समझकर लोग इस लक्षण को स्वीकार करते हैं। पर 'अर्थ' की 'रमणीयता' कई प्रकार की हो सकती है। इससे यह लक्षण बहुत स्पष्ट नहीं है। साहित्य दर्पणाकार विश्वनाथ का लक्षण ही सबसे ठीक जँचता है। उसके अनुसार 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है'। रस अर्थात् मनोवेगों का सुखद संचार की काव्य की आत्मा है।

काव्य- प्रकाश में काव्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य और चित्र। ध्वनि वह है, जिस, में शब्दों से निकले हुए अर्थ (वाच्य) की अपेक्षा छिपा हुआ अभिप्राय (व्यंग्य) प्रधान हो। गुणीभूत ब्यंग्य वह है, जिसमें गौण हो। चित्र या अलंकार वह है, जिसमें बिना ब्यंग्य के चमत्कार हो। इन तीनों को क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम भी कहते हैं। काव्यप्रकाशकार का जोर छिपे हुए भाव पर अधिक जान पड़ता है, रस के उद्रेक पर नहीं। काव्य के दो और भेद किए गए हैं, महाकाव्य और खंड काव्य। महाकाव्य सर्गबद्ध और उसका नायक कोई देवता, राजा या धीरोदात्त गुंण संपन्न क्षत्रिय होना चाहिए। उसमें श्रृंगार, वीर या शांत रसों में से कोई रस प्रधान होना चाहिए। बीच-बीच में करुणाय हास्य इत्यादि और रस तथा और और लोगों के प्रसंग भी आने चाहिए। कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए। महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चंद्र, रात्रि, प्रभात, मृगया,

पर्वत, वन, ऋतु सागर, संयोग, विप्रलंभ, मुनि, पुर, यज्ञ, रणप्रयाण, विवाह आदि का यथास्थान सन्निवेश होना चाहिए। काव्य दो प्रकार का माना गया है, दृश्य और श्रव्य। दृश्य काब्य वह है, जो अभिनय द्वारा दिखलाया जाय, जैसे–नाटक, प्रहसन, आदि जो पढ़ने और सुनेन योग्य हो, वह श्रव्य है। श्रव्य काव्य दोटप्रकार का होता है, गद्य और पद्य। पद्य काव्य के महाकाव्य और खंडकाव्य दो भेद कहे जा चुके हैं। गद्य काव्य के भी दो भेद किए गए हैं। कथा और आख्यायिका। चंपू, विरुद और कारंभक तीन प्रकार के काव्य और माने गए हैं।

काव्य की कुछ परिभाषाएं निम्न हैं–

'संक्षेपात् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना, पदावली काव्यम' (अग्निपुराण),

'शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली' (दंडी)

'ननु शब्दार्थौ कायम' (रुद्रट),

'काव्य शब्दोयं गुणलंकार संस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते' (वामन),

'शब्दार्थशरीरम् तावत् काव्यम' (आनंदवर्धन),

'निर्दोषं गुणवत् काव्यं अलंकारैरलंकृतम् रसान्वितम' (भोजराज),

'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि' (मम्मट)

'गुणालंकाररीतिरससहितौ दोषरहिती शब्दार्थौ काव्यम' (वाग्भट), और

'निर्दोषा लक्षणवी सरीतिर्गुणभूषिता, सालंकाररसानेकवृत्तिर्भाक् काव्यशब्दभाक्' (जयदेव)

परिचय

सामान्यतः संस्कृत के काव्य-साहित्य के दो भेद किये जाते हैं-दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य शब्दों के अतिरिक्त पात्रों की वेश-भूषा, भावभंगिमा, आकृति, क्रिया और अभिनय द्वारा दर्शकों के हृदय में रसोन्मेष कराता है। दृश्यकाव्य को 'रूपक' भी कहते हैं, क्योंकि उसका रसास्वादन नेत्रों से होता है। श्रव्य काव्य शब्दों द्वारा पाठकों और श्रोताओं के हृदय में रस का संचार करता है। श्रव्यकाव्य में पद्य, गद्य और चम्पू काव्यों का समावेश किया जाता है। गत्यर्थक में पद् धातु से निष्पन 'पद्य' शब्द गति की प्रधानता सूचित करता है। अतः पद्यकाव्य में ताल, लय और छन्द की व्यवस्था होती है। पुनः पद्यकाव्य के दो उपभेद किये जाते हैं–महाकाव्य और खण्डकाव्य। खण्डकाव्य को 'मुक्तकाव्य' भी कहते हैं। खण्डकाव्य में महाकाव्य के समान जीवन का सम्पूर्ण इतिवृत्त न होकर किसी एक अंश का वर्णन किया जाता है–

खण्डाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च।–साहित्यदर्पण, 6/321

कवित्व के साथ-साथ संगीतात्कता की प्रधानता होने से ही इनको हिन्दी में 'गीतिकाव्य' भी कहते हैं। 'गीति' का अर्थ हृदय की रागात्मक भावना को छन्दोबद्ध रूप में प्रकट करना है। गीति की आत्मा भावातिरेक है। अपनी रागात्मक अनुभूति और कल्पना के कवि वर्ण्यवस्तु को भावात्मक बना देता है। गीतिकाव्य में काव्यशास्त्रीय रूढ़ियों और परम्पराओं से मुक्त होकर वैयक्तिक अनुभव को सरलता से अभिव्यक्त किया जाता है। स्वरूपत: गीतिकाव्य का आकार-प्रकार महाकाव्य से छोटा होता है। इन सब तत्त्वों के सहयोग से संस्कृत मुक्तककाव्य को एक उत्कृष्ट काव्यरूप माना जाता है। मुक्तकाव्य महाकाव्यों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हुए हैं।

संस्कृत में गीतिकाव्य मुक्तक और प्रबन्ध दोनों रूपों में प्राप्त होता है। प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मेघदूत है। अधिकांश प्रबन्ध गीतिकाव्य इसी के अनुकरण पर लिखे गये हैं। मुक्तक वह हैजिसमें प्रत्येक पद्य अपने आप में स्वतंत्र होता है। इसके सुन्दर उदाहरण अमरूकशतक और भतृहरिशतकत्रय हैं। संगीतमय छन्द मधुर पदावली गीतिकाव्यों की विशेषता है। श्रृंगार, नीति, वैराग्य और प्रकृति इसके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। नारी के सौन्दर्य और स्वभाव का स्वाभाविक चित्रण इन काव्यों में मिलता है। उपदेश, नीति और लोकव्यवहार के सूत्र इनमें बड़े ही रमणीय ढंग से प्राप्त हो जाते हैं। यही कारण है कि मुक्तकाव्यों में सूक्तियों और सुभाषितों की प्राप्ति प्रचुरता से होती है।

मुक्तककाव्य की परम्परा स्फुट सन्देश रचनाओं के रूप में वैदिक युग से ही प्राप्त होती है। ऋग्वेद में सरमा नामक कुत्ते को सन्देशवाहक के रूप में भेजने का प्रसंग है। वैदिक मुक्तककाव्य के उदाहरणों में वसिष्ठ और वामदेव के सूक्त, उल्लेखनीय हैं। रामायण, महाभारत और उनके परवर्ती ग्रन्थों में भी इस प्रकार के स्फुट प्रसंग विपुल मात्र में उपलब्ध होते हैं। कदाचित् महाकवि वाल्मीकि के शाकोद्गारों में यह भावना गोपित रूप में रही है। पतिवियुक्ता प्रवासिनी सीता के प्रति प्रेषित श्री राम के संदेशवाहक हनुमान, दुर्योधन के प्रति धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा प्रेषित श्रीकृष्ण और सुन्दरी दयमन्ती के निकट राजा नल द्वारा प्रेषित सन्देशवाहक हंस इसी परम्परा के अन्तर्गत गिने जाने वाले प्रसंग हैं। इस सन्दर्भ में भागवत पुराण का वेणुगीत विशेष रूप से उद्धरणीय है, जिसकी रसविभोर करने वाली भावना छवि संस्कृत मुक्तककाव्यों पर अंकित है।

काव्य–कविता या काव्य क्या है इस विषय में भारतीय साहित्य में आलोचकों की बड़ी समृद्ध परंपरा है-- आचार्य विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ, पंडित अंबिकादत्त व्यास, आचार्य श्रीपति, भामह आदि संस्कृत के विद्वानों से लेकर आधुनिक आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा जयशंकर प्रसाद जैसे–प्रबुद्ध कवियों और आधुनिक युग की मीरा महादेवी वर्मा ने कविता का स्वरूप स्पष्ट करते हुए अपने अपने मत व्यक्त किए हैं। विद्वानों का विचार है कि मानव हृदय अनन्त रूपतामक जगत के नाना रूपों, व्यापारों में भटकता रहता है, लकिन जब मानव अहं की भावना का परित्याग करके विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है, तब वह मुक्त हृदय हो जाता है। हृदय की इस मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं। कविता मनुष्य को स्वार्थ सम्बन्धों के संकुचित घेरे से ऊपर उठाती है और शेष सृष्टि से रागात्मक सम्बंध जोड़ने में सहायक होती है। काव्य की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं। ये परिभाषाएं आधुनिक हिंदी काव्य के लिए भी सही सिद्ध होती हैं। काव्य सिद्ध चित्त को अलौकिक आनंदानुभूति कराता है तो हृदय के तार झंकृत हो उठते हैं। काव्य में सत्यं शिवं सुंदरम् की भावना भी निहित होती है। जिस काव्य में यह सब कुछ पाया जाता है वह उत्तम काव्य माना जाता है।

आइये अब जानते हैं कि काव्य को कैसे कैसे कितने बागों में विभाजित किया गया?

काव्य के भेद दो प्रकार से किए गए हैं–

स्वरूप के अनुसार काव्य के भेद और

शैली के अनुसार काव्य के भेद

स्वरूप के अनुसार काव्य के भेद

स्वरूप के आधार पर काव्य के दो भेद हैं - श्रव्यकाव्य एवं दृष्यकाव्य।

श्रव्य काव्य

जिस काव्य का रसास्वादन दूसरे से सुनकर या स्वयं पढ़ कर किया जाता है, उसे श्रव्य काव्य कहते हैं। जैसे–रामायण और महाभारत।

श्रव्य काव्य के भी दो भेद होते हैं - प्रबन्ध काव्य तथा मुक्तक काव्य।

प्रबंध काव्य

इसमें कोई प्रमुख कथा काव्य के आदि से अंत तक क्रमबद्ध रूप में चलती है। कथा का क्रम बीच में कहीं नहीं टूटता और गौण कथाएँ बीच-बीच में सहायक बन कर आती हैं। जैसे–रामचरित मानस।

प्रबंध काव्य के दो भेद होते हैं - महाकाव्य एवं खण्डकाव्य।

1- महाकाव्य संस्कृत काव्यशास्त्र में महाकाव्य (एपिक) का प्रथम सूत्रबद्ध लक्षण आचार्य भामह ने प्रस्तुत किया है और परवर्ती आचार्यों में दंडी, रुद्रट तथा विश्वनाथ ने अपने अपने ढंग से इस लक्षण का विस्तार किया है। आचार्य विश्वनाथ का लक्षणनिरूपण इस परंपरा में अंतिम होने के कारण सभी पूर्ववर्ती मतों के सारसंकलन के रूप में उपलब्ध है।

इसमें किसी ऐतिहासिक या पौराणिक महापुरुष की संपूर्ण जीवन कथा का आद्योपांत वर्णन होता है। महाकाव्य में ये बातें होना आवश्यक है-

महाकाव्य का नायक कोई पौराणिक या ऐतिहासिक हो और उसका धीरोदात्त होना आवश्यक है।

जीवन की संपूर्ण कथा का सविस्तार वर्णन होना चाहिए।

शृंगार, वीर और शांत रस में से किसी एक की प्रधानता होनी चाहिए। यथास्थान अन्य रसों का भी प्रयोग होना चाहिए।

उसमें सुबह शाम दिन-रात नदी नाले वन पर्वत समुद्र आदि प्राकृतिक दृश्यों का स्वाभाविक चित्रण होना चाहिए।

आठ या आठ से अधिक सर्ग होने चाहिए, प्रत्येक सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन होना चाहिए तथा सर्ग के अंत में अगले अंक की सूचना होनी चाहिए।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार है --

जिसमें सर्गों का निबंधन हो वह महाकाव्य कहलाता है। इसमें देवता या सदृश क्षत्रिय, जिसमें धीरोदात्तत्वादि गुण हों, नायक होता है। कहीं एक वंश के अनेक सत्कुलीन भूप भी नायक होते हैं। शृंगार, वीर और शांत में से कोई एक रस अंगी होता है तथा अन्य सभी रस अंग रूप होते हैं। उसमें सब नाटकसंधियाँ रहती हैं। कथा ऐतिहासिक अथवा सज्जनाश्रित होती है। चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से एक उसका फल होता है। आरंभ में नमस्कार, आशीर्वाद या वर्ण्यवस्तुनिर्देश होता है। कहीं खलों की निंदा तथा सज्जनों का गुणकथन होता है। न अत्यल्प और न अतिदीर्घ अष्टाधिक सर्ग होते हैं, जिनमें से प्रत्येक की

रचना एक ही छंद में की जाती है और सर्ग के अंत में छंदपरिवर्तन होता है। कहीं-कहीं एक ही सर्ग में अनेक छंद भी होते हैं। सर्ग के अंत में आगामी कथा की सूचना होनी चाहिए। उसमें संध्या, सूर्य, चंद्रमा, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, संयोग, विप्रलंभ, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्र और विवाह आदि का यथासंभव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए (साहित्यदर्पण, परिच्छेद 6, 315-324)।

आचार्य विश्वनाथ का उपर्युक्त निरूपण महाकाव्य के स्वरूप की वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध परिभाषा प्रस्तुत करने के स्थान पर उसकी प्रमुख और गौण विशेषताओं का क्रमहीन विवरण उपस्थित करता है। इसके आधार पर संस्कृत काव्यशास्त्र में उपलब्ध महाकाव्य के लक्षणों का सार इस प्रकार किया जा सकता है–

कथानक - महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक अथवा इतिहासाश्रित होना चाहिए।

विस्तार - कथानक का कलवेर जीवन के विविध रूपों एवं वर्णनों से समृद्ध होना चाहिए। ये वर्णन प्राकृतिक, सामाजिक और राजीतिक क्षेत्रों से इस प्रकार संबंद्ध होने चाहिए कि इनके माध्यम से मानव जीवन का पूर्ण चित्र उसके संपूर्ण वैभव, वैचित्र्य एवं विस्तार के साथ उपस्थित हो सके। इसीलिए उसका आयाम (अष्टाधिक सर्गों में) विस्तृत होना चाहिए।

विन्यास - कथानक की संघटना नाट्य संधियों के विधान से युक्त होनी चाहिए अर्थात् महाकाव्य के कथानक का विकास क्रमिक होना चाहिए। उसकी आधिकारिक कथा एवं अन्य प्रकरणों का पारस्परिक संबंध उपकार्य-उपकारक-भाव से होना चाहिए तथा इनमें औचित्यपूर्ण पूर्वापर अन्विति रहनी चाहिए।

नायक - महाकाव्य का नायक देवता या सदृश क्षत्रिय हो, जिसका चरित्र धीरोदात्त गुणों से समन्वित हो - अर्थात् वह महासत्त्व, अत्यंत गंभीर, क्षमावान् अविकत्थन, स्थिरचरित्र, निगूढ़, अहंकारवान् और दृढ़व्रत होना चाहिए। पात्र भी उसी के अनुरूप विशिष्ट व्यक्ति, राजपुत्र, मुनि आदि होने चाहिए।

रस - महाकाव्य में शृंगार, वीर, शांत एवं करुण में से किसी एक रस की स्थिति अंगी रूप में तथा अन्य रसों की अंग रूप में होती है।

फल - महाकाव्य सद्वृत होता है - अर्थात् उसकी प्रवृत्ति शिव एवं सत्य की ओर होती है और उसका उद्देश्य होता है चतुवर्ग की प्राप्ति।

शैली - शैली के संदर्भ में संस्कृत के आचार्यों ने प्रायः अत्यंत स्थूल रूढ़ियों का उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ-एक ही छंद में सर्ग रचना तथा सर्गांत में छंदपरिवर्तन, अष्टाधिक सर्गों में विभाजन, नामकरण का आधार आदि, परंतु महाकाव्य के अन्य लक्षणों के आलोक में यह स्पष्ट ही है कि महाकाव्य की शैली नानावर्णन क्षमा, विस्तारगर्भा, श्रव्य वृत्तों से अलंकृत, महाप्राण होनी चाहिए। आचार्य भामह ने इस भाषा को सालंकार, अग्राम्य शब्दों से युक्त अर्थात् शिष्ट नागर भाषा कहा है।

2- खंडकाव्य इसमें किसी की संपूर्ण जीवनकथा का वर्णन न होकर केवल जीवन के किसी एक ही भाग का वर्णन होता है। खंड काव्य में ये बातें होना आवश्यक है-

कथावस्तु काल्पनिक हो।

उसमें सात या सात से कम सर्ग हों।

उसमें जीवन के जिस भाग का वर्णन किया गया हो वह अपने लक्ष्य में पूर्ण हो।

प्राकृतिक दृश्य आदि का चित्रण देश काल के अनुसार और संक्षिप्त हो।

मुक्तक

इसमें केवल एक ही पद या छंद स्वतंत्र रूप से किसी भाव या रस अथवा कथा को प्रकट करने में समर्थ होता है। गीत कवित्त दोहा आदि मुक्तक होते हैं।

दृश्य काव्य

जिस काव्य की आनंदानुभूति अभिनय को देखकर एवं पात्रों से कथोपकथन को सुन कर होती है, उसे दृश्य काव्य कहते हैं। जैसे–नाटक में या चलचित्र में।

काव्य के विशेष अंग

काव्य के विभिन्न अंगों में रस का नाम सबसे पहले लिया जाता है रस वह महत्वपूर्ण अंग है, जिसके माध्यम से कोई भी काव्य प्रचलित होता है या फिर उसका पतन हो जाता है।

3

रस (काव्य शास्त्र)

श्रव्य काव्य के पठन अथवा श्रवण एवं दृश्य काव्य के दर्शन तथा श्रवण में जो अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है, वही काव्य में रस कहलाता है। रस से जिस भाव की अनुभूति होती है, वह रस का स्थायी भाव होता है। रस, छंद और अलंकार – काव्य रचना के आवश्यक अवयव हैं।

रस का शाब्दिक अर्थ है – निचोड़। काव्य में जो आनन्द आता है, वह ही काव्य का रस है। काव्य में आने वाला आनन्द अर्थात् रस लौकिक न होकर अलौकिक होता है। रस काव्य की आत्मा है। संस्कृत में कहा गया है कि 'रसात्मकम् वाक्यम् काव्यम' अर्थात् रसयुक्त वाक्य ही काव्य है।

रस अन्तःकरण की वह शक्ति है, जिसके कारण इन्द्रियाँ अपना कार्य करती हैं, मन कल्पना करता है, स्वप्न की स्मृति रहती है। रस आनंद रूप है और यही आनंद विशाल का, विराट का अनुभव भी है। यही आनंद अन्य सभी अनुभवों का अतिक्रमण भी है। आदमी इन्द्रियों पर संयम करता है तो विषयों से अपने आप हट जाता हैं, परंतु उन विषयों के प्रति लगाव नहीं छूटता। रस का प्रयोग सार तत्त्व के अर्थ में चरक, सुश्रुत में मिलता है। दूसरे अर्थ में, अवयव तत्त्व के रूप में मिलता है, सब कुछ नष्ट हो जाय, व्यर्थ हो जाय पर जो भाव रूप तथा वस्तु रूप में बचा रहे, वही रस है। रस के रूप में जिसकी निष्पत्ति होती है, वह भाव ही है, जब रस बन जाता है, तो भाव नहीं रहता। केवल रस रहता है। उसकी भावता अपना रूपांतर कर लेती है। रस अपूर्व की उत्पत्ति है।

नाट्य की प्रस्तुति में सब कुछ पहले से दिया रहता है, ज्ञात रहता है, सुना हुआ या देखा हुआ होता है। इसके बावजूद कुछ नया अनुभव मिलता है। वह अनुभव दूसरे अनुभवों को पीछे छोड़ देता है। अकेले एक शिखर पर पहुँचा देता है। रस का यह अपूर्व रूप अप्रमेय और अनिर्वचनीय है।

विभिन्न सन्दर्भों में रस का अर्थ

एक प्रसिद्ध सूक्त है- रसौ वै सरू। अर्थात् वह परमात्मा ही रस रूप आनन्द है। 'कुमारसम्भव' में पानी, तरल और द्रव के अर्थ में रस शब्द का प्रयोग हुआ है। 'मनुस्मृति' मदिरा के लिए रस शब्द का प्रयोग करती है। मात्र, खुराक और घूंट के अर्थ में रस शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'वैशेषिक दर्शन' में चौबीस गुणों में एक गुण का नाम रस है। रस छह माने गए हैं- कटु, अम्ल, मधुर, लवण, तिक्त और कषाय। स्वाद, रूचि और इच्छा के अर्थ में भीकालिदास रस शब्द का प्रयोग करते हैं। प्रेम की अनुभूति के लिए 'कुमारसम्भव' में रस शब्द का प्रयोग हुआ है। 'रघुवंश', आनन्द और प्रसन्नता के अर्थ में रस शब्द काम में लेता है। 'काव्यशास्त्र' में किसी कविता की भावभूमि को रस कहते हैं। रसपूर्ण वाक्य को काव्य कहते हैं।

भर्तृहरि सार, तत्त्व और सर्वोत्तम भाग के अर्थ में रस शब्द का प्रयोग करते हैं। 'आयुर्वेद' में शरीर के संघटक तत्त्वों के लिए रस शब्द प्रयुक्त हुआ है। सप्तधातुओं को भी रस कहते हैं। पारे को रसेश्वर अथवा रसराज कहा है। पारसमणि को रसरत्न कहते हैं। मान्यता है कि पारसमणि के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है। रसज्ञाता को रसग्रह कहा गया है। 'उत्तररामचरित' में इसके लिए रसज्ञ शब्द प्रयुक्त हुआ है। भर्तृहरि काव्यमर्मज्ञ को रससिद्ध कहते हैं। 'साहित्यदर्पण' प्रत्यक्षीकरण और गुणागुण विवेचन के अर्थ में रस परीक्षा शब्द का प्रयोग करता है। नाटक के अर्थ में रसप्रबन्ध शब्द प्रयुक्त हुआ है।

रस के प्रकार

क्रमांक	रस का प्रकार	स्थायी	भाव
1.	श्रृंगार	रस	रति
2.	हास्य	रस	हास
3.	करुण	रस	शोक

4.	रौद्र	रस	क्रोध
5.	वीर	रस	उत्साह
6.	भयानक	रस	भय
7.	वीभत्स	रस	घृणा, जुगुप्सा
8.	अद्‌भुत	रस	आश्चर्य
9.	शांत	रस	निर्वेद

रस नौ हैं

वात्सल्य रस को दसवाँ एवं भक्ति को ग्यारहवाँ रस भी माना गया है। वत्सल तथा भक्ति इनके स्थायी भाव हैं।

पारिभाषिक शब्दावली

नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने रस की व्याख्या करते हुये कहा है –

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस निष्पत्तिः।

अर्थात विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। सुप्रसिद्ध साहित्य दर्पण में कहा गया है हृदय का स्थायी भाव, जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव का संयोग प्राप्त कर लेता है तो रस रूप में निष्पन्न हो जाता है।

रीतिकाल के प्रमुख कवि देव ने रस की परिभाषा इन शब्दों में की है–

जो विभाव अनुभाव अरू, विभचारिणु करि होई।
थिति की पूरन वासना, सुकवि कहत रस होई॥

इस प्रकार रस के चार अंग हैं स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव।

स्थायी भाव

सहृदय के अंतःकरण में जो मनोविकार वासना या संस्कार रूप में सदा विद्यमान रहते हैं तथा जिन्हें कोई भी विरोधी या अविरोधी दबा नहीं सकता, उन्हें स्थायी भाव कहते हैं।

ये मानव मन में बीज रूप में, चिरकाल तक अचंचल होकर निवास करते हैं। ये संस्कार या भावना के द्योतक हैं। ये सभी मनुष्यों में उसी प्रकार छिपे रहते

हैं जैसे–मिट्टी में गंध अविच्छिन्न रूप में समाई रहती है। ये इतने समर्थ होते हैं कि अन्य भावों को अपने में विलीन कर लेते हैं।

इनकी संख्या 11 है - रति, हास, शोक, उत्साह, क्रोध, भय, जुगुप्सा, विस्मय, निर्वेद, वात्सल्य और ईश्वर विषयक प्रेम।

विभाव

विभाव का अर्थ है कारण। ये स्थायी भावों का विभावन करते हैं, उन्हें आस्वाद योग्य बनाते हैं। ये रस की उत्पत्ति में आधारभूत माने जाते हैं।

विभाव के दो भेद हैं–

आलंबन विभाव

भावों का उद्‌गम जिस मुख्य भाव या वस्तु के कारण हो, वह काव्य का आलंबन कहा जाता है।

आलंबन के अंतर्गत आते हैं विषय और आश्रय।

विषय

जिस पात्र के प्रति किसी पात्र के भाव जागृत होते हैं वह विषय है। साहित्य शास्त्र में इस विषय को आलंबन विभाव अथवा 'आलंबन' कहते हैं।

आश्रय

जिस पात्र में भाव जागृत होते हैं वह आश्रय कहलाता है।

उद्दीपन विभाव

स्थायी भाव को जाग्रत रखने में सहायक कारण उद्दीपन विभाव कहलाते हैं।

उदाहरण स्वरूप (1) वीर रस के स्थायी भाव उत्साह के लिए सामने खड़ा हुआ शत्रु आलंबन विभाव है। शत्रु के साथ सेना, युद्ध के बाजे और शत्रु की दर्पोक्तियां, गर्जना-तर्जना, शस्त्र संचालन आदि उद्दीपन विभाव हैं।

उद्दीपन विभाव के दो प्रकार माने गये हैं–

आलंबन-गत (विषयगत)

अर्थात् आलंबन की उक्तियां और चेष्ठाएं

बाह्य (बर्हिगत)

अर्थात् वातावरण से संबंधित वस्तुएं। प्राकृतिक दृश्यों की गणना भी इन्हीं के अंर्तगत होती हैं।

अनुभाव

रति, हास, शोक आदि स्थायी भावों को प्रकाशित या व्यक्त करने वाली आश्रय की चेष्टाएं अनुभाव कहलाती हैं।

ये चेष्टाएं भाव-जागृति के उपरांत आश्रय में उत्पन्न होती हैं, इसलिए इन्हें अनुभाव कहते हैं, अर्थात जो भावों का अनुगमन करे वह अनुभाव कहलाता है।

अनुभाव के दो भेद हैं - इच्छित और अनिच्छित।

आलंबन एवं उद्दीपन के माध्यम से अपने-अपने कारणों द्वारा उत्पन्न, भावों को बाहर प्रकाशित करने वाली सामान्य लोक में जो कार्य चेष्टाएं होती हैं, वे ही काव्य नाटक आदि में निबद्ध अनुभाव कहलाती हैं। उदाहरण स्वरूप विरह-व्याकुल नायक द्वारा सिसकियां भरना, मिलन के भावों में अश्रु, स्वेद, रोमांच, अनुराग सहित देखना, क्रोध जागृत होने पर शस्त्र संचालन, कठोर वाणी, आंखों का लाल हो जाना आदि अनुभाव कहे जाएंगे।

साधारण अनुभाव–अर्थात (इच्छित अभिनय) के चार भेद हैं। 1.आंगिक 2.वाचिक 3. आहार्य 4. सात्विक। आश्रय की शरीर संबंधी चेष्टाएं आंगिक या कायिक अनुभाव है। रति भाव के जाग्रत होने पर भू-विक्षेप, कटाक्ष आदि प्रयत्न पूर्वक किये गये वाग्व्यापार वाचिक अनुभाव हैं। आरोपित या कृत्रिम वेष-रचना आहार्य अनुभाव है। परंतु, स्थायी भाव के जाग्रत होने पर स्वाभाविक, अकृत्रिम, अयत्नज, अंगविकार को सात्विक अनुभाव कहते हैं। इसके लिए आश्रय को कोई बाह्य चेष्टा नहीं करनी पड़ती। इसलिए ये अयत्नज कहे जाते हैं। ये स्वतः प्रादुर्भूत होते हैं और इन्हें रोका नहीं जा सकता।

सात्विक अनुभाव–अर्थात (अनिच्छित) आठ भेद हैं - स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वेपथु (कम्प), वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय।

संचारी या व्यभिचारी भाव

जो भाव केवल थोड़ी देर के लिए स्थायी भाव को पुष्ट करने के निमित्त सहायक रूप में आते हैं और तुरंत लुप्त हो जाते हैं, वे संचारी भाव हैं।

संचारी शब्द का अर्थ है, साथ-साथ चलना अर्थात संचरणशील होना, संचारी भाव स्थायी भाव के साथ संचरित होते हैं, इनमें इतना सामर्थ्य होता है कि ये प्रत्येक स्थायी भाव के साथ उसके अनुकूल बनकर चल सकते हैं। इसलिए इन्हें व्यभिचारी भाव भी कहा जाता है।

संचारी या व्यभिचारी भावों की संख्या 33 मानी गयी है - निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दीनता, चिंता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीड़ा, चापल्य, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार (मिर्गी), स्वप्न, प्रबोध, अमर्ष (असहनशीलता), अवहित्था (भाव का छिपाना), उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रस और वितर्क।

रस की उत्पत्ति

भरत ने प्रथम आठ रसों में शृंगार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स को प्रधान मानकर क्रमशः हास्य, करुण, अद्‌भुत तथा भयानक रस की उत्पत्ति मानी है। शृंगार की अनुकृति से हास्य, रौद्र तथा वीर कर्म के परिणामस्वरूप करुण तथा अद्‌भुत एवं वीभत्स दर्शन से भयानक उत्पन्न होता है। अनुकृति का अर्थ, अभिनवगुप्त (11वीं शती) के शब्दों में आभास है, अतः किसी भी रस का आभास हास्य का उत्पादक हो सकता है। विकृत वेशालंकारादि भी हास्योत्पादक होते हैं। रौद्र का कार्य विनाश होता है, अतः उससे करुण की तथा वीरकर्म का कर्ता प्रायः अशक्य कार्यों को भी करते देखा जाता है, अतः उससे अद्‌भुत की उत्पत्ति स्वाभाविक लगती है। इसी प्रकार बीभत्सदर्शन से भयानक की उत्पत्ति भी संभव है। अकेले स्मशानादि का दर्शन भयोत्पादक होता है। तथापि यह उत्पत्ति सिद्धांत आत्यंतिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि परपक्ष का रौद्र या वीर रस स्वपक्ष के लिए भयानक की सृष्टि भी कर सकता है और बीभत्सदर्शन से शांत की उत्पत्ति भी संभव है। रौद्र से भयानक, शृंगार से अद्‌भुत और वीर तथा भयानक से करुण की उत्पत्ति भी संभव है। वस्तुतः भरत का अभिमत स्पष्ट नहीं है। उनके पश्चात् धनंजय (10वीं शती) ने चित्त की विकास, विस्तार, विक्षोभ तथा विक्षेप नामक चार अवस्थाएँ मानकर शृंगार तथा हास्य को विकास, वीर तथा अद्‌भुत को विस्तार, बीभत्स तथा भयानक को विक्षोभ और रौद्र तथा करुण को विक्षेपावस्था से संबंधित माना है, किंतु जो विद्वान् केवल द्रुति, विस्तार तथा विकास नामक तीन ही अवस्थाएँ मानते हैं उनका इस वर्गीकरण से समाधान न होगा। इसी प्रकार यदि शृंगार में चित्त की द्रवित स्थिति, हास्य तथा अद्‌भुत में

उसका विस्तार, वीर तथा रौद्र में उसकी दीप्ति तथा बीभत्स और भयानक में उसका संकोच मान लें तो भी भरत का क्रम ठीक नहीं बैठता। एक स्थिति के साथ दूसरी स्थिति की उपस्थिति भी असंभव नहीं है। अद्‌भुत और वीर में विस्तार के साथ दीप्ति तथा करुण में द्रुति और संकोच दोनों हैं। फिर भी भरतकृत संबंध स्थापन से इतना संकेत अवश्य मिलता है कि कथित रसों में परस्पर उपकारकर्ता विद्यमान है और वे एक दूसरे के मित्र तथा सहचारी हैं।

रसों का परस्पर विरोध

मित्रता के समान ही इन रसों की प्रयोगस्थिति के अनुसार इनके विरोध की कल्पना भी की गई है। किस रसविशेष के साथ किन अन्य रसों का तुरंत वर्णन आस्वाद में बाधक होगा, यह विरोधभावना इसी विचार पर आधारित है। करुण, बीभत्स, रौद्र, वीर और भयानक से शृंगार काय भयानक और करुण से हास्य काय हास्य और शृंगार से करुण काय हास्य, शृंगार और भयानक से रौद्र काय शृंगार, वीर, रौद्र, हास्य और शात से भयानक काय भयानक और शांत से वीर काय वीर, शृंगार, रौद्र, हास्य और भयानक से शांत का विरोध माना जाता है। यह विरोध आश्रय ऐक्य, आलंबन ऐक्य अथवा नैरंतर्य के कारण उपस्थित होता है। प्रबंध काव्य में ही इस विरोध की संभावना रहती है। मुक्तक में प्रसंग की छंद के साथ ही समाप्ति हो जाने से इसका भय नहीं रहता है। लेखक को विरोधी रसों का आश्रय तथा आलंबनों को पृथक-पृथक रखकर अथवा दो विरोधी रसों के बीच दोनों के मित्र रस को उपस्थित करके या प्रधान रस की अपेक्षा अंगरस का संचारीवत् उपस्थित करके इस विरोध से उत्पन्न आस्वाद-व्याघात को उपस्थित होने से बचा लेना चाहिए।

रस की आस्वादनीयता

रस की आस्वादनीयता का विचार करते हुए उसे ब्रह्मानंद सहोदर, स्वप्रकाशनंद, विलक्षण आदि बताया जाता है और इस आधार पर सभी रसों को आनंदात्मक माना गया है। भट्‌टनायक (10वीं शती ई.) ने सत्वोद्रैक के कारण ममत्व-परत्व-हीन दशा, अभिनवगुप्त (11वीं शती ई.) ने निर्विघ्न प्रतीति तथा आनंदवर्धन (9 श. उत्तर) ने करुण में माधुर्य तथा आर्द्रता की अवस्थित बताते हुए शृंगार, विप्रलंभ तथा करुण को उत्तरोत्तर प्रकर्षमय बताकर सभी रसों की आनंदस्वरूपता की ओर ही संकेत किया है, किंतु अनुकूलवेदनीयता तथा

प्रतिकूलवेदनीयता के आधार पर भावों का विवेचन करके रुद्रभट्ट (9 से 11वीं शती ई. बीच) रामचंद्र गुणचंद्र (12वीं श.ई.), हरिपाल, तथा धनंजय ने और हिंदी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रसों का सुखात्मक तथा दु:खात्मक अनुभूतिवाला माना है। अभिनवगुप्त ने इन सबसे पहले ही 'अभिनवभारती' में 'सुखदु:खस्वभावों रस:' सिद्धात को प्रस्तुत कर दिया था। सुखात्मक रसों में शृंगार, वीर, हास्य, अद्‌भुत तथा शांत की और दु:खात्मक में करुण, रौद्र, बीभत्स तथा भयानक की गणना की गई। 'पानकरस' का उदाहरण देकर जैसे–यह सिद्ध किया गया कि गुड़ मिरिच आदि को मिश्रित करके बनाए जानेवाले पानक रस में अलग–अलग वस्तुओं का खट्टा मीठापन न मालूम होकर एक विचित्र प्रकार का आस्वाद मिलता है, उसी प्रकार यह भी कहा गया कि उस वैचित्र्य में भी आनुपातिक ढंग से कभी खट्टा, कभी तिक्त और इसी प्रकार अन्य प्रकार का स्वाद आ ही जाता है। मधुसूदन सरस्वती का कथन है कि रज अथवा तम की अपेक्षा सत्व को प्रधान मान लेने पर भी यह तो मानना ही चाहिए कि अंशत: उनका भी आस्वाद बना रहता है। आचार्य शुक्ल का मत है कि हमें अनुभूति तो वर्णित भाव की ही होती है और भाव सुखात्मक दु:खात्मक आदि प्रकार के हैं, अतएव रस भी दोनों प्रकार का होगा। दूसरी ओर रसों को आनंदात्मक मानने के पक्षपाती सहृदयों को ही इसका प्रमण मानते हैं और तर्क का सहारा लेते हैं कि दु:खदायी वस्तु भी यदि अपनी प्रिय है तो सुखदायी ही प्रतीत होती है। जैसे–रतिकेलि के समय स्त्री का नखक्षतादि से यों तो शरीर पीड़ा ही अनुभव होती है, किंतु उस समय वह उसे सुख ही मानती है। भोज (11वीं शती ई.) तथा विश्वनाथ (14वीं शती ई.) की इस धारणा के अतिरिक्त स्वयं मधुसूदन सरस्वती रसों को लौकिक भावों की अनुभूति से भिन्न और विलक्षण मानकर इनकी आनंदात्मकता का समर्थन करते हैं और अभिनवगुप्त वीतविघ्नप्रतीत वताकर इस धारणा को स्पष्ट करते हैं कि उसी भाव का अनुभव भी यदि बिना विचलित हुए और किसी बाहरी अथवा अंतरोद्‌भूत अंतराय के बिना किया जाता है तो वह सह्य होने के कारण आनंदात्मक ही कहलाता है। यदि दु:खात्मक ही मानें तो फिर शृंगार के विप्रलंभ भेद को भी दु:खात्मक ही मानें तो फिर शृंगार के विप्रलंभ भेद को भी दु:खात्मक ही क्यों न माना जाए? इस प्रकार के अनेक तर्क देकर रसों की आनंदरूपता सिद्ध की जाती है। अंग्रेजी में ट्रैजेडी से मिलनेवाले आनंद का भी अनेक प्रकार से समाधान किया गया है और मराठी लेखकों ने भी रसों की आनंदरूपता के संबंध में पर्याप्त भिन्न धारणाएँ प्रस्तुत की हैं।

रसों का राजा कौन है?

प्राय: रसों के विभिन्न नामों की औपाधिक या औपचारिक सत्ता मानकर पारमार्थिक रूप में रस को एक ही मानने की धारणा प्रचलित रही है। भारत ने 'न हि रसादृते कश्चिदप्यर्थ–प्रवर्तत' पंक्ति में 'रस' शब्द का एक वचन में प्रयोग किया है और अभिनवगुप्त ने उपरिलिखित धारणा व्यक्त की है। भोज ने शृंगार को ही एकमात्र रस मानकर उसकी सर्वथैव भिन्न व्याख्या की है, विश्वनाथ की अनुसार नारायण पंडित चमत्कारकारी अद्‌भुत को ही एकमात्र रस मानते हैं, क्योंकि चमत्कार ही रसरूप होता है। भवभूति (8वीं शती ई.) ने करुण को ही एकमात्र रस मानकर उसी से सबकी उत्पत्ति बताई है और भरत के 'स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शांताद्‌भाव: प्रवर्तते, पुनर्निमित्तापाये च शांत एवोपलीयते' - (नाट्यशास्त्र 6/108) वक्तव्य के आधार पर शांत को ही एकमात्र रस माना जा सकता है। इसी प्रकार उत्साह तथा विस्मय की सर्वरससंचारी स्थिति के आधार पर उन्हें भी अन्य सब रसों के मूल में माना जा सकता है। रस आस्वाद और आनंद के रूप में एक अखंड अनुभूति मात्र हैं, यह एक पक्ष है और एक ही रस से अन्य रसों का उद्‌भव हुआ है यह दूसरा पक्ष है।

रसाप्राधान्य के विचार में रसराजता की समस्या उत्पन्न की है। भरत समस्त शुचि, उज्ज्वल, मेध्य और दलनीय को शृंगार मानते हैं, 'अग्निपुराण' (11वीं शती) शृंगार को ही एकमात्र रस बताकर अन्य सबको उसी के भेद मानता है, भोज शृंगार को ही मूल और एकमात्र रस मानते हैं, परंतु उपलब्ध लिखित प्रमाण के आधार पर 'रसराज' शब्द का प्रयोग 'उज्ज्वलनीलमणि' में भक्तिरस के लिए ही दिखाई देता है। हिंदी में केशवदास (16वीं शती ई.) शृंगार को रसनायक और देव कवि (18वीं शती ई.) सब रसों का मूल मानते हैं। 'रसराज' संज्ञा का शृंगार के लिए प्रयोग मतिराम (18वीं शती ई.) द्वारा ही किया गया मिलता है। दूसरी ओर बनारसीदास (17वीं शती ई.) 'समयसार' नाटक में 'नवमों सांत रसनि को नायक' की घोषणा करते हैं। रसराजता की स्वीकृति व्यापकता, उत्कट आस्वाद्यता, अन्य रसों को अंतर्भूत करने की क्षमता सभी संचारियों तथा सात्विकों को अंत:सात् करने की शक्ति सर्वप्राणिसुलभत्व तथा शीघ्रग्राह्यता आदि पर निर्भर है। ये सभी बातें जितनी अधिक और प्रबल शृंगार में पाई जाती हैं, उतनी अन्य रसों में नहीं। अत: रसराज वही कहलाता है।

शृंगार रस

विचारको ने रौद्र तथा करुण को छोड़कर शेष रसों का भी वर्णन किया है। इनमें सबसे विस्तृत वर्णन शृंगार का ही ठहरता है। शृंगार मुख्यत: संयोग तथा विप्रलंभ या वियोग के नाम से दो भागों में विभाजित किया जाता है, किंतु धनंजय आदि कुछ विद्वान् विप्रलंभ के पूर्वानुराग भेद को संयोग-विप्रलंभ-विरहित पूर्वावस्था मानकर अयोग की संज्ञा देते हैं तथा शेष विप्रयोग तथा संभोग नाम से दो भेद और करते हैं। संयोग की अनेक परिस्थितियों के आधार पर उसे अगणेय मानकर उसे केवल आश्रय भेद से नायकारब्ध, नायिकारब्ध अथवा उभयारब्ध, प्रकाशन के विचार से प्रच्छन्न तथा प्रकाश या स्पष्ट और गुप्त तथा प्रकाशनप्रकार के विचार से संक्षिप्त, संकीर्ण, संपन्नतर तथा समृद्धिमान नामक भेद किए जाते हैं तथा विप्रलंभ के पूर्वानुराग या अभिलाषहेतुक, मान या ईर्ष्याहेतुक, प्रवास, विरह तथा करुण प्रिलंभ नामक भेद किए गए हैं। 'काव्यप्रकाश' का विरहहेतुक नया है और शापहेतुक भेद प्रवास के ही अंतर्गत गृहीत हो सकता है, 'साहित्यदर्पण' में करुण विप्रलंभ की कल्पना की गई है। पूर्वानुराग कारण की दृष्टि से गुणश्रवण, प्रत्यक्षदर्शन, चित्रदर्शन, स्वप्न तथा इंद्रजाल-दर्शन-जन्य एवं राग स्थिरता और चमक के आधार पर नीली, कुसुंभ तथा मंजिष्ठा नामक भेदों में बाँटा जाता है। 'अलंकारकौस्तुभ' में शीघ्र नष्ट होने वाले तथा शोभित न होने वाले राग को 'हारिद्र' नाम से चौथा बताया है, जिसे उनका टीकाकार 'श्यामाराग' भी कहता है।

पूर्वानुराग का दश कामदशाएँ - अभिलाष, चिंता, अनुस्मृति, गुणकीर्तन, उद्वेग, विलाप, व्याधि, जड़ता तथा मरण (या अप्रदर्श्य होने के कारण उसके स्थान पर मूर्च्छा) - मानी गई हैं, जिनके स्थान पर कहीं अपने तथा कहीं दूसरे के मत के रूप में विष्णुधर्मोत्तरपुराण, दशरूपक की अवलोक टीका, साहित्यदर्पण, प्रतापरुद्रीय तथा सरस्वतीकंठाभरण तथा काव्यदर्पण में किंचित् परिवर्तन के साथ चक्षुप्रीति, मन:संग, स्मरण, निद्राभंग, तनुता, व्यावृत्ति, लज्जानाश, उन्माद, मूर्च्छा तथा मरण का उल्लेख किया गया है। शारदातनय (13वीं शती) ने इच्छा तथा उत्कंठा को जोड़कर तथा विद्यानाथ (14वीं शती पूर्वार्ध) ने स्मरण के स्थान पर संकल्प लाकर और प्रलाप तथा संज्वर को बढ़ाकर इनकी संख्या 12 मानी है। यह युक्तियुक्त नहीं है और इनका अंतर्भाव हो सकता है। मान-विप्रलंभ प्रणय तथा ईर्ष्या के विचार से दो प्रकार का तथा मान की स्थिरता तथा अपराध की गंभीरता के विचार से लघु, मध्यम तथा गुरु नाम से तीन प्रकार का,

प्रवासविप्रलंभ कार्यज, शापज, सँभ्रमज नाम से तीन प्रकार का और कार्यज के यस्यत्प्रवास या भविष्यत् गच्छत्प्रवास या वर्तमान तथा गतप्रवास या भविष्यत् गच्छत्प्रवास या वर्तमान तथा गतप्रवास या भूतप्रवास, शापज के तादूप्य तथा वैरूप्य, तथा संभ्रमज के उत्पात, वात, दिव्य, मानुष तथा परचक्रादि भेद के कारण कई प्रकार का होता है। विरह गुरुजनादि की समीपता के कारण पास रहकर भी नायिका तथा नायक के संयोग के होने का तथा करुण विप्रलंभ मृत्यु के अनंतर भी पुनर्जीवन द्वारा मिलन की आशा बनी रहनेवाले वियोग को कहते हैं। शृंगार रस के अंतर्गत नायिकालंकार, ऋतु तथा प्रकृति का भी वर्णन किया जाता है। एक उदाहरण है–

राम को रूप निहारति जानकी कंगन के नग की परछाहीं।
याते सबे सुख भूलि गइ कर तेकि रही पल तारति नाहीं।।

हास्य रस

हास्यरस के विभावभेद से आत्मस्थ तथा परस्थ एवं हास्य के विकासविचार से स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित तथा अतिहसित भेद करके उनके भी उत्तम, मध्यम तथा अधम प्रकृति भेद से तीन भेद करते हुए उनके अंतर्गत पूर्वोक्त क्रमशः दो-दो भेदों को रखा गया है। हिंदी में केशवदास तथा एकाध अन्य लेखक ने केवल मंदहास, कलहास, अतिहास तथा परिहास नामक चार ही भेद किए हैं। अंग्रेजी के आधार पर हास्य के अन्य अनेक नाम भी प्रचलित हो गए हैं। वीर रस के केवल युद्धवीर, धर्मवीर, दयावीर तथा दानवीर भेद स्वीकार किए जाते हैं। उत्साह को आधार मानकर पंडितराज (17वीं शती मध्य) आदि ने अन्य अनेक भेद भी किए हैं। अद्भुत रस के भरत दिव्य तथा आनंदज और वैष्णव आचार्य दृष्ट, श्रुत, संकीर्तित तथा अनुमित नामक भेद करते हैं। बीभत्स भरत तथा धनंजय के अनुसार शुद्ध, क्षोभन तथा उद्वेगी नाम से तीन प्रकार का होता है और भयानक कारणभेद से व्याजजन्य या भ्रमजनित, अपराधजन्य या काल्पनिक तथा वित्रसितक या वास्तविक नाम से तीन प्रकार का और स्वनिष्ठ परनिष्ठ भेद से दो प्रकार का माना जाता है। शांत का कोई भेद नहीं है। केवल रुद्रभट्ट ने अवश्य वैराग्य, दोषनिग्रह, संतोष तथा तत्त्वसाक्षात्कार नाम से इसके चार भेद दिए हैं, जो साधन मात्र के नाम है और इनकी संख्या बढ़ाई भी जा सकती है।

शान्त रस

शांत रस का उल्लेख यहाँ कुछ दृष्टियों से और आवश्यक है। इसके स्थायीभाव के संबंध में ऐकमत्य नहीं है। कोई शम को और कोई निर्वेद को स्थायी मानता है। रुद्रट (9 ई.) ने 'सम्यक् ज्ञान' को, आनंदवर्धन ने 'तृष्णाक्षयसुख' को, तथा अन्यों ने 'सर्वचित्तवृत्तिप्रशम', निर्विशेषचित्तवृत्ति, 'घृति' या 'उत्साह' को स्थायीभाव माना। अभिनवगुप्त ने 'तत्त्वज्ञान' को स्थायी माना है। शांत रस का नाट्य में प्रयोग करने के संबंध में भी वैमत्य है। विरोधी पक्ष इसे विक्रियाहीन तथा प्रदर्शन में कठिन मानकर विरोध करता है तो समर्थक दल का कथन है कि चेष्टाओं का उपराम प्रदर्शित करना शांत रस का उद्देश्य नहीं है, वह तो पर्यंतभूमि है। अतएव पात्र की स्वभावगत शांति एवं लौकिक दु:ख सुख के प्रति विराग के प्रदर्शन से ही काम चल सकता है। नट भी इन बातों को और इनकी प्राप्ति के लिए किए गए प्रयत्नों को दिखा सकता है और इस दशा में संचारियों के ग्रहण करने में भी बाधा नहीं होगी। सर्वेंद्रिय उपराम न होने पर संचारी आदि हो ही सकते हैं। इसी प्रकार यदि शांत शम अवस्थावाला है तो रौद्र, भयानक तथा वीभत्स आदि कुछ रस भी ऐसे हैं, जिनके स्थायी भाव प्रबुद्ध अवस्था में प्रबलता दिखाकर शीघ्र ही शांत होने लगते हैं। अतएव जैसे–उनका प्रदर्शन प्रभावपूर्ण रूप में किया जाता है, वैसे ही इसका भी हो सकता है। जैसे–मरण जैसी दशाओं का प्रदर्शन अन्य स्थानों पर निषिद्ध है वैसे ही उपराम की पराकाष्ठा के प्रदर्शन से यहाँ भी बचा जा सकता है।

रसों का अन्तर्भाव

स्थायीभावों के किसी विशेष लक्षण अथवा रसों के किसी भाव की समानता के आधार पर प्राय: रसों का एक दूसरे में अंतर्भाव करने, किसी स्थायीभाव का तिरस्कार करके नवीन स्थायी मानने की प्रवृत्ति भी यदा–कदा दिखाई पड़ी है। यथा, शांत रस और दयावीर तथा वीभत्स में से दयावीर का शांत में अंतर्भाव तथा बीभत्स स्थायी जुगुप्सा को शांत का स्थायी माना गया है। 'नागानंद' नाटक को कोई शांत का और कोई दयावीर रस का नाटक मानता है। किंतु यदि शांत के तत्त्वज्ञानमूलक विराम और दयावीर के करुणाजनित उत्साह पर ध्यान दिया जाए तो दोनों में भिन्नता दिखाई देगी। इसी प्रकार जुगुप्सा में जो विकर्षण है वह शांत में नहीं रहता। शांत राग–द्वेष दोनों से परे समावस्था और तत्त्वज्ञानसंम्मिलित रस है, जिसमें जुगुप्सा संचारी मात्र बन सकती है। ठीक ऐसे

जैसे–करुण में भी सहानुभूति का संचार रहता है और दयावीर में भी, किंतु करुण में शोक की स्थिति है और दयावीर में सहानुभूतिप्रेरित आत्मशक्तिसंभूत आनंदरूप उत्साह की। अथवा, जैसे–रौद्र और युद्धवीर दोनों का आलंबन शत्रु है, अतः दोनों में क्रोध की मात्रा रहती है, परंतु रौद्र में रहनेवाली प्रमोदप्रतिकूल तीक्ष्णता और अविवेक और युद्धवीर में उत्साह की उत्फुल्लता और विवेक रहता है। क्रोध में शत्रुविनाश में प्रतिशोध की भावना रहती है और वीर में धैर्य और उदारता। अतएव इनका परस्पर अंतर्भाव संभव नहीं। इसी प्रकार 'अंमर्ष' को वीर का स्थायी मानना भी उचित नहीं, क्योंकि अमर्ष निंदा, अपमान या आक्षेपादि के कारण चित्त के अभिनिवेश या स्वाभिमानावबोध के रूप में प्रकट होता है, किंतु वीररस के दयावीर, दानवीर, तथा धर्मवीर नामक भेदों में इस प्रकार की भावना नहीं रहती।

4

संस्कृत काव्य की परम्परा

लौकिक काव्य की उत्पत्ति

लौकिक संस्कृत साहित्य का आरंभ वाल्मीकि कृत रामायण से होता है। इसे आदि काव्य कहा गया है। क्रौंच वध की घटना से द्रवित हुए वाल्मीकि ने रामायण की रचना की। जिसमें सरसता, स्वाभाविकता, विविध रसों का समन्वय, समास विहीन वाक्य प्राप्त होते हैं। रामायण की कविता सुंदरी को यत्र तत्र अलंकारों से सजाया गया। इसमें ग्रथित अलंकार के कारण कविता के लावण्य में कहीं से कोई कमी नहीं आई, बल्कि यहां पर प्रयुक्त किए गए अलंकार काव्य सौंदर्य में बृद्धि करते दिखते हैं।

शैली की दृष्टि से लौकिक संस्कृत साहित्य को 4 भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. कालिदास (गुप्त काल) के पूर्व के काल- पाणिनि, वररूचि, अश्वघोष, भास आदि।
2. (गुप्त काल) कालिदास के पश्चात् अलंकृत शैली (शब्दचमत्कार) के काव्य, 12 वीं शताब्दी तक।
3. द्वयर्थीय त्यर्थीय काव्य।
4. आधुनिक काव्य–हायकू, गजल आदि छन्द।

लौकिक संस्कृत साहित्य के उपजीव्य मुख्य ग्रंथ हैं- वाल्मीकि कृत रामायण, व्यास कृत महाभारत तथा श्रीमद्भागवत। इसमें महाभारत तथा श्रीमद्भागवत को पुराण के अंतर्गत, जबकि रामायण को महाकाव्य के अंतर्गत परिगणित किया जाता है।

महाकाव्य का लक्षण

महाकाव्य का लक्षण निर्धारण आचार्य भामह, दण्डी ने किया। भामह तथा दण्डी के अनुसार महाकाव्य उसे कहते हैं, जो सर्गों में बंधा हो। सर्गबन्धो महाकाव्यम। इसके अतिरिक्त दण्डी इतिहास में प्रसिद्ध नायक देवता या धीर उदात्त गुणों वाला क्षत्रिय कुलीन क्षत्रिय नायक का होना अनिवार्य करते हैं। दण्डी अनलंकृत शैली का ध्यान रखते हैं। दोनों आचार्यों के सिद्धान्त का परिपाक आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक में मिलता है। विश्वनाथ के साहित्य दर्पण में समेकित स्वरूप प्राप्त होता है। इसके अनुसार जिस में सर्ग का निबंधन हो, वह महाकाव्य कहा जाता है। महाकाव्य का नायक देवता या उसके सदृश क्षत्रिय जिसमें धीरोदात्त गुण हो, कुलीन वंश का राजा हो, शृंगार, वीर, शांत में से कोई एक अंगी रस व कथा ऐतिहासिक या सज्जन आश्रित हो, ग्रंथ के आदि में मध्य में तथा अंत में मंगलाचरण किया गया हो, जिसमें 8 से अधिक सर्ग तथा प्रत्येक सर्ग का एक सुनिश्चित छंद हो, सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन होता हो तथा आगामी कथा की सूचना मिलती हो उसे महाकाव्य कहते हैं। इसमें दिन, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, मुनि, स्वर्ग आदि का वर्णन मिलता हो, इस प्रकार के काव्य महाकाव्य की श्रेणी में रखा गया है।

वाल्मीकि रामायण का उपजीव्य
रघुवंशमहाकाव्यम्–कालिदास
जानकीहरणमहाकाव्यम्–कुमार दास
भट्टिकाव्य (रावणवधमहाकाव्य) - भट्टि

महाभारत का उपजीव्य

किरातार्जुनीयम् - भारवि
शिशुपालवधम् - माघ
नैषधीयचरितम् - श्रीहर्ष
बालचरितम् - भागवत

वेंकटनाथ- यादवाभ्युदय -
बालभारत - अमरचन्द्र सूरि

काव्य का विकास

छठी शताब्दी गुप्त काल के बाद कविता अलंकार प्रधान और पांडित्य प्रदर्शन का साधन बन गई। ऐसा राज्याश्रय मिलने तथा अपने को अन्य से श्रेष्ठत साबित करने के कारण आरंभ हुआ। कालिदास के पूर्ववर्ती कवियों के काव्य में रसभरी शैली थी। इनकी कविता सीधी-साधी और अलंकार विहीन शैली में लिखी गई। इसमें अश्वघोष, बुद्धघोष तथा भास्कर नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। कालिदास के काव्य में प्रसादमयी तथा प्रवाह पूर्ण भाषा का प्रयोग मिलता है। यहां हठात् अलंकार का प्रयोग नहीं किया गया है। इस समय तक महाकाव्य का विषय-वस्तु विस्तृत होता था। कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक 31 पीढ़ियों का वर्णन किया। कालिदास के बाद ज्ञान विज्ञान की विभिन्न शाखाओं, शास्त्रों, कलाओं, दर्शनों का विकास हुआ। जिसके कारण इसका प्रभाव काव्य पर भी पड़ा। राज्यसभा में रहने वाले कवियों ने शास्त्रों का प्रयोग अपने काव्यों में भी किया। जिसके कारण शास्त्रकाव्य, संधानकाव्य, यमक काव्य आदि अनेक प्रकार के काव्य उद्भूत होते चले गए। अधोलिखित महाकाव्य प्रसाद गुण संपन्न वैदर्भी रीति में लिखे गए।

अलंकृत शैली का महाकाव्य
अश्वघोष- बुद्धचरितम्, सौन्दरानन्दम्
कालिदास- रघुवंशम्, कुमारसंभवम्
कुमार दास-जानकीहरणमहाकाव्यम्
उद्भट - कुमारसंभव (अप्राप्त)
पद्मगुप्त- नवसाहसांकचरितम्
विल्हण- विक्रमांकदेवचरितम्
अभिनन्द- रामचरित महाकाव्य 10-11 शताब्दी
मंख (मंखक) - श्रीकंठचरित महाकाव्य
क्षेमेन्द्र- दशावतारचरित महाकाव्य
लोलिम्बराज- हरिविलास महाकाव्य
हरिश्चन्द्र- धर्मशर्माभ्युदयम् महाकाव्य
लक्ष्मीधर भट्ट- चक्रपाणिविजय महाकाव्य

कृष्णानन्द- सहृदयानन्द, महाकाव्य 13वीं शती

अलंकारों में दो मुख्य अलंकार है उपमा और श्लेष। उपमा दो समान धर्म वाले के साथ जुड़कर परस्पर अभिमुख करता है। श्लेष का अर्थ है- दो का ऐसा चिपकना कि एक हो जाना और उस एक से दो या दो से अधिक की मनोरम प्रतीति कराना। इस प्रकार उपमा और श्लेष एक दूसरे के पूरक है। दक्षिणात्य कवियों में उत्प्रेक्षा, औदीच्यों में श्लेष, प्रतीची कवियों में केवल अर्थयोजन तथा गौड कवियों में अक्षराडंबर होता था।

अलंकार बहुल शैली

भारवि ने अपने किरातार्जुनीयम् में अलंकार बहुल शैली को अपनाया। आपने अपने काव्य में उपजाति, वैतालीय, द्रुतविलम्बित, प्रहर्षिणी, स्वागता, मत्तमयूर आदि अनेक वृत्तों का प्रयोग किया। महाकाव्य के पद-पद पर सूक्तियाँ देखने को मिलती है।

सहसा विदधीत न क्रियाम।
हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।
वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः।
अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता।

कालिदास से माघ तक की यात्रा में जो शैली परिवर्तन हुआ, उसमें भारवि इसके आरम्भकर्ता हैं। इस ग्रंथ में एक अक्षर को लेकर भी श्लोक की रचना की गई। अर्थगौरव के लिए यह ख्यात तो है ही। इस ग्रंथ की इतनी ख्याति हुई कि इस पर अब तक 37 से अधिक टीकाएँ लिखी जा चुकी, जिसमें मल्लीनाथ की घंटापथ टीका मुख्य है। महाकाव्य का वर्ण्य विषय राजनीति, धर्म नीति, युद्ध नीति आदि है। भारवि ने विपुल परिणाम वाले कथानक का परित्याग करते हुए महाभारत के लघु कथा को लेकर अर्जुन से इंद्र कील पर्वत पर किरात वेशधारी शंकर से युद्ध करते हैं। इस युद्ध अर्जुन शिव को प्रसन्न कर उनसे अस्त्र-शस्त्र प्राप्त करते हैं। मात्र इतनी कथानक को लेकर भारवि ने पर्वत, नदी, संध्या, ऋतु, प्रातःकाल आदि का वर्णन करते हुए 18 सर्गों का महाकाव्य लिख डाला। काव्य में चमत्कार पैदा करने के लिए एकाक्षर श्लोक तक लिखे गये-

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नौनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्न नुत॥ किरात. 15/14

अर्थ– अनेकविध मुख वालों! (प्रमथगणों) यह नीच विचार का मनुष्य नहीं है, यह न्यूनता (बुराई) का समूल नष्ट करने वाला पुरुष से अतिरिक्त कोई देवता है। विदित होता है इसका स्वामी भी है। यह बाणों से आहत है तथापि अनाहत की तरह प्रतीत होता है। अत्यंत व्यथा से आक्रांत पुरुष को व्यथित करना दोषावह होता है। इस दोष से भी यह पुरुष मुक्त है।

इसी पंचदश सर्ग में तीन अर्थ को कहने वाला श्लोक भी प्राप्त होता है–

जगतीशरणे युक्तो हरिकान्तः सुधासितः।
दानवर्षीकृताशंसो नागराज इवाबभौ॥ 15.45॥

एक अन्य श्लोक देखिये। इसमें महायमक अलंकार है। एक ही पद (विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा) चार बार आया है, किन्तु प्रत्येक चरण का अर्थ भिन्न-भिन्न हैं।

विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः।
विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः॥ 15.52

1.जगतीश = पृथ्वी के स्वामी अर्जुन के, मार्गणाः = वाण, विकासं = विस्तार को, ईयुः = प्राप्त हुए, अर्थात् अर्जुन के वाण चारों तरफ फैल गए।

2.जगति = लोक में, ईशस्य = शंकर के, मार्गणः = शर, विकाश = विषम गति को प्राप्त हो गए अर्थात् खंडित हो गए।

अर्थ- अर्जुन के असंख्य वाण सर्वत्र व्याप्त हो गए, जिससे शंकर के वाण खंडित कर दिए गए इस प्रकार अर्जुन के रण कौशल को देख दानव को मारने वाले शंकर के गण आश्चर्य में पड़ गए। शंकर और तपस्वी अर्जुन के युद्ध को देखने के लिए शंकर के भक्त लोग आकाश में आ पहुंचे।

इस प्रकार अलंकृत शैली के कथानक संक्षिप्त होता चला गया। अत्यधिक श्लेष प्रयोग से कविता कामिनी मूर्छित होती चली गई। अलंकारों की प्रधानता के कारण हीं इसे अलंकृत शैली का महाकाव्य कहा गया है। यही स्थिति माघ के शिशुपाल वध तथा नैषधीयचरितम् में देखने को मिलता है।

माघ के शिशुपालवधम् में कालिदास की उपमा भारवि का अर्थ गौरव दंडी का पद लालित्य एक साथ देखने को मिलता है।

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥
पुष्पेषु जाती नगरेषु कांची नारीषु रम्भा पुरुषेषु विष्णुः।

नदीषु गङ्गा नृपतौ च रामः काव्येषु माघः कविकालिदासः।।
नवसर्गे गते माघे नवशब्दो न विद्यते।

किरातार्जुनीयम् की तरह शिशुपालवधम् का उपजीव्य महाभारत है। शिशुपालवधम् की कथा श्रीमद् भागवत आदि पुराणों में भी प्राप्त होती है। कवि ने कृष्ण चरित के एक छोटे से प्रसंग को अपनी कल्पना द्वारा महाकाव्य में परिणत किया। इसमें किरातार्जुनीयम् की शैली दिखाई देती है।

उद्भट इनकी प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि
तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्यनोदयः।

यह वीर रस प्रधान काव्य है, परंतु बीच-बीच में श्रृंगारिक का वर्णन भी किया गया है। विप्रलम्भ के कुछ प्रयोग भी मिलते हैं। अन्य अंगरस भी प्रासंगिक रूप से ग्रहण किए गए हैं। युद्ध के प्रसंग में रौद्र और वीभत्स का प्रयोग किया गया है।

सेना का प्रयाण, अस्त्र-शस्त्रों की झनझनाहट, हाथियों की चिगघाड़, योद्धाओं का द्वन्द्व युद्ध, कबन्धों का नृत्य, वीरों के लिए देवांगनाओं की प्रतीक्षा आदि युद्ध वर्णन बहुत सुंदर और प्रभावोत्पादक हुआ है। जैसे-

बवृंहिरे गजपतयो महानकाः प्रदध्वनुर्जयतुरगा जिहेषिरे।

शिशुपालवधम् में सभी महत्वपूर्ण अलंकारों का प्रयोग किया गया है। उन्नीसवें सर्ग में सर्वतोभद्र, मुरजबन्ध, गोमुत्रिकाबन्ध, एकाक्षरपाद, प्रतिलोमानुलोमपाद, श्लोकप्रतिलोम यमक आदि अनेक प्रकार के यमक का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण देखें-

एकाक्षरपाद

जजौजोजाजिजिज्जाजी तं ततोऽतिततातितुथ्।
भाभोऽभीभाभिभूभाभूरारारिररिरीररः।। 19.3।।

सर्वतोभद्र

स का र ना ना र का स
का य सा द द सा य का।
र सा ह वा वा ह सा र
ना द वा द द वा द ना।। 19.27।।

इस के आगे के श्लोक में मुरजबन्ध का प्रयोग किया गया है-

लोलासिकालियकुला यमस्यैव स्वसा स्वयं।
चिकीर्षुरुल्लसल्लोहवर्मश्यामा सहायतां।। 19.28।।

इन्हें चित्रों में प्रदर्शित करने पर अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। कालिदास ने 6 मुख्य छंदों का प्रयोग किया।भारवि ने 11 या 12 तथा माघ ने 16 मुख्य छन्दों का प्रयोग किया है। इस प्रकार के काव्यों की रचना बहुत अधिक मात्रा में मिलती है। मैं यदा कदा अपने फेसबुक पर पोस्ट के माध्यम से उसे रखते रहता हूँ।

इसी प्रकार का एक ग्रंथ मंख का श्रीकंठचरित है।

नैषधीयतरितम् ग्रंथ के अंत में महाकवि श्रीहर्ष ने लिखा है कि वे कन्नौज और वाराणसी के महाराज विजय चंद्र और जयचंद के सभापंडित थे। वे कान्यकुब्जेश्वर से पान के दो बीड़े और आसन पाते थे तथा समाधि में ब्रह्म का साक्षात्कार करते थे। उनका काव्य मधु की वृष्टि करने वाला है और तर्कों में उनकी उक्तियां शत्रु को परास्त करने वाली है। इस पद से यह पता चलता है की श्रीहर्ष का समय विक्रम की 11वीं शताब्दी है। यह न्याय वेदांत आदि अनेक शास्त्रों पर पूर्ण अधिकार रहते थे।

ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वराद्
यः साक्षात्कुरुते समाधिषु परं ब्रह्म प्रमोदाऽर्णवम्।
यत्काव्यं मधुवर्षि, धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तयः
श्रीश्रीहर्षकवेः कृतिः कृतिमुदे तस्याऽभ्युदीयादियम् ।।22/153

यहीं पर श्रीहर्ष डिम-डिम घोष पूर्वक कहते हैं कि मैंने अपने ग्रंथ में जहां-तहां गांठ बांध रखा है। स्वयं को पंडित मानने वाले खल, जो गुरु परम्परा के प्रति श्रद्धालु नहीं हैं, इससे खेल नहीं सकें। यह पांडित्य पूर्ण शैली या अलंकृत शैली का पूर्ण उत्कर्ष है।

ग्रन्थग्रन्थरिहक्वचिद्क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नानमया
प्रज्ञम्मन्यमना हठेन पठती माऽस्मिन्खलः खेलतु।
श्रद्धाराद्धगुरुश्थलीकृतदृढग्रन्थिः समासादय-
त्वेत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं सज्जनः।। नैषध. 22/252
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः।।

यह पांडित्य पूर्ण शैली या अलंकृत शैली का पूर्ण उत्कर्ष है। 855 में कश्मीर में लिखा गया। हरविजय में भी यही अलंकृत शैली का उत्कर्ष देखने को मिलता है।

श्लेष शैली के महाकाव्य

भारवि– किरातार्जुनीयम्

गउडवहो– वाक्पतिराज

रत्नाकर– हरविजयम्

मंखक– श्रीकंठचरितम्

भट्टि– भट्टिकाव्यम्

हेमचन्द्र– कुमारपालचरितम्

विद्यामाधव– पार्वतीरुक्मिणीयम्

हरिदत्त सूरि– राघवनैषधीयम्

श्लेष बहुल काव्य अथवा अनेकसंधान काव्य

आठवीं शताब्दी के बाद 12वीं शताब्दी तक द्वयर्थीय तथा त्र्यर्थीय काव्य के निर्माण में कवि संलग्न हुए। इसमें– धनंजय का द्विसंधान।

विद्या माधव का पार्वती रुक्मणीय।

हरदत्त सूरी का राघवनैषधीयम्,

कविराज सूरी का राघवपाण्डवीयम्,

संध्याकरनन्दी का रामचरित आदि ग्रंथ हैं।

राघव पांडवीयम में राम और नल के जीवन चरित्र को प्रत्येक पद में प्रतिष्ठित किया गया है।

त्र्यर्थीय काव्य में राजचूड़ामणि दीक्षित का राघवयादवपाण्डवीयम्,

चिदम्बर सुमति का राघवपाण्डवयादवीय आदि हैं। ये ग्रंथ शब्द चमत्कार प्रधान ग्रंथ कहे जाते हैं। इस प्रकार की रचना हृदय और मस्तिष्क को रससिक्त नहीं करते, अत: कालिदास जैसे–सुकुमार कवि की चर्चा युगों युगों से होती आ रही है।

5

महाकाव्य

संस्कृत काव्यशास्त्र में महाकाव्य (एपिक) का प्रथम सूत्रबद्ध लक्षण आचार्य भामह ने प्रस्तुत किया है और परवर्ती आचार्यों में दंडी, रुद्रट तथा विश्वनाथ ने अपने अपने ढंग से इस महाकाव्य (एपिक)सूत्रबद्ध के लक्षण का विस्तार किया है। आचार्य विश्वनाथ का लक्षण निरूपण इस परंपरा में अंतिम होने के कारण सभी पूर्ववर्ती मतों के सारसंकलन के रूप में उपलब्ध है।महाकाव्य में भारत को भारतवर्ष अथवा भरत का देश कहा गया है तथा भारत निवासियों को भारती अथवा भरत की संतान कहा गया है।

महाकाव्य के लक्षण

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार हैं–

जिसमें सर्गों का निबंधन हो वह महाकाव्य कहलाता है। महाकाव्य में देवता या सदृश क्षत्रिय, जिसमें धीरोदात्तत्वादि गुण हों, नायक होता है। कहीं एक वंश के अनेक सत्कुलीन भूप भी नायक होते हैं। शृंगार, वीर और शांत में से कोई एक रस अंगी होता है तथा अन्य सभी रस अंग रूप होते हैं। उसमें सब नाटकसंधियाँ रहती हैं। कथा ऐतिहासिक अथवा सज्जनाश्रित होती है। चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से एक महाकाव्य का फल होता है। आरंभ में नमस्कार, आशीर्वाद या वर्ण्यवस्तुनिर्देश होता है। कहीं खलों की निंदा तथा सज्जनों का गुणकथन होता है। न अत्यल्प और न अतिदीर्घ

अष्टाधिक सर्ग होते हैं, जिनमें से प्रत्येक की रचना एक ही छंद में की जाती है और सर्ग के अंत में छंदपरिवर्तन होता है। कहीं-कहीं एक ही सर्ग में अनेक छंद भी होते हैं। सर्ग के अंत में आगामी कथा की सूचना होनी चाहिए। उसमें संध्या, सूर्य, चंद्रमा, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, संयोग, विप्रलंभ, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा और विवाह आदि का यथासंभव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए (साहित्यदर्पण, परिच्छेद 6, 315-324)।

आचार्य विश्वनाथ का उपर्युक्त निरूपण महाकाव्य के स्वरूप की वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध परिभाषा प्रस्तुत करने के स्थान पर उसकी प्रमुख और गौण विशेषताओं का क्रमहीन विवरण उपस्थित करता है। इसके आधार पर संस्कृत काव्यशास्त्र में उपलब्ध महाकाव्य के लक्षणों का सार इस प्रकार किया जा सकता है–

कथानक - महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक अथवा इतिहासाश्रित होना चाहिए।

विस्तार - कथानक का कलवेर जीवन के विविध रूपों एवं वर्णनों से समृद्ध होना चाहिए। ये वर्णन प्राकृतिक, सामाजिक और राजीतिक क्षेत्रों से इस प्रकार संबंद्ध होने चाहिए कि इनके माध्यम से मानव जीवन का पूर्ण चित्र उसके संपूर्ण वैभव, वैचित्र्य एवं विस्तार के साथ उपस्थित हो सके। इसीलिए उसका आयाम (अष्टाधिक सर्गों में) विस्तृत होना चाहिए।

विन्यास - कथानक की संघटना नाट्य संधियों के विधान से युक्त होनी चाहिए अर्थात् महाकाव्य के कथानक का विकास क्रमिक होना चाहिए। उसकी आधिकारिक कथा एवं अन्य प्रकरणों का पारस्परिक संबंध उपकार्य-उपकारक-भाव से होना चाहिए तथा इनमें औचित्यपूर्ण पूर्वापर अन्विति रहनी चाहिए।

नायक - महाकाव्य का नायक देवता या सदृश क्षत्रिय हो, जिसका चरित्र धीरोदात्त गुणों से समन्वित हो - अर्थात् वह महासत्त्व, अत्यंत गंभीर, क्षमावान् अविकत्थन, स्थिरचरित्र, निगूढ़, अहंकारवान् और दृढ़व्रत होना चाहिए। पात्र भी उसी के अनुरूप विशिष्ट व्यक्ति, राजपुत्र, मुनि आदि होने चाहिए।

रस - महाकाव्य में शृंगार, वीर, शांत एवं करुण में से किसी एक रस की स्थिति अंगी रूप में तथा अन्य रसों की अंग रूप में होती है।

फल - महाकाव्य सद्वृत होता है - अर्थात् उसकी प्रवृत्ति शिव एवं सत्य की ओर होती है और उसका उद्देश्य होता है चतुवर्ग की प्राप्ति।

शैली - शैली के संदर्भ में संस्कृत के आचार्यों ने प्रायः अत्यंत स्थूल रूढ़ियों का उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ एक ही छंद में सर्ग रचना तथा सर्गांत में छंदपरिवर्तन, अष्टाधिक सर्गों में विभाजन, नामकरण का आधार आदि, परंतु महाकाव्य के अन्य लक्षणों के आलोक में यह स्पष्ट ही है कि महाकाव्य की शैली नानावर्णन क्षमा, विस्तारगर्भा, श्रव्य वृत्तों से अलंकृत, महाप्राण होनी चाहिए। आचार्य भामह ने इस भाषा को सालंकार, अग्राम्य शब्दों से युक्त अर्थात् शिष्ट नागर भाषा कहा है।

महाकाव्य के सम्बन्ध में पश्चिमी मत

महाकाव्य के जिन लक्षणों का निरूपण भारतीय आचार्यों ने किया, शब्दभेद से उन्हीं से मिलती-जुलती विशेषताओं का उल्लेख पश्चिम के आचार्यों ने भी किया है। अरस्तू ने त्रसदी से महाकाव्य की तुलना करते हुए कहा है कि 'गीत एवं दृश्यविधान के अतिरिक्त (महाकाव्य और त्रसदी) दोनों के अंग भी समान ही हैं।' अर्थात् महाकाव्य के मूल तत्त्व चार हैं - कथावस्तु, चरित्र, विचारतत्त्व और पदावली (भाषा)।

कथावस्तु

कथावस्तु के संबंध में उनका मत है कि-

(1) महाकाव्य की कथावस्तु एक ओर शुद्ध ऐतिहासिक यथार्थ से भिन्न होती है ओर दूसरी ओर सर्वथा काल्पनिक भी नहीं होती। वह प्रख्यात (जातीय दंतकथाओं पर आश्रित) होनी चाहिए और उसमें यथार्थ से भव्यतर जीवन का अंकन होना चाहिए।

(2) उसका आयाम विस्तृत होना चाहिए, जिसके अंतर्गत विविध उपाख्यानों का समावेश हो सके। 'उसमें अपनी सीमाओं का विस्तार करने की बड़ी क्षमता होती है' क्योंकि त्रसदी की भांति वह रंग-मंच की देशकाल संबंधी सीमाओं में परिबद्ध नहीं होता। उसमें अनेक घटनाओं का सहज समावेश हो सकता है, जिससे एक ओर काव्य को घनत्व और गरिमा प्राप्त होती है और दूसरी ओर अनेक उपाख्यानों के नियोजन के कारण रोचक वैविध्य उत्पन्न हो जाता है।

(3) किंतु कथानक का यह विस्तार अनियंत्रित नहीं होना चाहिए। उसमें एक ही कार्य होना चाहिए जो आदि मध्य अवसान से युक्त एवं स्वतः पूर्ण हो।

समस्त उपाख्यान इसी प्रमुख कार्य के साथ संबंद्ध और इस प्रकार से गुंफित हों कि उनका परिणाम एक ही हो।

(4) इसके अतिरिक्त त्रसदी के वस्तुसंगठन के अन्य गुण -- पूर्वापरक्रम, संभाव्यता तथा कुतूहलकृभी महाकाव्य में यथावत् विद्यमान रहते हैं। उसकी परिधि में अद्‌भुत एवं अतिप्राकृत तत्त्व के लिये अधिक अवकाश रहता है और कुतूहल की संभावना भी महाकाव्य में अपेक्षाकृत अधिक रहती है। कथानक के सभी कुतूहलवर्धक अंग, जैसे–स्थितिविपर्यय, अभिज्ञान, संवृत्ति और विवृत्ति, महाकाव्य का भी उत्कर्ष करते हैं।

पात्र

महाकाव्य के पात्रों के सम्बंध में अरस्तू ने केवल इतना कहा है कि 'महाकाव्य और त्रसदी में यह समानता है कि उसमें भी उच्चतर कोटि के पात्रों की पद्यबद्ध अनुकृति रहती है।' त्रसदी के पात्रों से समानता के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं कि महाकाव्य के पात्र भी प्रायः त्रसदी के समान - भद्र, वैभवशाली, कुलीन और यशस्वी होने चाहिए। रुद्रट के अनुसार महाकाव्य में प्रतिनायक और उसके कुल का भी वर्णन होता है।

प्रयोजन और प्रभाव

अरस्तू के अनुसार महाकाव्य का प्रभाव और प्रयोजन भी त्रसदी के समान होना चाहिए, अर्थात् मनोवेगों का विरेचन, उसका प्रयोजन और तज्जन्य मनःशांति उसका प्रभाव होना चाहिए। यह प्रभाव नैतिक अथवा रागात्मक अथवा दोनों प्रकार का हो सकता है।

भाषा, शैली और छंद

अरस्तू के शब्दों में महाकाव्य की शैली का भी 'पूर्ण उत्कर्ष यह है कि वह प्रसन्न (प्रसादगुण युक्त) हो किंतु क्षुद्र न हो।' अर्थात् गरिमा तथा प्रसादगुण महाकाव्य की शैली के मूल तत्त्व हैं और गरिमा का आधार है, असाधारणता। उनके मतानुसार महाकाव्य की भाषाशैली त्रसदी की करुणमधुर अलंकृत शैली से भिन्न, लोकातिक्रांत प्रयोगों से कलात्मक, उदात्त एवं गरिमावरिष्ठ होनी चाहिए।

महाकाव्य की रचना के लिये वे आदि से अंत तक एक ही छंद - वीर छंद - के प्रयोग पर बल देते हैं, क्योंकि उसका रूप अन्य वृत्तों की अपेक्षा अधिक भव्य एवं गरिमामय होता है, जिसमें अप्रचलित एवं लाक्षणिक शब्द बड़ी सरलता से अंतर्भुक्त हो जाते हैं। परवर्ती विद्वानों ने भी महाकाव्य के विभिन्न तत्त्वों के संदर्भ में उन्हीं विशेषताओं का पुनराख्यान किया है, जिनका उल्लेख आचार्य अरस्तू कर चुके थे। वीरकाव्य (महाकाव्य) का आधार सभी ने जातीय गौरव की पुराकथाओं को स्वीकार किया है। जॉन हेरिंगटन वीरकाव्य के लिये ऐतिहासिक आधारभूमि की आवश्यकता पर बल देते हैं और स्पेंसर वीरकाव्य के लिये वैभव और गरिमा को आधारभूत तत्त्व मानते हैं। फ्रांस के कवि आलोचकों पैलेतिए, वोकलें और रोनसार आदि ने भी महाकाव्य की कथावस्तु को सर्वाधिक गरिमायम, भव्य और उदात्त करते हुए उसके अंतर्गत ऐसे वातावरण के निर्माण का आग्रह किया है, जो क्षुद्र घटनाओं से मुक्त एवं भव्य हो।

सारांश

भारतीय और पाश्चात्य आलोचकों के उपर्युक्त निरूपण की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि दोनों में ही महाकाव्य के विभिन्न तत्त्वों के संदर्भ में एक ही गुण पर बार-बार शब्दभेद से बल दिया गया है और वह है - भव्यता एवं गरिमा, जो औदात्य के अंग हैं। वास्तव में, महाकाव्य व्यक्ति की चेतना से अनुप्राणित न होकर समस्त युग एवं राष्ट्र की चेतना से अनुप्राणित होता है। इसी कारण उसके मूल तत्त्व देशकाल सापेक्ष न होकर सार्वभौम होते हैं -- जिनके अभाव में किसी भी देश अथवा युग की कोई रचना महाकाव्य नहीं बन सकती और जिनके सद्भाव में, परंपरागत शास्त्रीय लक्षणों की बाधा होने पर भी, किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वंचित करना संभव नहीं होता। ये मूल तत्त्व हैं–

(1) उदात्त कथानक।
(2) उदात्त कार्य अथवा उद्देश्य।
(3) उदात्त चरित्र।
(4) उदात्त भाव और
(5) उदात्त शैली।

इस प्रकार औदात्य अथवा महत्तत्व ही महाकाव्य का प्राण है।

संस्कृत महाकाव्यों की उत्पत्ति एवं विकास

संस्कृत महाकाव्य के उद्‌भव और विकास का निरूपण अधोलिखित है–

महाकाव्य के विकास का इतिहास हम दो रूपों में करते हैं। (1) रूपगत विकास, (2) शैलीगत विकास।

रूपगत विकास के अन्तर्गत सबसे पहले वैदिक काल आता है जिनमें आख्यान, देवस्तुति, भावप्रधानता इत्यादि आते हैं। वीरमहाकाव्य के अन्तर्गत रामायण, महाभारत एवं आाख्यान तत्त्वों की प्रधानता आती है। लौकिक महाकाव्य में कालिदास एवं परवर्ती काव्यकारों ने भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष की उदात्तता पर बल दिया है।

महाकाव्य के शैलीगत विकास में प्रसादात्मक शैली में रामायण, महाभारत, कालिदास, अश्वघोष आदि के काव्यों में प्राप्त होती है। अलंकारात्मक शैली, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि के काव्यों में प्राप्त होती है। श्लेषात्मक शैली, द्वयर्थक काव्यों में प्राप्त होती है। द्वयर्थक काव्य ध्नंजयकृत– द्विसन्धनकाव्य, कविराजसूरिकृत–राघवपाण्डवीय, राघवचूड़ामणिदीक्षितकृत–राघवायादव– पाण्डवीय।

महाकाव्यों का उद्‌भव ऋग्वेद के आख्यान सूक्तों– इन्द्र, वरुण, विष्णु और ऊषा आदि के स्तुतिमंत्रों तथा नराशंसी गाथाओं से हुआ है। ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में इन अख्यान आदि का विस्तृत रूप मिलता है। यही स्वरूप आगे चलकर महाकाव्य के रूप में बदल गया। क्रौंचवध से दु:खी मनवाले महाकवि वाल्मीकि के वाणी से निकला व्याध–शाप (मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम्...) वाल्मीकिकृत रामायण के रूप में आदि काव्य के गौरव को प्राप्त कर लिया तथा इसके प्रणेता वाल्मीकि को आदिकवि का गौरव प्राप्त हुआ। वाल्मीकिकृत रामायण तथा रामायण के बाद वेदव्यासकृत महाभारत भी परवर्ती कवियों का उपजीव्य काव्य बन गये।

भारतीय परम्परा वेद को ही काव्य, शास्त्र आदि का उत्पत्तिस्थल मानती रही है। वैदिक मनीषी की सर्वाधिक मनोहर कल्पनायें ऋग्वेद के उषस् सूक्तों में समस्त काव्यात्मक उन्मेष के साथ निकली हुई है। देवस्तुति के अतिरिक्त नाराशंसियों में भी काव्यात्मक रूप झलकता है। तत्कालीन उदार राजाओं की प्रशंसा में नितान्त अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशस्तियाँ नाराशंसी कहलाती है। ऐतरेयब्राह्मण की सप्तम पंचिका में शुन:शेप आख्यान एवं अष्टम पंचिका में 'ऐन्दमहाभिषेक'के अनेक अंश सुन्दर काव्य की छटा बखिरते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण वैदिक साहित्य

में काव्यतत्त्वों का अस्तित्त्व तो दृष्टिगोचर होता है, किन्तु महाकाव्य शैली का पूर्ण परिपाक कहीं पर भी दृष्टिगोचर नहीं होता। संस्कृत महाकाव्य धरा की मूल उद्‌गम स्थली आदिकाव्य रामायण ही है, जिसमें महाकाव्य की सभी विशेषताओं का दर्शन हो जाता है। संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों की विकास-परम्परा में संस्कृत व्याकरण के 'मुनित्रय' - पाणिनि, वररुचि तथा पतंजलि का स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। आचार्य रुद्रट द्वारा रचित 'काव्यालंकार सूत्र' के टीकाकार नेमिसाधु ने पाणिनि द्वारा रचित महाकाव्य 'जाम्बवतीजय' या 'पातालविजय' का उल्लेख किया है। पतंजलि के महाभाष्य (ईस्वी पूर्व द्वितीय शती) में काव्यगुणों से सम्पन्न पद्य उपलब्ध होते हैं। इन सब प्रमाणों के आधर पर महाकाव्य का उदय ईस्वी पूर्व की अष्टम शती में ही पाणिनि द्वारा हो चुका था। सूक्तिग्रन्थों में राजशेखर ने पाणिनि को 'व्याकरण' तथा 'जाम्बवतीजय' दोनों का रचयिता माना है-

नमःपाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह। आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम।

वररुचि के नाम से भी अनेक श्लोक विभिन्न सुभाषित संग्रहों में प्राप्त होते हैं। पतंजलि ने वररुचि के बनाये गये किसी महाकाव्य (वाररुचं काव्यं) का उल्लेख महाभारत में किया है-

यथार्थता कथं नाम्नि या भूद् वररुचेरिह। व्यध्त कण्ठाभरणं यः सदारोहणप्रियः।।

वररुचि-प्रणीत महाकाव्य का नाम 'कण्ठाभरण' है। वररुचि ने पाणिनि का अनुकरण 'वार्तिक' लिखकर ही नहीं किया, प्रत्युत काव्य रचना से उसकी पूर्ति की। पतंजलि ने अपने महाभाष्य में दृष्टांत के रूप में बहुत से श्लोकों या श्लोकखण्डों को उद्धृत किया, जिनके अनुशीलन से संस्कृत-काव्यधरा की प्राचीनता सिद्ध होती है। काव्य अपने सुन्दर निर्माण तथा रचना के निमित्त शान्त वातावरण, आर्थिक समृद्धि तथा सामाजिक शान्ति की जितनी अपेक्षा रखता है उतनी ही वह किसी गुणग्राही आश्रयदाता की प्रेरणा की भी। प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास में वह युग शकों के भयंकर आक्रमणों से भारतीय जनता, धर्म तथा संस्कृति के रक्षक मालव संवत के ऐतिहासिक संस्थापक शकारि मालवगणाध्यक्ष विक्रमादित्य का है। इसी युग में भारतीय संस्कृति के उपासक कालिदास का काव्याकाश में उदय होता है। कालिदास को वस्तुतः प्रौढ़, परिष्कृत, प्रांजल एवं मनोज्ञ काव्यशैली का प्रवर्तक कहा जा सकता है। कालिदासजी ने जो काव्यादर्श उपस्थित किया, वह परकालीन कवियों एवं लेखकों के लिये अनुकरणीय हुए।

संस्कृत महाकाव्य को तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) कालिदास के पहले का समय, जिसमें कथानक की प्रधनता रही। रामायण और महाभारत इस समय के आदर्श काव्य हैं।

(2) कालिदास का समय जिसमें आडम्बरों से रहित, सहज एवं सरल ढंग से भाव तथा कला का सुन्दर समन्वय स्थापित करके काव्य की धारा प्रवाहित हुई। जैसे–'रघुवंशम्' और 'कुमारसंभवम्' आदि।

(3) कालिदास के बाद का समय जिसमें काव्यलेखन भाषा और भाव की दृष्टि से कठिन होता हुआ दिखाई पड़ता है, जिसकी परम्परा भारवि से प्रारम्भ होकर 'श्रीहर्ष' की रचना तक अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है और एक वैदग्ध तथा पाण्डित्यपूर्ण परम्परा का निर्माण होता है।

विद्वानों ने कालिदास के पूर्ववर्ती कवि व्यास और वाल्मीकि को ऋषिकोटि में माना है। इनकी रचनाओं में सरलता और स्वाभाविकता का पुट है। संस्कृत साहित्याकाश में महाकवि 'भारवि' का नाम विशेष उल्लेखनीय रहेगा, क्योंकि संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा में समय और कवित्व दोनों दृष्टियों से कालिदास के षद भारवि का प्रमुख स्थान है। इनका एक मात्र कालजयी महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम' है, जो अपनी अर्थपूर्ण उक्तियों के लिए विद्वान्मण्डली में लोकप्रिय हो गया। इसके षद उसी स्तर का महत्त्वपूर्ण महाकाव्य माघ का 'शिशुपालवध्म' है। संस्कृत-महाकाव्यों की परम्परा में कालक्रम के अनुसार सबसे अन्तिम और महत्त्वपूर्ण काव्य बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लिखा गया महाकवि श्रीहर्ष का 'नैषधीयचरितम' है। इन्होंने अपने महाकाव्य को तत्कालीन समाज में प्रचलित परम्परा के अनुरूप ही आगे बढ़ाया और उस शैली के विकास को चरम तक पहुँचा दिया।

संक्षेप में महाकाव्य के विकास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि आरम्भिक युग में नैसर्गिकता का ही काव्य में मूल्य था, वही गुण आदर की दृष्टि से देखा जाता था। कालान्तर में कवियों ने अपने काव्य में अक्षराडम्बर तथा अंलकारविन्यास की ओर दृष्टिपात किया और उन्हें ही काव्य का जीवन मानने लगे।

राष्ट्रीय एकता प्रत्येक देश के लिए महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रीय एकता की आधारशिला है सांस्कृतिक एकता और सांस्कृतिक एकता का सबसे प्रबल माध्यम साहित्य की परिधि के अन्तर्गत महाकाव्यों का विशेष महत्व है, जिनके वृहत् कलेवर में राष्ट्रीय एकता को प्रभावी रीति से प्रतिफल करने का पूर्ण

अवसर रहता है। भारतीय महाकाव्य का आयोजन इसी से प्रेरित होकर किया गया है। इसमें तीन प्राचीन भाषाओं – संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और अंग्रेजी को मिलाकर तेरह आधुनिक भाषाओं के 26 प्रमुख महाकाव्यों का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। काव्य-वस्तु की दृष्टि से महाकाव्य पाँच प्रकार के हैं –

रामायण महाकाव्य,
महाभारत महाकाव्य,
चरितकाव्य,
रम्याख्यान और
दार्शनिक या प्रतीकात्मक महाकाव्य।

यह कार्य विभिन्न भाषाओं के अधिकारी विद्वानों द्वारा संपन्न हुआ है।

भारत में रामायण और महाभारत अद्यतन महाकाव्यों के उद्‌गम और प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। परवर्ती महाकाव्यों की रचना सार्वजनिक वाचक के लिए नहीं, वरन् कलाकृति के रूप में हुई है। इसलिए इन्हें 'कलात्मक महाकाव्य' की संज्ञा देना उपयुक्त होगा। इस वर्ग के महाकाव्यों की भारत में एक सुदीर्घ परंपरा है – जो 'कुमारसंभव' 'रघुवंश' आदि संस्कृत महाकाव्यों से आरंभ होकर आधुनिक भाषाओं में 'कामायनी' तथा 'श्रीरामायण दर्शनम्' आदि तक निरंतर प्रवाहमान है। ललित काव्य की एक विधा का रूप धारण कर महाकाव्य 'साहित्यशास्त्र' का विषय बन गया और आचार्यों ने साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति उसे भी लक्षणवद्ध कर दिया। महाकाव्य संस्कृत काव्यशास्त्र में महाकाव्य का प्रथम सूत्रबद्ध लक्षण आचार्य भामह ने प्रस्तुत किया है और परवर्ती आचार्यों में दंडी, रुद्रट तथा विश्वनाथ ने अपने अपने ढंग से इस लक्षण का विस्तार किया है। आचार्य विश्वनाथ का लक्षणनिरूपण इस परंपरा में अंतिम होने के कारण सभी पूर्ववर्ती मतों के सारसंकलन के रूप में उपलब्ध है।

महाकाव्य की विशेषताएँ

महाकाव्य की विशेषताएँ सामान्यतः इस प्रकार है-

'महाकाव्य' पद में उपयुक्त 'महा' विशेषण एक ओर उसके महान् कलेवर अर्थात विपुल-व्यापक आकार और दूसरी ओर उसकी महान् विषय-वस्तु अर्थात प्रतिपाद्य विषय की गौरव-गरिमा का समान रूप से द्योतन करता है।

आकार की व्यापकता का अर्थ है कि उनमें जीवन का सर्वांग-चित्रण रहता है। प्रभावशाली महापुरुष का जीवन होने के कारण उसका विस्तार अनायास ही संपूर्ण देशकाल तक हो जाता है। अत: महाकाव्य की कथा-परिधि में जीवन के समस्त सामाजिक, राजनीतक पक्ष एवं आयाम और उनके परिवेश रूप में विभिन्न दृश्यों और रूपों का समावेश रहता है। ये सभी वर्णन साधारण जीवन की क्षुद्रताओं से मुक्त एक विशेष स्तर पर अवस्थित रहते हैं।

महाकाव्य की कथावस्तु एक महान् उद्देश्य से परिचालित होती है। अनेक संघर्षों से गुजरती हुई वह अंतत: महत्तर मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा करती है। इन महत्तर मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा अंतत: जिस घटना के द्वारा होती है, वहीं महाकाव्य का महत्कार्य होता है।

महान कार्य की सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि उसका साधक उसके अनुरूप चारित्रक गुणों और शक्तियों से सम्पन्न हो। अत: महाकाव्य का नायक अथवा केन्द्रीय पात्र असाधारण शक्ति और गुणों से सम्पन्न होता है और ये गुण उसके सहयोगी तथा विरोधी पात्रों में भी विभिन्न अनुपातों में विद्यमान रहते हैं।

उपर्युक्त संसार को वहन करने में समर्थ महाकाव्य की शैली भी स्वभावत: अत्यन्त गरिमा-विशिष्ट होनी चाहिए। इसलिए आचार्यों ने यह अवस्था दी है कि महाकाव्य की शैली साधारण स्तर से भिन्न, क्षुद्र प्रयोगों से मुक्त अलंकृत होनी चाहिए। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में यूनानी-रोमी आचार्य लोंजाइनस से प्रेरणा प्राप्त कर अनेक सुधी समीक्षकों ने इस संदर्भ में 'उदात्य तत्त्व' पर विशेष बल दिया गया है, जो महाकाव्य की मूल चेतना को अभिव्यक्ति करने में अपेक्षाकृत अधिक सक्षम है, अत: उसके आधार पर उदात्त कथानक, उदात्त कार्य अथवा उद्देश्य, उदात्त चरित्र, उदात्त भाव-संपदा और उदात्त शैली को महाकाव्य के मूल तत्त्वों के रूप में रेखांकित किया गया है।

महाकाव्य के लक्षण

महाभारत

विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार है -

जिसमें सर्गों का निबंधन हो वह महाकाव्य कहलाता है। इसमें क्षत्रिय, जिसमें धीरोदात्तत्वादि गुण हों, नायक होता है। कहीं एक वंश के अनेक

सत्कुलीन भूप भी नायक होते हैं। शृंगार, वीर और शांत में से कोई एक अंगी होता है तथा अन्य सभी रस अंग रूप होते हैं। उसमें सब नाटक संधियाँ रहती हैं। कथा ऐतिहासिक अथवा सज्जनाश्रित होती है। चतुर्वर्ग में से एक उसका फल होता है। आरंभ में नमस्कार, आशीर्वाद या वर्ण्यवस्तुनिर्देश होता है। कहीं खलों की निंदा तथा सज्जनों का गुणकथन होता है। न अत्यल्प और न अतिदीर्घ अष्टाधिक सर्ग होते हैं, जिनमें से प्रत्येक की रचना एक ही में की जाती है और सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन होता है। कहीं-कहीं एक ही सर्ग में अनेक छंद भी होते हैं। सर्ग के अंत में आगामी कथा की सूचना होनी चाहिए। उसमें संध्या, सूर्य, चंद्रमा, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रातरूकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, संयोग, विप्रलंभ, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्र और विवाह आदि का यथासंभव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए। आचार्य विश्वनाथ का उपर्युक्त निरूपण महाकाव्य के स्वरूप की वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध परिभाषा प्रस्तुत करने के स्थान पर उसकी प्रमुख और गौण विशेषताओं का क्रमहीन विवरण उपस्थित करता है। इसके आधार पर संस्कृत काव्यशास्त्र में उपलब्ध महाकाव्य के लक्षणों का सार इस प्रकार किया जा सकता है-

कथानक

महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक अथवा इतिहासाश्रित होना चाहिए।

विस्तार -- कथानक का कलेवर जीवन के विविध रूपों एवं वर्णनों से समृद्ध होना चाहिए। ये वर्णन प्राकृतिक, सामाजिक, और राजीतिक क्षेत्रों से इस प्रकार संबंद्ध होने चाहिए कि इनके माध्यम से मानव जीवन का पूर्ण चित्र उसके संपूर्ण वैभव, वैचित्र्य एवं विस्तार के साथ उपस्थित हो सके। इसीलिए उसका आयाम विस्तृत होना चाहिए।

विन्यास

कथानक की संघटना नाट्य-संधियों के विधान से युक्त होनी चाहिए अर्थात् महाकाव्य के कथानक का विकास क्रमिक होना चाहिए। उसकी आधिकारिक कथा एवं अन्य प्रकरणों का पारस्परिक संबंध उपकार्य-उपकारक-भाव से होना चाहिए तथा इनमें औचित्यपूर्ण पूर्वापर अन्विति रहनी चाहिए।

कुमारसम्भव

नायक

महाकाव्य का नायक देवता या सदृश क्षत्रिय हो, जिसका चरित्र धीरोदात्त गुणों से समन्वित हो -- अर्थात् वह महासत्त्व, अत्यंत गंभीर, क्षमावान् अविकत्थन, स्थिरचरित्र, निगूढ़, अहंकारवान् और दृढ़व्रात होना चाहिए। पात्र भी उसी के अनुरूप विशिष्ट व्यक्ति, राजपूत्र, मुनि आदि होने चाहिए।

रस

महाकाव्य में शृंगार, वीर, शांत एवं करुण में से किसी एक रस की स्थिति अंगी रूप में तथा अन्य रसों की अंग रूप में होती है।

फल

महाकाव्य सद्वृत होता है अर्थात् उसकी प्रवृत्ति शिव एवं सत्य की ओर होती है और उसका उद्देश्य होता है चतुर्वर्ग की प्राप्ति।

शैली

शैली के संदर्भ में संस्कृत के आचार्यों ने प्रायः अत्यंत स्थूल रूढ़ियों का उल्लेख किया है - उदाहरणार्थ-एक ही छंद में सर्ग रचना तथा सर्गांत में छंदपरिवर्तन, अष्टाधिक सर्गों में विभाजन, नामकरण का आधार आदि, परंतु महाकाव्य के अन्य लक्षणों के आलोक में यह स्पष्ट ही है कि महाकाव्य की शैली नानावर्णन क्षमा, विस्तारगर्भा, श्रव्य वृत्तों से अलंकृत, महाप्राण होनी चाहिए। आचार्य भामह ने इस भाषा को सालंकार, अग्राम्य शब्दों से युक्त अर्थात शिष्ट नागर भाषा कहा है।

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार

रामायण

महाकाव्य के जिन लक्षणों का निरूपण भारतीय आचार्यों ने किया, शब्दभेद से उन्हीं से मिलती-जुलती विशेषताओं का उल्लेख पश्चिम के आचार्यों ने भी किया है। अरस्तू ने त्रसदी से महाकाव्य की तुलना करते हुए कहा है कि

'गीत एवं दृश्यविधान के अतिरिक्त दोनों के अंग भी समान ही हैं।' अर्थात महाकाव्य के मूल तत्त्व चार हैं –

कथावस्तु,
चरित्र,
विचारतत्त्व और
पदावली।

कथावस्तु

कथावस्तु के संबंध में उनका मत है कि महाकाव्य की कथावस्तु एक और शुद्ध ऐतिहासिक यथार्थ से भिन्न होती है ओर दूसरी ओर सर्वथा काल्पनिक भी नहीं होती। वह प्रख्यात होनी चाहिए, और उसमें यथार्थ से भव्यतर जीवन का अंकन होना चाहिए।

कथावस्तु का आयाम विस्तृत होना चाहिए, जिसके अंतर्गत विविध उपाख्यानों का समावेश हो सके। 'उसमें अपनी सीमाओं का विस्तार करने की बड़ी क्षमता होती है' क्योंकि त्रसदी की भांति वह रंगमंच की देशकाल संबंधी सीमाओं में परिबद्ध नहीं होता। उसमें अनेक घटनाओं का सहज समावेश हो सकता है, जिससे एक ओर काव्य को घनत्व और गरिमा प्राप्त होती है और दूसरी ओर अनेक उपाख्यानों के नियोजन के कारण रोचक वैविध्य उत्पन्न हो जाता है।

किंतु कथानक का यह विस्तार अनियंत्रित नहीं होना चाहिए। उसमें एक ही कार्य होना चाहिए जो आदि मध्य अवसान से युक्त एवं स्वत: पूर्ण हो। समस्त उपाख्यान इसी प्रमुख कार्य के साथ संबंद्ध और इस प्रकार से गुंफित हों कि उनका परिणाम एक ही हो।

इसके अतिरिक्त त्रसदी के वस्तुसंगठन के अन्य गुण -- पूर्वापरक्रम, संभाव्यता तथा कुतूहल -- भी महाकाव्य में यथावत् विद्यमान रहते हैं। उसकी परिधि में अद्‌भुत एवं अतिप्राकृत तत्त्व के लिये अधिक अवकाश रहता है और कुतूहल की संभावना भी महाकाव्य में अपेक्षाकृत अधिक रहती है। कथानक के सभी कुतूहलवर्धक अंग, जैसे–स्थितिविपर्यय, अभिज्ञान, संवृत्ति और विवृत्ति, महाकाव्य का भी उत्कर्ष करते हैं।

पात्र

महाकाव्य के पात्रों के संबंध में अरस्तू ने केवल इतना कहा है कि 'महाकाव्य और त्रसदी में यह समानता है कि उसमें भी उच्चतर कोटि के पात्रों

की पद्यबद्ध अनुकृति रहती है।' त्रसदी के पात्रों से समानता के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं कि महाकाव्य के पात्र भी प्राय: त्रसदी के समान भद्र, वैभवशाली, कुलीन और यशस्वी होने चाहिए। रुद्रट के अनुसार महाकाव्य में प्रतिनायक और उसके कुल का भी वर्णन होता है।

प्रयोजन और प्रभाव

कामायनी

अरस्तू के अनुसार महाकाव्य का प्रभाव और प्रयोजन भी त्रसदी के समान होना चाहिए, अर्थात् मनोवेगों का विरेचन, उसका प्रयोजन और तज्जन्य मन:शांति उसका प्रभाव होना चाहिए। यह प्रभाव नैतिक अथवा रागात्मक अथवा दोनों प्रकार का हो सकता है।

भाषा, शैली और छंद

अरस्तू के शब्दों में महाकाव्य की शैली का भी 'पूर्ण उत्कर्ष यह है कि वह प्रसन्न (प्रसादगुण युक्त) हो किंतु क्षुद्र न हो।' अर्थात् गरिमा तथा प्रसादगुण महाकाव्य की शैली के मूल तत्त्व हैं और गरिमा का आधार है असाधारणता। उनके मतानुसार महाकाव्य की भाषाशैली त्रसदी की करुणमधुर अलंकृत शैली से भिन्न, लोकातिक्रांत प्रयोगों से कलात्मक, उदात्त एवं गरिमावरिष्ठ होनी चाहिए।

वीर छंद के प्रयोग पर बल

महाकाव्य की रचना के लिये वे आदि से अंत तक एक ही छंद – वीर छंद-के प्रयोग पर बल देते हैं, क्योंकि उसका रूप अन्य वृत्तों की अपेक्षा अधिक भव्य एवं गरिमामय होता है, जिसमें अप्रचलित एवं लाक्षणिक शब्द बड़ी सरलता से अंतर्भुक्त हो जाते हैं। परवर्ती विद्वानों ने भी महाकाव्य के विभिन्न तत्त्वों के संदर्भ में उन्हीं विशेषताओं का पुनराख्यान किया है जिनका उल्लेख आचार्य अरस्तू कर चुके थे। वीरकाव्य (महाकाव्य) का आधार सभी ने जातीय गौरव की पुराकथाओं को स्वीकार किया है। जॉन हेरिंगटन वीरकाव्य के लिये ऐतिहासिक आधारभूमि की आवश्यकता पर बल देते हैं और स्पेंसर वीरकाव्य के लिये वैभव और गरिमा को आधारभूत तत्त्व मानते हैं। फ्रांस के कवि आलोचकों

पैलेतिए, वोकलें और रोनसार आदि ने भी महाकाव्य की कथावस्तु को सर्वाधिक गरिमायम, भव्य और उदात्त करते हुए उसके अंतर्गत ऐसे वातावरण के निर्माण का आग्रह किया है, जो क्षुद्र घटनाओं से मुक्त एवं भव्य हो।

महाकाव्य के मूल तत्त्व

भारतीय और पाश्चात्य आलोचकों के उपर्युक्त निरूपण की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि दोनों में ही महाकाव्य के विभिन्न तत्त्वों के संदर्भ में एक ही गुण पर बार-बार शब्दभेद से बल दिया गया है और वह है भव्यता एवं गरिमा, जो औदात्य से अंग हैं। वास्तव में, महाकाव्य व्यक्ति की चेतना से अनुप्राणित न होकर समस्त युग एवं राष्ट्र की चेतना से अनुप्राणित होता है। इसी कारण उसके मूल तत्त्व देशकाल सापेक्ष न होकर सार्वभौम होते हैं, जिनके अभाव में किसी भी देश अथवा युग की कोई रचना महाकाव्य नहीं बन सकती और जिनके सद्भाव में, परंपरागत शास्त्रीय लक्षणों की बाधा होने पर भी, किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वंचित करना संभव नहीं होता। ये मूल तत्त्व हैं -

उदात्त कथानक

उदात्त कार्य अथवा उद्देश्य

1. उदात्त चरित्र
2. उदात्त भाव और
3. उदात्त शैली।
4. इस प्रकार औदात्य अथवा महत्तत्व ही महाकाव्य का प्राण है।

6

संस्कृत के महाकाव्य

संस्कृत के महाकाव्य

रामायण

रामायण हिन्दू रघुवंश के राजा राम की गाथा है।। यह आदि कवि वाल्मीकि द्वारा लिखा गया संस्कृत का एक अनुपम महाकाव्य, स्मृति का वह अंग है। इसे आदिकाव्य तथा इसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि को 'आदिकवि' भी कहा जाता है। रामायण के सात अध्याय हैं, जो काण्ड के नाम से जाने जाते हैं, इसके 24, 000 श्लोक हैं।

रचनाकाल

कुछ भारतीय कहते हैं कि यह 600 ई.पू. से पहले लिखा गया। उसके पीछे युक्ति यह है कि महाभारत जो इसके पश्चात आया बौद्ध धर्म के बारे में मौन है, यद्यपि उसमें जैन, शैव, पाशुपत आदि अन्य परम्पराओं का वर्णन है, अतः रामायण गौतम बुद्ध के काल के पूर्व का होना चाहिये। भाषा-शैली से भी यह पाणिनि के समय से पहले का होना चाहिये।

"रामायण का पहला और अन्तिम कांड संभवतः बाद में जोड़ा गया था। अध्याय दो से सात तक ज्यादातर इस बात पर बल दिया जाता है कि राम विष्णु,

के अवतार थे। कुछ लोगों के अनुसार इस महाकाव्य में यूनानी और कई अन्य सन्दर्भों से पता चलता है कि यह पुस्तक दूसरी सदी ईसा पूर्व से पहले की नहीं हो, सकती पर यह धारणा विवादास्पद है। 600 ई.पू. से पहले का समय इसलिये भी ठीक है कि बौद्ध जातक रामायण के पात्रों का वर्णन करते हैं, जबकि रामायण में जातक के चरित्रों का वर्णन नहीं है।

हिन्दू कालगणना के अनुसार रचनाकाल

रामायण का समय त्रेतायुग का माना जाता है। हिन्दू कालगणना चतुर्युगी व्यवस्था पर आधारित है, जिसके अनुसार समय अवधि को चार युगों में बाँटा गया है- सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग एव कलियुग जिनकी प्रत्येक चतुर्युग (43, 20, 000 वर्ष) के बाद पुनरावृत्ति होती है। एक कलियुग 4, 32, 000 वर्ष का, द्वापर 8, 64, 000 वर्ष का, त्रेता युग 12, 96, 000 वर्ष का तथा सतयुग 17, 28, 000 वर्ष का होता है। इस गणना के अनुसार रामायण का समय न्यूनतम 8, 70, 000 वर्ष (वर्तमान कलियुग के 5, 118 वर्ष/ बीते द्वापर युग के 8, 64, 000 वर्ष) सिद्ध होता है।

रामायण मीमांसा के रचनाकार धर्मसम्राट स्वामी करपात्री, गोवर्धन पुरी शंकराचार्य पीठ, पं0 ज्वालाप्रसाद मिश्र, श्रीराघवेंद्रचरितम् के रचनाकार श्रीभागवतानंद गुरु आदि के अनुसार श्रीराम अवतार श्वेतवाराह कल्प के सातवें वैवस्वत मन्वन्तर के चौबीसवें त्रेता युग में हुआ था, जिसके अनुसार श्रीरामचंद्र जी का काल लगभग पौने दो करोड़ वर्ष पूर्व का है। इसके सन्दर्भ में विचार पीयूष, भुशुण्डि रामायण, पद्मपुराण, हरिवंश पुराण, वायु पुराण, संजीवनी रामायण एवं पुराणों से प्रमाण दिया जाता है।

राम कथा

सनातन धर्म के धार्मिक लेखक तुलसीदास जी के अनुसार सर्वप्रथम श्री राम की कथा भगवान श्री शंकर ने माता पार्वती जी को सुनायी थी, जहाँ पर भगवान शंकर पार्वती जी को भगवान श्री राम की कथा सुना रहे थे, वहाँ कागा (कौवा) का एक घोंसला था और उसके भीतर बैठा कागा भी उस कथा को सुन रहा था। कथा पूरी होने के पहले ही माता पार्वती को नींद आ गई पर उस पक्षी ने पूरी कथा सुन ली। उसी पक्षी का पुनर्जन्म काकभुशुण्डि, के रूप में हुआ। काकभुशुण्डि जी ने यह कथा गरुड़ जी को सुनाई। भगवान श्री शंकर के

मुख से निकली श्रीराम की यह पवित्र कथा अध्यात्म रामायण के नाम से प्रख्यात है। अध्यात्म रामायण को ही विश्व का सर्वप्रथम रामायण माना जाता है।

हृदय परिवर्तन हो जाने के कारण एक दस्यु से ऋषि बन जाने तथा ज्ञान प्राप्ति के बाद वाल्मीकि ने भगवान श्री राम के इसी वृतान्त को पुनः श्लोकबद्ध किया। महर्षि वाल्मीकि के द्वारा श्लोकबद्ध भगवान श्री राम की कथा को वाल्मीकि रामायण के नाम से जाना जाता है। वाल्मीकि को आदिकवि कहा जाता है तथा वाल्मीकि रामायण को आदि रामायण के नाम से भी जाना जाता है।

देश में विदेशियों की सत्ता हो जाने के बाद संस्कृत का ह्रास हो गया, और भारतीय लोग उचित ज्ञान के अभाव तथा विदेशी सत्ता के प्रभाव के कारण अपनी ही संस्कृति को भूलने लग गये। ऐसी स्थिति को अत्यन्त विकट जानकर जनजागरण के लिये महाज्ञानी सन्त श्री तुलसीदास जी ने एक बार फिर से भगवान श्रीराम की पवित्र कथा को देशी (अवधी) भाषा में लिपिबद्ध किया। सन्त तुलसीदास जी ने अपने द्वारा लिखित भगवान श्रीराम की कल्याणकारी कथा से परिपूर्ण इस ग्रंथ का नाम रामचरितमानस, रखा। सामान्य रूप से रामचरितमानस को तुलसी रामायण के नाम से जाना जाता है।

कालान्तर में भगवान श्रीराम की कथा को अनेक विद्वानों ने अपने-अपने बुद्धि, ज्ञान तथा मतानुसार अनेक बार लिखा है। इस तरह से अनेकों रामायणों की रचनाएँ हुई हैं।

संक्षेप में रामायण-कथा

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार भगवान राम, विष्णु के अवतार थे। इस अवतार का उद्देश्य मृत्युलोक में मानवजाति को आदर्श जीवन के लिये मार्गदर्शन देना था। अन्ततः श्रीराम ने राक्षस जाति, के राजा रावण का वध किया और धर्म की पुनर्स्थापना की।

बालकाण्ड

अयोध्या नगरी में दशरथ नाम के राजा हुये, जिनकी कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा नामक पत्नियाँ थीं। सन्तान प्राप्ति हेतु अयोध्यापति दशरथ ने अपने गुरु श्री वशिष्ठ की आज्ञा से पुत्रकामेष्टि यज्ञ करवाया, जिसे कि ऋंगी ऋषि ने सम्पन्न किया।

देवदूत द्वारा दशरथ को खीर देना, चित्रकार हुसैन नक्काश और बासवान, अकबर की जयपुर रामायण से भक्तिपूर्ण आहुतियाँ पाकर अग्निदेव प्रसन्न हुये और उन्होंने स्वयं प्रकट होकर राजा दशरथ को हविष्यपात्र (खीर, पायस) दिया, जिसे कि उन्होंने अपनी तीनों पत्नियों में बाँट दिया। खीर के सेवन के परिणामस्वरूप कौशल्या के गर्भ से राम का, कैकेयी के गर्भ से भरत का तथा सुमित्रा के गर्भ से लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ।

सीता स्वंयवर (चित्रकारः रवि वर्मा)

राजकुमारों के बड़े होने पर आश्रम की राक्षसों से रक्षा हेतु ऋषि विश्वामित्र राजा दशरथ से राम और लक्ष्मण को मांग कर अपने साथ ले गये। राम ने ताड़का और सुबाहु जैसे–राक्षसों को मार डाला और मारीच को बिना फल वाले बाण से मार कर समुद्र के पार भेज दिया। उधर लक्ष्मण ने राक्षसों की सारी सेना का संहार कर डाला। धनुषयज्ञ हेतु राजा जनक के निमन्त्रण मिलने पर विश्वामित्र राम और लक्ष्मण के साथ उनकी नगरी मिथिला (जनकपुर) आ गये। रास्ते में राम ने गौतम मुनि की स्त्री अहल्या का उद्धार किया। मिथिला में राजा जनक की पुत्री सीता, जिन्हें कि जानकी के नाम से भी जाना जाता है का स्वयंवर का भी आयोजन था जहाँ कि जनकप्रतिज्ञा के अनुसार शिवधनुष को तोड़ कर राम ने सीता से विवाह किया। राम और सीता के विवाह के साथ ही साथ गुरु वशिष्ठ ने भरत का माण्डवी से, लक्ष्मण का उर्मिला से और शत्रुघ्न का श्रुतकीर्ति से करवा दिया।

अयोध्याकाण्ड

राम के विवाह के कुछ समय पश्चात् राजा दशरथ ने राम का राज्याभिषेक करना चाहा। इस पर देवताओं को चिन्ता हुई कि राम को राज्य मिल जाने पर रावण का वध असम्भव हो जायेगा। व्याकुल होकर उन्होंने देवी सरस्वती से किसी प्रकार के उपाय करने की प्रार्थना की। सरस्वती ने मन्थरा, जो कि कैकेयी की दासी थी, की बुद्धि को फेर दिया। मन्थरा की सलाह से कैकेयी कोपभवन में चली गई। दशरथ जब मनाने आये तो कैकेयी ने उनसे वरदान मांगे कि भरत को राजा बनाया जाये और राम को चौदह वर्षों के लिये वनवास में भेज दिया जाये।

राम के साथ सीता और लक्ष्मण भी वन चले गये। ऋंगवेरपुर में निषादराज गुह ने तीनों की बहुत सेवा की। कुछ आनाकानी करने के बाद केवट ने तीनों को गंगा नदी के पार उतारा। प्रयाग पहुंच कर राम ने भारद्वाज मुनि से भेंट की। वहां से राम यमुना स्नान करते हुये वाल्मीकि ऋषि के आश्रम पहुंचे। वाल्मीकि से हुई मन्त्रणा के अनुसार राम, सीता और लक्ष्मण चित्रकूट में निवास करने लगे।

दशरथ की मृत्यु, चित्रकार मिस्कीन और भोरा

अयोध्या में पुत्र के वियोग के कारण दशरथ का स्वर्गवास हो गया। वशिष्ठ ने भरत और शत्रुघ्न को उनके ननिहाल से बुलवा लिया। वापस आने पर भरत ने अपनी माता कैकेयी की, उसकी कुटिलता के लिये, बहुत भर्तस्ना की और गुरुजनों के आज्ञानुसार दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया कर दिया। भरत ने अयोध्या के राज्य को अस्वीकार कर दिया और राम को मना कर वापस लाने के लिये समस्त स्नेहीजनों के साथ चित्रकूट चले गये। कैकेयी को भी अपने किये पर अत्यन्त पश्चाताप हुआ। सीता के माता-पिता सुनयना एवं जनक भी चित्रकूट पहुंचे। भरत तथा अन्य सभी लोगों ने राम के वापस अयोध्या जाकर राज्य करने का प्रस्ताव रखा, जिसे कि राम ने, पिता की आज्ञा पालन करने और रघुवंश की रीति निभाने के लिये, अमान्य कर दिया।

भरत अपने स्नेही जनों के साथ राम की पादुका को साथ लेकर वापस अयोध्या आ गये। उन्होंने राम की पादुका को राज सिंहासन पर विराजित कर दिया स्वयं नन्दिग्राम में निवास करने लगे।

अरण्यकाण्ड

कुछ काल के पश्चात राम ने चित्रकूट से प्रयाण किया तथा वे अत्रि ऋषि के आश्रम पहुँचे। अत्रि ने राम की स्तुति की और उनकी पत्नी अनसूया ने सीता को पातिव्रत धर्म के मर्म समझाये। वहाँ से फिर राम ने आगे प्रस्थान किया और शरभंग मुनि से भेंट की। शरभंग मुनि केवल राम के दर्शन की कामना से वहाँ निवास कर रहे थे, अतः राम के दर्शनों की अपनी अभिलाषा पूर्ण हो जाने से योगाग्नि से अपने शरीर को जला डाला और ब्रह्मलोक को गमन किया और आगे बढ़ने पर राम को स्थान-स्थान पर हड्डियों के ढेर दिखाई पड़े, जिनके विषय में मुनियों ने राम को बताया कि राक्षसों ने अनेक मुनियों को खा डाला है और उन्हीं मुनियों की हड्डियाँ हैं। इस पर राम ने प्रतिज्ञा की कि वे समस्त राक्षसों

का वध करके पृथ्वी को राक्षस विहीन कर देंगे। राम और आगे बढ़े और पथ में सुतीक्ष्ण, अगस्त्य आदि ऋषियों से भेंट करते हुये दण्डक वन में प्रवेश किया, जहाँ पर उनकी मुलाकात जटायु से हुई। राम ने पंचवटी को अपना निवास स्थान बनाया।

सीता हरण (चित्रकारः रवि वर्मा)

पंचवटी में रावण की बहन शूर्पणखा ने आकर राम से प्रणय निवेदन-किया। राम ने यह कह कर कि वे अपनी पत्नी के साथ हैं और उनका छोटा भाई अकेला है, उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया। लक्ष्मण ने उसके प्रणय-निवेदन को अस्वीकार करते हुये शत्रु की बहन जान कर उसके नाक और कान काट लिये। शूर्पणखा ने खर-दूषण से सहायता की मांग की और वह अपनी सेना के साथ लड़ने के लिये आ गया। लड़ाई में राम ने खर-दूषण और उसकी सेना का संहार कर डाला। शूर्पणखा ने जाकर अपने भाई रावण से शिकायत की। रावण ने बदला लेने के लिये मारीच को स्वर्णमृग बना कर भेजा, जिसकी छाल की मांग सीता ने राम से की। लक्ष्मण को सीता के रक्षा की आज्ञा दे कर राम स्वर्णमृग रूपी मारीच को मारने के लिये उसके पीछे चले गये। मारीच के हाथों मारा गया, पर मरते-मरते मारीच ने राम की आवाज बना कर 'हा लक्ष्मण' का क्रन्दन किया, जिसे सुन कर सीता ने आशंकावश होकर लक्ष्मण को राम के पास भेज दिया। लक्ष्मण के जाने के बाद अकेली सीता का रावण ने छलपूर्वक हरण कर लिया और अपने साथ लंका ले गया। रास्ते में जटायु ने सीता को बचाने के लिये रावण से युद्ध किया और रावण ने उसके पंख काटकर उसे अधमरा कर दिया।

सीता को न पा कर राम अत्यन्त दुःखी हुये और विलाप करने लगे। रास्ते में जटायु से भेंट होने पर उसने राम को रावण के द्वारा अपनी दुर्दशा होने व सीता को हर कर दक्षिण दिशा की ओर ले जाने की बात बताई। ये सब बताने के बाद जटायु ने अपने प्राण त्याग दिये और राम उसका अन्तिम संस्कार करके सीता की खोज में सघन वन के भीतर आगे बढ़े। रास्ते में राम ने दुर्वासा के शाप के कारण राक्षस बने गन्धर्व के बन्ध का वध करके उसका उद्धार किया और शबरी के आश्रम जा पहुँचे, जहाँ पर कि उसके द्वारा दिये गये जूठे बेरों को उसके भक्ति के वश में होकर खाया। इस प्रकार राम सीता की खोज में सघन वन के अंदर आगे बढ़ते गये।

किष्किन्धाकाण्ड

राम ऋष्यमूक पर्वत के निकट आ गये। उस पर्वत पर अपने मन्त्रियों सहित सुग्रीव रहता था। सुग्रीव ने, इस आशंका में कि कहीं बालि ने उसे मारने के लिये उन दोनों वीरों को न भेजा हो, हनुमान को राम और लक्ष्मण के विषय में जानकारी लेने के लिये ब्राह्मण के रूप में भेजा। यह जानने के बाद कि उन्हें बालि ने नहीं भेजा है, हनुमान ने राम और सुग्रीव में मित्रता करवा दी। सुग्रीव ने राम को सान्त्वना दी कि जानकी जी मिल जायेंगीं और उन्हें खोजने में वह सहायता देगा साथ ही अपने भाई बालि के अपने ऊपर किये गये अत्याचार के विषय में बताया। राम ने बालि का छलपूर्वक वध कर के सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य तथा बालि के पुत्र अंगद को युवराज का पद दे दिया।

राज्य प्राप्ति के बाद सुग्रीव विलास में लिप्त हो गया और वर्षा तथा शरद् ऋतु व्यतीत हो गई। राम की नाराजगी पर सुग्रीव ने वानरों को सीता की खोज के लिये भेजा। सीता की खोज में गये वानरों को एक गुफा में एक तपस्विनी के दर्शन हुये। तपस्विनी ने खोज दल को योगशक्ति से समुद्रतट पर पहुंचा दिया, जहां पर उनकी भेंट सम्पाती से हुई। सम्पाती ने वानरों को बताया कि रावण ने सीता को लंका अशोकवाटिका में रखा है। जाम्बवन्त ने हनुमान को समुद्र लांघने के लिये उत्साहित किया।

सुंदरकाण्ड

हनुमान ने लंका की ओर प्रस्थान किया। सुरसा ने हनुमान की परीक्षा ली और उसे योग्य तथा सामर्थ्यवान पाकर आशीर्वाद दिया। मार्ग में हनुमान ने छाया पकड़ने वाली राक्षसी का वध किया और लंकिनी पर प्रहार करके लंका में प्रवेश किया। उनकी विभीषण से भेंट हुई। जब हनुमान अशोकवाटिका में पहुँचे तो रावण सीता को धमका रहा था। रावण के जाने पर त्रिजटा ने सीता को सान्त्वना दी। एकान्त होने पर हनुमान ने सीता से भेंट करके, उन्हें राम की मुद्रिका दी। हनुमान ने अशोकवाटिका का विध्वंस करके रावण के पुत्र अक्षय कुमार का वध कर दिया। मेघनाथ हनुमान को नागपाश में बांध कर रावण की सभा में ले गया। रावण के प्रश्न के उत्तर में हनुमान ने अपना परिचय राम के दूत के रूप में दिया। रावण ने हनुमान की पूँछ में तेल में डूबा हुआ कपड़ा बांध कर आग लगा दिया इस पर हनुमान ने लंका का दहन कर दिया।

हनुमान सीता के पास पहुँचे। सीता ने अपनी चूड़ामणि दे कर उन्हें विदा किया। वे वापस समुद्र पार आकर सभी वानरों से मिले और सभी वापस सुग्रीव के पास चले गये। हनुमान के कार्य से राम अत्यन्त प्रसन्न हुये। राम वानरों की सेना के साथ समुद्रतट पर पहुँचे। उधर विभीषण ने रावण को समझाया कि राम से बैर न लें इस पर रावण ने विभीषण को अपमानित कर लंका से निकाल दिया। विभीषण राम के शरण में आ गया और राम ने उसे लंका का राजा घोषित कर दिया। राम ने समुद्र से रास्ता देने की विनती की। विनती न मानने पर राम ने क्रोध किया और उनके क्रोध से भयभीत होकर समुद्र ने स्वयं आकर राम की विनती करने के पश्चात् नल और नील के द्वारा पुल बनाने का उपाय बताया।

लंकाकाण्ड (युद्धकाण्ड)

जाम्बवन्त के आदेश से नल-नील दोनों भाइयों ने वानर सेना की सहायता से समुद्र पर पुल बांध दिया। श्री राम ने श्री रामेश्वर की स्थापना करके भगवान शंकर की पूजा की और सेना सहित समुद्र के पार उतर गये। समुद्र के पार जाकर राम ने डेरा डाला। पुल बंध जाने और राम के समुद्र के पार उतर जाने के समाचार से रावण मन में अत्यन्त व्याकुल हुआ। मन्दोदरी के राम से बैर न लेने के लिये समझाने पर भी रावण का अहंकार नहीं गया। इधर राम अपनी वानरसेना के साथ सुबेल पर्वत पर निवास करने लगे। अंगद राम के दूत बन कर लंका में रावण के पास गये और उसे राम के शरण में आने का संदेश दिया, किन्तु रावण ने नहीं माना।

शान्ति के सारे प्रयास असफल हो जाने पर युद्ध आरम्भ हो गया। लक्ष्मण और मेघनाद के मध्य घोर युद्ध हुआ। शक्तिबाण के वार से लक्ष्मण मूर्छित हो गये। उनके उपचार के लिये हनुमान सुषेण वैद्य को ले आये और संजीवनी लाने के लिये चले गये। गुप्तचर से समाचार मिलने पर रावण ने हनुमान के कार्य में बाधा के लिये कालनेमि को भेजा, जिसका हनुमान ने वध कर दिया। औषधि की पहचान न होने के कारण हनुमान पूरे पर्वत को ही उठा कर वापस चले। मार्ग में हनुमान को राक्षस होने के सन्देह में भरत ने बाण मार कर मूर्छित कर दिया, परन्तु यथार्थ जानने पर अपने बाण पर बैठा कर वापस लंका भेज दिया। इधर औषधि आने में विलम्ब देख कर राम प्रलाप करने लगे। सही समय पर हनुमान औषधि लेकर आ गये और सुषेण के उपचार से लक्ष्मण स्वस्थ हो गये।

रावण ने युद्ध के लिये कुम्भकर्ण को जगाया। कुम्भकर्ण ने भी रावण को राम की शरण में जाने की असफल मन्त्रणा दी। युद्ध में कुम्भकर्ण ने राम के हाथों परमगति प्राप्त की। लक्ष्मण ने मेघनाद से युद्ध करके उसका वध कर दिया। राम और रावण के मध्य अनेकों घोर युद्ध हुए और अन्त में रावण राम के हाथों मारा गया। विभीषण को लंका का राज्य सौंप कर राम, सीता और लक्ष्मण के साथ पुष्पकविमान पर चढ़ कर अयोध्या के लिये प्रस्थान किया।

उत्तरकाण्ड

उत्तरकाण्ड राम कथा का उपसंहार है। सीता, लक्ष्मण और समस्त वानरसेना के साथ राम अयोध्या वापस पहुँचे। राम का भव्य स्वागत हुआ, भरत के साथ सर्वजनों में आनन्द व्याप्त हो गया। वेदों और शिव की स्तुति के साथ राम का राज्याभिषेक हुआ। अभ्यागतों की विदाई दी गई। राम ने प्रजा को उपदेश दिया और प्रजा ने कृतज्ञता प्रकट की। चारों भाइयों के दो दो पुत्र हुये। रामराज्य एक आदर्श बन गया।

उपरोक्त बातों के साथ ही साथ गोस्वामी तुलसीदास जी ने उत्तरकाण्ड में श्री राम-वशिष्ठ संवाद, नारद जी का अयोध्या आकर रामचन्द्र जी की स्तुति करना, शिव-पार्वती संवाद, गरुड़ मोह तथा गरुड़ जी का काकभुशुण्डि जी से रामकथा एवं राम-महिमा सुनना, काकभुशुण्डि जी के पूर्वजन्म की कथा, ज्ञान-भक्ति निरूपण, ज्ञानदीपक और भक्ति की महान महिमा, गरुड़ के सात प्रश्न और काकभुशुण्डि जी के उत्तर आदि विषयों का भी विस्तृत वर्णन किया है।

जहाँ तुलसीदास जी ने उपरोक्त वर्णन लिखकर रामचरितमानस को समाप्त कर दिया है, वहीं आदिकवि वाल्मीकि अपने रामायण में उत्तरकाण्ड में रावण तथा हनुमान के जन्म की कथा, सीता का निर्वासन, राजा नृग, राजा निमि, राजा ययाति तथा रामराज्य में कुत्ते का न्याय की उपकथायें, लवकुश का जन्म, राम के द्वारा अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान तथा उस यज्ञ में उनके पुत्रों लव तथा कुश के द्वारा महाकवि वाल्मीकि रचित रामायण गायन, सीता का रसातल प्रवेश, लक्ष्मण का परित्याग, 515 518 का भी वर्णन किया है। वाल्मीकि रामायण में उत्तरकाण्ड का समापन राम के महाप्रयाण के बाद ही हुआ है।

रामायण की सीख

रामायण के सारे चरित्र अपने धर्म का पालन करते हैं।

राम एक आदर्श पुत्र हैं। पिता की आज्ञा उनके लिये सर्वोपरि है। पति के रूप में राम ने सदैव एकपत्नीव्रत का पालन किया। राजा के रूप में प्रजा के हित के लिये स्वयं के हित को हेय समझते हैं। विलक्षण व्यक्तित्त्व है उनका, वे अत्यन्त वीर्यवान, तेजस्वी, विद्वान, धैर्यशील, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान, सुंदर, पराक्रमी, दुष्टों का दमन करने वाले, युद्ध एवं नीतिकुशल, धर्मात्मा, मर्यादापुरुषोत्तम, प्रजावत्सल, शरणागत को शरण देने वाले, सर्वशास्त्रों के ज्ञाता एवं प्रतिभा सम्पन्न हैं।

सीता का पतिव्रत महान है, सारे वैभव और ऐश्वर्य को ठुकरा कर वे पति के साथ वन चली गई।

रामायण भातृ-प्रेम का भी उत्कृष्ट उदाहरण है। जहाँ बड़े भाई के प्रेम के कारण लक्ष्मण उनके साथ वन चले जाते हैं, वहीं भरत अयोध्या की राज गद्दी पर, बड़े भाई का अधिकार होने के कारण, स्वयं न बैठ कर राम की पादुका को प्रतिष्ठित कर देते हैं।

कौशल्या एक आदर्श माता हैं। अपने पुत्र राम पर कैकेयी के द्वारा किये गये अन्याय को भूला कर वे कैकेयी के पुत्र भरत पर उतनी ही ममता रखती हैं जितनी कि अपने पुत्र राम पर।

हनुमान एक आदर्श भक्त हैं, वे राम की सेवा के लिये अनुचर के समान सदैव तत्पर रहते हैं। शक्तिबाण से मूर्छित लक्ष्मण को उनकी सेवा के कारण ही प्राणदान प्राप्त होता है।

रावण के चरित्र से सीख मिलती है कि अहंकार नाश का कारण होता है।

रामायण के चरित्रों से सीख लेकर मनुष्य अपने जीवन को सार्थक बना सकता है।

रामायण द्वारा प्रेरित अन्य साहित्यिक महाकाव्य

वाल्मीकि रामायण से प्रेरित होकर सन्त तुलसीदास ने रामचरितमानस जैसे–महाकाव्य की रचना की जो कि वाल्मीकि के द्वारा संस्कृत में लिखे गये रामायण का हिंदी संस्करण है। रामचरितमानस में हिंदू आदर्शों का उत्कृष्ट वर्णन है इसीलिये इसे हिंदू धर्म के प्रमुख ग्रंथ होने का श्रेय मिला हुआ है और प्रत्येक हिंदू परिवार में भक्तिभाव के साथ इसका पठन पाठन किया जाता है।

रामायण से ही प्रेरित होकर मैथिलीशरण गुप्त ने पंचवटी तथा साकेत नामक खंडकाव्यों की रचना की। रामायण में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के उल्लेखनीय त्याग को शायद भूलवश अनदेखा कर दिया गया है और इस भूल को साकेत खंडकाव्य रचकर मैथिलीशरण गुप्त जी ने सुधारा है।

राम सम्बन्धी कथानक से प्रेरित होकर श्रीभागवतानंद गुरु ने संस्कृत महाकाव्य श्रीराघवेंद्रचरितम् की रचना की जो अद्‌भुत एवं गुप्त कथाप्रसंग से भरा हुआ है। इस ग्रंथ में 20 से अधिक प्रकार के रामायणों की कथा का समावेश है।

नेपाल के राजदरबार से सम्मानित कविवर श्री राधेश्याम जी की राधेश्याम रामायण, प्रेमभूषण जी की प्रेम रामायण, महर्षि कम्बन की कम्ब रामायण के अलावा और भी अनेक साहित्यकारों ने रामायण से प्रेरणा ले कर अनेक कृतियों की रचना की है।

इन्हें भी देखें

भगवान महावीर का साधना काल

रामायण और चित्रकला

विभिन्न भाषाओं में रामायण

श्री रामचरित मानस

महाभारत

राम तांडव स्तोत्र

श्रीराघवेंद्रचरितम्

राम

भगवद गीता

महाकाव्य

हिंदू साहित्य

वेद

रामचरितमानस, टीकाकार: हनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक एवं मुद्रक: गीताप्रेस, गोरखपुर।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (प्रथम एवं द्वितीय खंड), सचित्र, हिंदी अनुवाद सहित, प्रकाशक एवं मुद्रक: गीताप्रेस, गोरखपुर।

कवितावली, प्रकाशक एवं मुद्रक: गीताप्रेस, गोरखपुर।

रामायण के कुछ आदर्श पात्र, प्रकाशक एवं मुद्रक: गीताप्रेस, गोरखपुर

वाल्मीकी, रामायण, प्रकाशक: देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली।

महाभारत

महाभारत हिन्दुओं का एक प्रमुख काव्य ग्रंथ है, जो स्मृति के इतिहास वर्ग में आता है। कभी-कभी इसे केवल भारत कहा जाता है। यह काव्यग्रंथ भारत का अनुपम धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और दार्शनिक ग्रंथ हैं। विश्व का सबसे लंबा यह साहित्यिक ग्रंथ और महाकाव्य, हिन्दू धर्म के मुख्यतम ग्रंथों में से एक है। इस ग्रन्थ को हिन्दू धर्म में पंचम वेद माना जाता है। यद्यपि इसे साहित्य की सबसे अनुपम कृतियों में से एक माना जाता है, किन्तु आज भी यह ग्रंथ प्रत्येक भारतीय के लिये एक अनुकरणीय स्रोत है। यह कृति प्राचीन भारत के इतिहास की एक गाथा है। इसी में हिन्दू धर्म का पवित्रतम ग्रंथ भगवद्गीता सन्निहित है। पूरे महाभारत में लगभग 1, 10, 000 श्लोक हैं, जो यूनानी काव्यों इलियड और ओडिसी से परिमाण में दस गुणा अधिक हैं।

हिन्दू मान्यताओं, पौराणिक संदर्भो एवं स्वयं महाभारत के अनुसार इस काव्य का रचनाकार वेदव्यास जी को माना जाता है। इस काव्य के रचयिता वेदव्यास जी ने अपने इस अनुपम काव्य में वेदों, वेदांगों और उपनिषदों के गुह्यतम रहस्यों का निरुपण किया हैं। इसके अतिरिक्त इस काव्य में न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, ज्योतिष, युद्धनीति, योगशास्त्र, अर्थशास्त्र, वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र, कामशास्त्र, खगोलविद्या तथा धर्मशास्त्र का भी विस्तार से वर्णन किया गया हैं।

मूल काव्य रचना इतिहास

सूत जी द्वारा महाभारत ऋषि मुनियों को सुनाना।

वेदव्यास जी को महाभारत पूरा रचने में 3 वर्ष लग गये थे, इसका कारण यह हो सकता है कि उस समय लेखन लिपि कला का इतना विकास नहीं हुआ था, उस काल में ऋषियों द्वारा वैदिक ग्रन्थों को पीढ़ी दर पीढ़ी परम्परागत मौखिक रूप से याद करके सुरक्षित रखा जाता था। उस समय संस्कृत ऋषियों की भाषा थी और ब्राह्मी आम बोलचाल की भाषा हुआ करती थी। इस प्रकार ऋषियों द्वारा सम्पूर्ण वैदिक साहित्य मौखिक रूप से याद कर पीढ़ी दर पीढ़ी सहस्त्रों वर्षो तक याद रखा गया। फिर धीरे-धीरे जब समय के प्रभाव से वैदिक युग के पतन के साथ ही ऋषियों की वैदिक साहित्यों को याद रखने की शैली लुप्त हो गयी तब से वैदिक साहित्य को पाण्डुलिपियों पर लिखकर सुरक्षित रखने का प्रचलन हो गया। यह सर्वमान्य है कि महाभारत का आधुनिक रूप कई अवस्थाओं से गुजर कर बना है। विद्वानों द्वारा इसकी रचना की चार प्रारम्भिक

अवस्थाएं पहचानी गयी हैं। ये अवस्थाएं संभावित रचना काल क्रम में निम्न लिखित हैं–

वेदव्यास जी को महाभारत को पूरा रचने में 3 वर्ष लग गये थे, इसका कारण यह हो सकता है कि उस समय लेखन लिपी कला का इतना विकास नहीं हुआ था, संस्कृत ऋषियों की भाषा थी और ब्राह्मी आम बोल-चाल की भाषा हुआ करती थी।

पुराण और इतिहास के सबसे शुरुआती संदर्भ 2,800 साल पहले शतपथ ब्राह्मण में पाए जा सकते हैं, हालांकि, हम उस वक्त कहानियों को नहीं जानते थे। उनमें राम और कृष्ण की कहानी शामिल हो सकती है, लेकिन हम निश्चित नहीं हो सकते हैं। सदियों से मौखिक संचरण के बाद 2,000 साल पहले, इन कहानियों को संस्कृत महाकाव्य रामायण और महाभारत के रूप में परिष्कृत थे। यह सर्वमान्य है कि महाभारत का आधुनिक रूप कई अवस्थाओं से गुजर कर बना है, इसकी रचना की चार प्रारम्भिक अवस्थाए पहचानी गयी है।

अवस्थाएँ

ये अवस्थाएं निम्न लिखित हैं–

सर्वप्रथम् वेदव्यास द्वारा रचित एक लाख श्लोकों और 100 पर्वो का 'जय' महाकाव्य, जो बाद में महाभारत के रूप में प्रसिद्ध हुआ। सम्भावित रचना काल, (1000 इसवी ईसा पूर्व)।

दूसरी बार व्यास जी के कहने पर उनके शिष्य वैशम्पायन जी द्वारा पुनः इसी 'जय' महाकाव्य को जनमेजय के यज्ञ समारोह में ऋषि मुनियों को सुनाया तब यह वार्ता 'भारत' के रूप में जानी गायी। सम्भावित रचना काल, (3000 इसवी ईसा पूर्व)।

जनमेजय के सर्प यज्ञ समारोह पर वैशम्पायन जी ऋषि मुनियों को महाभारत सुनाते हुए तीसरी बार फिर से वैशम्पायन और ऋषि मुनियों की इस वार्ता के रूप में कही गयी 'महाभारत' को सुत जी द्वारा पुनः 18 पर्वो के रूप में सुव्यवस्थित करके समस्त ऋषि मुनियों को सुनाना। सम्भावित रचना काल, (2000 इसवी ईसा पूर्व)।

सुत जी और ऋषि मुनियों की इस वार्ता के रूप में कही गयी 'महाभारत' का लेखन कला के विकसित होने पर सर्वप्रथम् ब्राह्मी या संस्कृत में हस्तलिखित

पाण्डुलिपियों के रूप में लिपी बद्ध किया जाना। सम्भावित रचना काल, (1200. 600 इसवी ईसा पूर्व)।

इसके बाद भी कई विद्वानो द्वारा इसमे बदलती हुई रीतियो के अनुसार फेर बदल किया गया, जिसके कारण उपलब्ध प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों में कई भिन्न-भिन्न श्लोक मिलते हैं, इस समस्या से निजात पाने के लिये पुणे में स्थित भांडारकर प्राच्य शोध संस्थान ने पूरे दक्षिण एशिया में उपलब्ध महाभारत की सभी पाण्डुलिपियों (लगभग 10,000) का शोध और अनुसंधान करके उन सभी में एक ही समान पाये जाने वाले लगभग 75,000 श्लोकों को खोज निकाला और उनका सटिप्पण एवं समीक्षात्मक संस्करण प्रकाशित किया, कई खण्डों वाले 13,000 पृष्ठों के इस ग्रंथ का सारे संसार के सुयोग्य विद्वानों ने स्वागत किया।

यूनान के पहली शताब्दी के राजदूत डियो क्रायसोसटम, यह बताते हैं कि दक्षिण भारतीयों के पास एक लाख श्लोकों का एक ग्रन्थ है, जिससे यह पता चलता है कि महाभारत पहली शताब्दी में भी एक लाख श्लोकों का था। महाभारत की कहानी को मुख्य यूनानी ग्रन्थों इलियड और ओडिसी में बार-बार अन्य रूप से दोहराया गया, जैसे–धृतराष्ट्र का पुत्र मोहए कर्ण, अर्जुन प्रतिस्पर्धा आदि।

महाराजा शरवन्थ के 5वीं शताब्दी के तांबे की स्लेट पर पाये गये अभिलेख में महाभारत को एक लाख श्लोकों का ग्रन्थ बतया गया है, संस्कृत की सबसे पुरानी पहली शताब्दी की एमएस स्पित्जर पाण्डुलिपि में भी महाभारत के 18 पर्वो की अनुक्रमणिका दी गयी है, जिससे यह पता चलता है कि इस काल तक महाभारत 18 पर्वो के रूप में प्रसिद थी, हालांकि 100 पर्वो की अनुक्रमणिका बहुत प्राचीन काल में प्रसिद्ध रही होगी, क्योंकि वेदव्यास जी ने महाभारत की रचना सर्वप्रथम 100 पर्वो में की थी, जिसे बाद में सुत जी ने 18 पर्वो के रूप में व्यवस्थित कर दिया।

पाणिनि(700.500 ईसा पूर्व) द्वारा रचित अष्टाध्यायी महभारत और भारत दोनों को जानती है। अतएव यह निश्चित है कि महाभारत और भारत पाणिनि के काल के बहुत पहले से ही अस्तित्त्व में है।

महाभारत में गुप्त और मौर्य राजाओं तथा जैन, (1000-700 ईसा पूर्व) और बौद्ध धर्म(700-200 ईसा पूर्व) का भी वर्णन नहीं आता। साथ ही छांदोग्य.

उपनिषद (1000 ईसा पूर्व) में भी महाभारत के पात्रो को वर्णन मिलता है। अतएव यह निश्चित तौर पे 1000 ईसा पूर्व से पहले रची गयी होगी।

महाभारत कालीन सरस्वती नदी

महाभारत में प्राचीन वैदिक सरस्वती नदी का कई बार वर्णन आता है, बलराम जी द्वारा इसके तट के समान्तर प्लश पेड़ (यमुनोत्री के पास) से प्रभास क्षेत्र (वर्तमान रन ऑफ कच्छ) तक तीर्थयात्रा का वर्णन भी महाभारत में आता है, कई भू.विज्ञानी मानते हैं की वर्तमान सूखी हुई घग्गर.हकरा नदी ही प्राचीन वैदिक सरस्वती नदी थी, जो 5000–3000 इसवी ईसा पूर्व बहती थी और लग्भग 1900 इसवी ईसा पूर्व में भूगर्भी परिवर्तनों के कारण सूख गयी थी, ऋग्वेद में वर्णित प्राचीन वैदिक काल में सरस्वती नदी को नदीतमा की उपाधि दी गई थी। उनकी सभ्यता में सरस्वती ही सबसे बड़ी और मुख्य नदी थी, गंगा नहीं।

भूगर्भी परिवर्तनों के कारण सरस्वती नदी का पानी गंगा में चला गया और कई विद्वान मानते हैं कि इसी कारण गंगा के पानी की महिमा हुई। इस घटना को बाद के वेदिक साहित्यों में वर्णित हस्तिनापुर के गंगा द्वारा बहाकर ले जाने से भी जोड़ा जाता है, क्योंकि पुराणों में आता है कि परिक्षित की 28 पीढियों के बाद गंगा से बाढ़ आ जाने के कारण सम्पूर्ण हस्तिनापुर पानी में बह जाता है और बाद की पीढ़िया कौसाम्बी को अपनी राजधानी बनाती है। महाभारत में सरस्वती नदी के विनाश्न नामक तीर्थ पर सुखने का सन्दर्भ आता है, जिसके अनुसार मलेच्छों से द्वेष होने के कारण सरस्वती नदी ने मलेच्छ (सिंध के पास के) प्रदेशो में जाना बंद कर दिया।

इन सम्पूर्ण तथ्यो से यह माना जा सकता है की महाभारत 5000.3000 इसवी ईसा पूर्व या निशिचत तौर पर 1900 इसवी ईसा पूर्व रची गयी होगीए जो महाभारत में वर्णित ज्योतिषिय तिथियो से मेल खाती है। इस काव्य में बौद्ध धर्म का वर्णन नहीं है, अत: यह काव्य गौतम बुद्ध के काल से पहले अवश्य पूरा हो गया था।

अधिकतर अन्य भारतीय साहित्यों के समान ही यह महाकाव्य भी पहले वाचिक परंपरा द्वारा हम तक पीढ़ी दर पीढ़ी पहुँचा है। बाद में छपाई की कला के विकसित होने से पहले ही इसके बहुत से अन्य भौगोलिक संस्करण भी हो गये हैं, जिनमें बहुत सी ऐसी घटनायें हैं, जो मूल कथा में नहीं दिखती या फिर किसी अन्य रूप में दिखती है।

प्रारम्भिक चार अवस्थाएं

3100 ईसा पूर्व

जनमेजय के सर्प यज्ञ समारोह पर वैशम्पायन जी ऋषि मुनियों को महाभारत सुनाते हुए।

(1) सर्वप्रथम वेदव्यास द्वारा 100 पर्वों के रूप में एक लाख श्लोकों का रचित भारत महाकाव्य, जो बाद में महाभारत के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(2) दूसरी बार व्यास जी के कहने पर उनके शिष्य वैशम्पायन जी द्वारा पुनः इसी 'भारत' महाकाव्य को जनमेजय के यज्ञ समारोह में ऋषि-मुनियों को सुनाना।

2000 ईसा पूर्व

(3) तीसरी बार फिर से वैशम्पायन और ऋषि-मुनियों की इस वार्ता के रूप में कही गयी 'महाभारत' को सूत जी द्वारा पुनः 18 पर्वों के रूप में सुव्यवस्थित करके समस्त ऋषि-मुनियों को सुनाना।

1200-600 ईसा पूर्व

(4) सूत जी और ऋषि-मुनियों की इस वार्ता के रूप में कही गयी 'महाभारत' का लेखन कला के विकसित होने पर सर्वप्रथम् ब्राह्मी या संस्कृत में हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के रूप में लिपी बद्ध किया जाना।

भंडारकर संस्थान द्वारा

इसके बाद भी कई विद्वानों द्वारा इसमें बदलती हुई रीतियों के अनुसार बदलाव किया गया, जिसके कारण उपलब्ध प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों में कई भिन्न-भिन्न श्लोक मिलते हैं, इस समस्या के निदान के लिये पुणे में स्थित भांडारकर प्राच्य शोध संस्थान ने पूरे दक्षिण एशिया में उपलब्ध महाभारत की सभी पाण्डुलिपियों (लगभग 10, 000) का शोध और अनुसंधान करके उन सभी में एक ही समान पाये जाने वाले लगभग 75, 000 श्लोकों को खोजकर उनका सटिप्पण एवं समीक्षात्मक संस्करण प्रकाशित किया, कई खण्डों वाले 13, 000 पृष्ठों के इस ग्रंथ का सारे संसार के सुयोग्य विद्वानों ने स्वागत किया।

ऐतिहासिक एवं भाषाई प्रमाण

1000 ईसा पूर्व

महाभारत में गुप्त और मौर्य कालीन राजाओं तथा जैन (1000–700 ईसा पूर्व) और बौद्ध धर्म (700–200 ईसा पूर्व) का भी वर्णन नहीं आता। साथ ही शतपथ ब्राह्मण (1100 ईसा पूर्व) एवं छांदोग्य-उपनिषद (1000 ईसा पूर्व) में भी महाभारत के पात्रों का वर्णन मिलता है। अतएव यह निश्चित तौर पर 1000 ईसा पूर्व से पहले रची गयी होगी।

600-400 ईसा पूर्व

पाणिनि द्वारा रचित अष्टाध्यायी (600–400 ईसा पूर्व) में महाभारत और भारत दोनों का उल्लेख हैं तथा इसके साथ साथ श्रीकृष्ण एवं अर्जुन का भी संदर्भ आता है अतएव यह निश्चित है कि महाभारत और भारत पाणिनि के काल के बहुत पहले से ही अस्तित्त्व में रहे थे।

प्रथम शताब्दी

यूनान के पहली शताब्दी के राजदूत डियो क्रायसोसटम यह बताते हैं कि दक्षिण-भारतीयों के पास एक लाख श्लोकों का एक ग्रंथ है , जिससे यह पता चलता है कि महाभारत पहली शताब्दी में भी एक लाख श्लोकों का था। महाभारत की कहानी को ही बाद के मुख्य यूनानी ग्रंथों इलियड और ओडिसी में बार-बार अन्य रूप से दोहराया गया, जैसे–धृतराष्ट्र का पुत्र मोह, कर्ण-अर्जुन प्रतिस्पर्धा आदि। संस्कृत की सबसे प्राचीन पहली शताब्दी की एमएस स्पित्जर पाण्डुलिपि में भी महाभारत के 18 पर्वों की अनुक्रमणिका दी गयी है, जिससे यह पता चलता है कि इस काल तक महाभारत 18 पर्वों के रूप में प्रसिद्ध थी, यद्यपि 100 पर्वों की अनुक्रमणिका बहुत प्राचीन काल में प्रसिद्ध रही होगी, क्योंकि वेदव्यास जी ने महाभारत की रचना सर्वप्रथम 100 पर्वों में की थी, जिसे बाद में सूत जी ने 18 पर्वों के रूप में व्यवस्थित कर ऋषियों को सुनाया था।

5वीं शताब्दी

महाराजा शरवन्थ के 5वीं शताब्दी के तांबे की स्लेट पर पाये गये अभिलेख में महाभारत को एक लाख श्लोकों की संहिता बताया गया है। वह अभिलेख निम्नलिखित है–

" उक्तञ्च महाभारते शतसाहस्त्रयां संहितायां पराशरसुतेन वेदव्यासेन व्यासेन।

पुरातत्त्व प्रमाण (1900 ई.पू से पहले)

महाभारत कालीन सरस्वती नदी (हरे रंग में)

द्वारका

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग ने गुजरात के पश्चिमी तट पर समुद्र में डूबे 4000-3500 वर्ष पुराने शहर खोज निकाले हैं। इनको महाभारत में वर्णित द्वारका के सन्दर्भों से जोड़ा गया है। प्रो.एस.आर राव ने कई तर्क देकर इस नगरी को द्वारका सिद्ध किया है। यद्यपि अभी मतभेद जारी है, क्योंकि गुजरात के पश्चिमी तट पर कई अन्य 7500 वर्ष पुराने शहर भी मिल चुके हैं।

निष्कर्ष

इन सम्पूर्ण तथ्यों से यह माना जा सकता है कि महाभारत निश्चित तौर पर 950-800 ईसा पूर्व रची गयी होगी, जो महाभारत में वर्णित ज्योतिषीय तिथियों, भाषाई विश्लेषण, विदेशी सूत्रों एवं पुरातत्त्व प्रमाणों से मेल खाती है, परन्तु आधुनिक संस्करण की रचना 600-200 ईसा पूर्व हुई होगी। अधिकतर अन्य वैदिक साहित्यों के समान ही यह महाकाव्य भी पहले वाचिक परंपरा द्वारा हम तक पीढ़ी दर पीढ़ी पहुँचा और बाद में छपाई की कला के विकसित होने से पहले ही इसके बहुत से अन्य भौगोलिक संस्करण भी हो गये, जिनमें बहुत सी ऐसी घटनायें हैं, जो मूल कथा में नहीं दिखती या फिर किसी अन्य रूप में दिखती है।

परिचय

कम्बोडिया के अंकोर वट में वेदव्यास एवं गणेश जी को महाभारत की रचना करते हुए चित्रित करता एक शिलाचित्र।

आरम्भ

महाभारत ग्रंथ का आरम्भ निम्न श्लोक के साथ होता है–

"नारायणं नमस्कृत्य नरं चौव नरोत्तमम्।

देवीं सरस्वतीं चौव ततो जयमुदीरयेत्॥

परन्तु महाभारत के आदिपर्व में दिये वर्णन के अनुसार कई विद्वान इस ग्रंथ का आरम्भ 'नारायणं नमस्कृत्य' से, तो कोई आस्तिक पर्व से और दूसरे विद्वान ब्राह्मण उपचिर वसु की कथा से इसका आरम्भ मानते हैं।

विभिन्न नाम

यह महाकाव्य 'जय संहिता', 'भारत' और 'महभारत' इन तीन नामों से प्रसिद्ध हैं। वास्तव में वेद व्यास जी ने सबसे पहले 1, 00, 000 श्लोकों के परिमाण के 'भारत' नामक ग्रंथ की रचना की थी, इसमें उन्होने भारतवंशियों के चरित्रों के साथ-साथ अन्य कई महान ऋषियों, चन्द्रवंशी-सूर्यवंशी राजाओं के उपाख्यानों सहित कई अन्य धार्मिक उपाख्यान भी डाले। इसके बाद व्यास जी ने 24, 000 श्लोकों का बिना किसी अन्य ऋषियों, चन्द्रवंशी-सूर्यवंशी राजाओं के उपाख्यानों का केवल भारतवंशियों को केन्द्रित करके 'भारत' काव्य बनाया। इन दोनों रचनाओं में धर्म की अधर्म पर विजय होने के कारण इन्हें 'जय' भी कहा जाने लगा। महाभारत में एक कथा आती है कि जब देवताओं ने तराजू के एक पासे में चारों 'वेदों' को रखा और दूसरे पर 'भारत ग्रंथ' को रखा, तो 'भारत ग्रंथ' सभी वेदों की तुलना में सबसे अधिक भारी सिद्ध हुआ। अत: 'भारत' ग्रंथ की इस महत्ता (महानता) को देखकर देवताओं और ऋषियों ने इसे 'महाभारत' नाम दिया और इस कथा के कारण मनुष्यों में भी यह काव्य 'महाभारत' के नाम से सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ।

ग्रन्थ लेखन की कथा

वेद व्यास से सुनकर भगवान गणेश महभारत लिखते हुए।

महाभारत में ऐसा वर्णन आता है कि वेदव्यास जी ने हिमालय की तलहटी की एक पवित्र गुफा में तपस्या में संलग्न तथा ध्यान योग में स्थित होकर महाभारत की घटनाओं का आदि से अन्त तक स्मरण कर मन ही मन में महाभारत की रचना कर ली। परन्तु इसके पश्चात उनके सामने एक गंभीर समस्या आ खड़ी हुई कि इस काव्य के ज्ञान को सामान्य जन साधारण तक कैसे पहुँचाया जाये, क्योंकि इसकी जटिलता और लम्बाई के कारण यह बहुत कठिन था कि कोई इसे बिना कोई गलती किए वैसा ही लिख दे जैसा कि वे बोलते जाएँ। इसलिए ब्रह्मा जी के कहने पर व्यास गणेश जी के पास पहुँचे। गणेश जी लिखने को तैयार हो गये, किंतु उन्होंने एक शर्त रखी कि कलम एक बार उठा लेने के बाद काव्य समाप्त होने तक वे बीच में नहीं रुकेंगे। व्यासजी जानते थे कि यह शर्त बहुत कठनाईयाँ उत्पन्न कर सकती हैं, अत: उन्होंने भी अपनी चतुरता से एक शर्त रखी कि कोई भी श्लोक लिखने से पहले गणेश जी को उसका अर्थ समझना होगा। गणेश जी ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस तरह

व्यास जी बीच-बीच में कुछ कठिन श्लोकों को रच देते थे, तो जब गणेश उनके अर्थ पर विचार कर रहे होते, उतने समय में ही व्यास जी कुछ और नये श्लोक रच देते। इस प्रकार सम्पूर्ण महाभारत 3 वर्षों के अन्तराल में लिखी गयी। वेदव्यास जी ने सर्वप्रथम पुण्यकर्मा मानवों के उपाख्यानों सहित एक लाख श्लोकों का आद्य भारत ग्रंथ बनाया। तदन्तर उपाख्यानों को छोड़कर चौबीस हजार श्लोकों की भारत संहिता बनायी। तत्पश्चात व्यास जी ने साठ लाख श्लोकों की एक दूसरी संहिता बनायी, जिसके तीस लाख श्लोकों देवलोक में, पंद्रह लाख पितृलोक में तथा चौदह लाख श्लोक गन्धर्वलोक में समादृत हुए। मनुष्यलोक में एक लाख श्लोकों का आद्य भारत प्रतिष्ठित हुआ। महाभारत ग्रंथ की रचना पूर्ण करने के बाद वेदव्यास जी ने सर्वप्रथम अपने पुत्र शुकदेव को इस ग्रंथ का अध्ययन कराया तदन्तर अन्य शिष्यों वैशम्पायन, पैल, जैमिनि, असित-देवल आदि को इसका अध्ययन कराया। शुकदेव जी ने गन्धर्वों, यक्षों और राक्षसों को इसका अध्ययन कराया। देवर्षि नारद ने देवताओं को, असित-देवल ने पितरों को और वैशम्पायन जी ने मनुष्यों को इसका प्रवचन दिया। वैशम्पायन जी द्वारा महाभारत काव्य जनमेजय के यज्ञ समारोह में सूत सहित कई ऋषि-मुनियों को सुनाया गया था।

पृष्ठभूमि और इतिहास

महाभारत कालीन भारत का मानचित्र

महाभारत चंद्रवंशियों के दो परिवारों कौरव और पाण्डव के बीच हुए युद्ध का वृत्तांत है। 100 कौरव भाइयों और पाँच पाण्डव भाइयों के बीच भूमि के लिए जो संघर्ष चला उससे अंततः महाभारत युद्ध का सृजन हुआ। इस युद्ध की भारतीय और पश्चिमी विद्वानों द्वारा कई भिन्न-भिन्न निर्धारित की गयी तिथियाँ निम्नलिखित हैं-

विश्व विख्यात भारतीय गणितज्ञ एवं खगोलज्ञ वराहमिहिर के अनुसार महाभारत युद्ध 2449 ईसा पूर्व हुआ था।

विश्व विख्यात भारतीय गणितज्ञ एवं खगोलज्ञ आर्यभट्ट के अनुसार महाभारत युद्ध 18 फरवरी 3102 ईसा पूर्व में हुआ था।

चालुक्य राजवंश के सबसे महान सम्राट पुलकेसि 2 के 5वीं शताब्दी के ऐहोल अभिलेख में यह बताया गया है कि भारत युद्ध को हुए 3, 735 वर्ष बीत

गए हैं, इस दृष्टिकोण से महाभारत का युद्ध 3100 ईसा पूर्व लड़ा गया होगा।

पुराणों की माने तो यह युद्ध 1900 ईसा पूर्व हुआ था, पुराणों में दी गई विभिन्न राज वंशावली को यदि चन्द्रगुप्त मौर्य से मिला कर देखा जाये तो 1900 ईसा पूर्व की तिथि निकलती है, परन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य 1500 ईसा पूर्व में हुआ था, यदि यह माना जाये तो 3100 ईसा पूर्व की तिथि निकलती है, क्योंकि यूनान के राजदूत मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक 'इंडिका' में जिस चन्द्रगुप्त का उल्लेख किया था वह गुप्त वंश का राजा चन्द्रगुप्त भी हो सकता है।

अधिकतर पश्चिमी विद्वान जैसे–मायकल विटजल के अनुसार भारत युद्ध 1200 ईसा पूर्व में हुआ था, जो इसे भारत में लौह युग (1200–800 ईसा पूर्व) से जोड़कर देखते हैं।

अधिकतर भारतीय विद्वान जैसे–बी एन अचर, एन एस राजाराम, के सदानन्द, सुभाष काक ग्रह–नक्षत्रों की आकाशीय गणनाओं के आधार पर इसे 3067 ईसा पूर्व और कुछ यूरोपीय विद्वान जैसे–पी वी होले इसे 13 नवंबर 3143 ईसा पूर्व में आरम्भ हुआ मानते हैं।

भारतीय विद्वान पी. वी वारटक महाभारत में वर्णित ग्रह–नक्षत्रों की आकाशीय गणनाओं के आधार पर इसे 16 अक्टूबर 5561 ईसा पूर्व में आरम्भ हुआ मानते हैं। उनके अनुसार यूनान के राजदूत मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक 'इंडिका' में अपनी भारत यात्रा के समय जमुना (यमुना) के तट पर बसे मेथोरा (मथुरा) राज्य में शूरसेनियों से भेंट का वर्णन किया था, मेगस्थनीज ने यह बताया था कि ये शूरसेनी किसी हेराकल्स नामक देवता की पूजा करते थे और ये हेराकल्स काफी चमत्कारी पुरुष होता था तथा चन्द्रगुप्त से 138 पीढ़ी पहले था। हेराकल्स ने कई विवाह किए और कई पुत्र उत्पन्न किए। परन्तु उसके सभी पुत्र आपस में युद्ध करके मारे गये। यहाँ ये स्पष्ट है कि ये हेराकल्स श्रीकृष्ण ही थे, विद्वान इन्हें हरिकृष्ण कह कर श्रीकृष्ण से जोड़ते है, क्योंकि श्रीकृष्ण चन्द्रगुप्त से 138 पीढ़ी पहले थे तो यदि एक पीढ़ी को 20–30 वर्ष दे तो 3100–5600 ईसा पूर्व श्रीकृष्ण का जन्म समय निकलता है, अतः इस आधार पर महाभारत का युद्ध 5600–3100 ईसा पूर्व के समय हुआ होगा।

महाभारत की संक्षिप्त कथा

1. मुख्य उल्लेख:महाभारत की विस्तृत कथा।

2. कुरुवंश की उत्पत्ति और पाण्डु का राज्य अभिषेक।
3. कुरुक्षेत्र में कृष्ण और अर्जुन।

पुराणों के अनुसार ब्रह्मा जी से अत्रि, अत्रि से चन्द्रमा, चन्द्रमा से बुध और बुध से इला-नन्दन पुरूरवा का जन्म हुआ। उनसे आयु, आयु से राजा नहुष और नहुष से ययाति उत्पन्न हुए। ययाति से पुरू हुए। पुरू के वंश में भरत और भरत के कुल में राजा कुरु हुए। कुरु के वंश में शान्तनु हुए। शान्तनु से गंगानन्दन भीष्म उत्पन्न हुए। शान्तनु से सत्यवती के गर्भ से चित्रंगद और विचित्रवीर्य उत्पन्न हुए थे। चित्रंगद नाम वाले गन्धर्व के द्वारा मारे गये और राजा विचित्रवीर्य राजयक्ष्मा से ग्रस्त हो स्वर्गवासी हो गये। तब सत्यवती की आज्ञा से व्यासजी ने नियोग के द्वारा अम्बिका के गर्भ से धृतराष्ट्र और अम्बालिका के गर्भ से पाण्डु को उत्पन्न किया। धृतराष्ट्र ने गांधारी द्वारा सौ पुत्रों को जन्म दिया, जिनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था और पाण्डु के युधिष्टर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव आदि पांच पुत्र हुए। धृतराष्ट्र जन्म से ही नेत्रहीन थे, अतः उनकी जगह पर पाण्डु को राजा बनाया गया। एक बार वन में आखेट खेलते हुए पाण्डु के बाण से एक मैथुनरत मृगरुपधारी ऋषि की मृत्यु हो गयी। उस ऋषि से शापित हो कि 'अब जब कभी भी तू मैथुनरत होगा तो तेरी मृत्यु हो जायेगी', पाण्डु अत्यन्त दुःखी होकर अपनी रानियों सहित समस्त वासनाओं का त्याग करके तथा हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र को अपना का प्रतिनिधि बनाकर वन में रहने लगें।

पाण्डवों का जन्म तथा लाक्षागृह षडयंत्र

वार्णावत (वर्तमान बरनावा) स्थित लाक्षागृह के सुरक्षित अवशेष।

राजा पाण्डु के कहने पर कुन्ती ने दुर्वासा ऋषि के दिये मन्त्र से धर्म को आमन्त्रित कर उनसे युधिष्ठिर और कालान्तर में वायुदेव से भीम तथा इन्द्र से अर्जुन को उत्पन्न किया। कुन्ती से ही उस मन्त्र की दीक्षा ले माद्री ने अश्वनीकुमारों से नकुल तथा सहदेव को जन्म दिया। एक दिन राजा पाण्डु माद्री के साथ वन में सरिता के तट पर भ्रमण करते हुए पाण्डु के मन चंचल हो जाने से मैथुन में प्रवृत्त हुये, जिससे शापवश उनकी मृत्यु हो गई। माद्री उनके साथ सती हो गई किन्तु पुत्रों के पालन-पोषण के लिये कुन्ती हस्तिनापुर लौट आई। कुन्ती ने विवाह से पहले सूर्य के अंश से कर्ण को जन्म दिया और लोकलाज के भय से कर्ण को गंगा नदी में बहा दिया। धृतराष्ट्र के सारथी अधिरथ ने उसे बचाकर उसका पालन किया। कर्ण की रुचि युद्धकला में थी, अतः द्रोणाचार्य

के मना करने पर उसने परशुराम से शिक्षा प्राप्त की। शकुनि के छलकपट से दुर्योधन ने पाण्डवों को बचपन में कई बार मारने का प्रयत्न किया तथा युवावस्था में भी जब युधिष्ठिर को युवराज बना दिया गया तो लाक्ष के बने हुए घर लाक्षाग्रह में पाण्डवों को भेजकर उन्हें आग से जलाने का प्रयत्न किया, किन्तु विदुर की सहायता के कारण से वे उस जलते हुए गृह से बाहर निकल गये।

द्रौपदी स्वयंवर

अर्जुन द्वारा पांचाल सभा में मत्स्य भेदन

पाण्डव वहाँ से एकचक्रा नगरी गये और मुनि का वेष बनाकर एक ब्राह्मण के घर में निवास करने लगे, फिर व्यास जी के कहने पर वे पांचाल राज्य में गये, जहाँ द्रौपदी का स्वयंवर होनेवाला था। वहाँ एक के बाद एक सभी राजाओं एवं राजकुमारों ने मछली पर निशाना साधने का प्रयास किया, किन्तु सफलता हाथ न लगी। तत्पश्चात् अर्जुन ने तैलपात्र में प्रतिबिम्ब को देखते हुये एक ही बाण से मत्स्य को भेद डाला और द्रौपदी ने आगे बढ़ कर अर्जुन के गले में वरमाला डाल दीं। माता कुन्ती के वचनानुसार पाँचों पाण्डवों ने द्रौपदी को पत्नीरूप में प्राप्त किया। द्रौपदी के स्वयंवर के समय दुर्योधन के साथ ही साथ द्रुपद, धृष्टद्युम्न एवं अनेक अन्य लोगों को संदेह हो गया था कि वे पाँच ब्राह्मण पाण्डव ही हैं, अतः उनकी परीक्षा करने के लिये द्रुपद ने उन्हें अपने राजप्रासाद में बुलाया। राजप्रासाद में द्रुपद एवं धृष्टद्युम्न ने पहले राजकोष को दिखाया किन्तु पाण्डवों ने वहाँ रखे रत्नाभूषणों तथा रत्न-माणिक्य आदि में किसी प्रकार की रुचि नहीं दिखाई, किन्तु जब वे शस्त्रगार में गये तो वहाँ रखे अस्त्र-शस्त्रों में उन सभी ने बहुत अधिक रुचि दिखायी और अपनी पसंद के शस्त्रों को अपने पास रख लिया। उनके क्रिया-कलाप से द्रुपद को विश्वास हो गया कि ये ब्राह्मणों के रूप में पाण्डव ही हैं।

इन्द्रप्रस्थ की स्थापना

पाण्ड्व श्रीकृष्ण के साथ खाण्डववन में मय दानव तथा विश्वकर्मा द्वारा निर्मित इन्द्रप्रस्थ नगर को देखते हुए द्रौपदी स्वयंवर से पूर्व विदुर को छोड़कर सभी पाण्डवों को मृत समझने लगे और इस कारण धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को युवराज बना दिया। गृहयुद्ध के संकट से बचने के लिए युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र द्वारा

दिए खण्डहर स्वरुप खाण्डव वन को आधे राज्य के रूप में स्वीकार कर लिया। वहाँ अर्जुन ने श्रीकृष्ण के साथ मिलकर समस्त देवताओं को युद्ध में परास्त करते हुए खाण्डव वन को जला दिया और इन्द्र के द्वारा की हुई वृष्टि का अपने बाणों के छत्रकार बाँध से निवारण करके अग्नि देव को तृप्त किया। इसके फलस्वरुप अर्जुन ने अग्निदेव से दिव्य गाण्डीव धनुष और उत्तम रथ तथा श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र प्राप्त किया। इन्द्र अपने पुत्र अर्जुन की वीरता देखकर अतिप्रसन्न हुए। उन्होंने खांडवप्रस्थ के वनों को हटा दिया। उसके उपरांत पाण्डवों ने श्रीकृष्ण के साथ मय दानव की सहायता से उस शहर का सौन्दर्यीकरण किया। वह शहर एक द्वितीय स्वर्ग के समान हो गया। इन्द्र के कहने पर देव शिल्पी विश्वकर्मा और मय दानव ने मिलकर खाण्डव वन को इन्द्रपुरी जितने भव्य नगर में निर्मित कर दिया, जिसे इन्द्रप्रस्थ नाम दिया गया।

द्रौपदी का अपमान और पाण्डवों का वनवास

कुरु सभा में अपमानित हुई द्रौपदी

पाण्डवों ने सम्पूर्ण दिशाओं पर विजय पाते हुए प्रचुर सुवर्णराशि से परिपूर्ण राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया। उनका वैभव दुर्योधन के लिये असह्य हो गया अतः शकुनि, कर्ण और दुर्योधन आदि ने युधिष्ठिर के साथ जूए में प्रवृत्त होकर उसके भाइयों, द्रौपदी और उनके राज्य को कपट द्यूत के द्वारा हँसते-हँसते जीत लिया और कुरु राज्य सभा में द्रौपदी को निर्वस्त्र करने का प्रयास किया, परन्तु गांधारी ने आकर ऐसा होने से रोक दिया। धृतराष्ट्र ने एक बार फिर दुर्योधन की प्रेरणा से उन्हें से जुआ खेलने की आज्ञा दी। यह तय हुआ कि एक ही दांव में जो भी पक्ष हार जाएगा, वे मृगचर्म धारण कर बारह वर्ष वनवास करेंगे और एक वर्ष अज्ञातवास में रहेंगे। उस एक वर्ष में भी यदि उन्हें पहचान लिया गया तो फिर से बारह वर्ष का वनवास भोगना होगा। इस प्रकार पुन जूए में परास्त होकर युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित वन में चले गये। वहाँ बारहवाँ वर्ष बीतने पर एक वर्ष के अज्ञातवास के लिए वे विराट नगर में गये, जब कौरव विराट की गौओं को हरकर ले जाने लगे, तब उन्हें अर्जुन ने परास्त किया। उस समय कौरवों ने पाण्डवों को पहचान लिया था, परन्तु उनका का अज्ञातवास तब तक पूरा हो चुका था। परन्तु 12 वर्षो के ज्ञात और एक वर्ष के अज्ञातवास पूरा करने के बाद भी कौरवों ने पाण्डवों को उनका राज्य देने से मना कर दिया।

शांतिदूत श्रीकृष्ण, युद्ध आरंभ तथा गीता-उपदेश

श्रीकृष्ण का विराट रुप

धर्मराज युधिष्ठिर सात अक्षौहिणी सेना के स्वामी होकर कौरवों के साथ युद्ध करने को तैयार हुए। पहले भगवान श्रीकृष्ण दुर्योधन के पास दूत बनकर गये। उन्होंने ग्यारह अक्षौहिणी सेना के स्वामी राजा दुर्योधन से कहा कि तुम युधिष्ठिर को आधा राज्य दे दो या केवल पाँच ही गाँव अर्पित कर युद्ध टाल दो।

श्रीकृष्ण की बात सुनकर दुर्योधन ने पाण्डवों को सुई की नोक के बराबर भूमि भी देने से मना कर युद्ध करने का निश्चय किया। ऐसा कहकर वह भगवान श्रीकृष्ण को बंदी बनाने के लिये उद्यत हो गया। उस समय राजसभा में भगवान श्रीकृष्ण ने माया से अपने परम दुर्धर्ष विश्वरूप का दर्शन कराकर सबको भयभीत कर दिया। तदनन्तर वे युधिष्ठिर के पास लौट गये और बोले कि दुर्योधन के साथ युद्ध करो। युधिष्ठिर और दुर्योधन की सेनाएँ कुरुक्षेत्र के मैदान में जा डटीं। अपने विपक्ष में पितामह भीष्म तथा आचार्य द्रोण आदि गुरुजनों को देखकर अर्जुन युद्ध से विरत हो गये।

तब भगवान श्रीकृष्ण ने उनसे कहा-पार्थ! भीष्म आदि गुरुजन शोक के योग्य नहीं हैं। मनुष्य का शरीर विनाशशील है, किंतु आत्मा का कभी नाश नहीं होता। यह आत्मा ही पारब्रह्म है। 'मैं ब्रह्म हूँ'- इस प्रकार तुम उस आत्मा का अस्तित्त्व समझो। कार्य की सिद्धि और असिद्धि में समानभाव से रहकर कर्मयोग का आश्रय ले क्षात्रधर्म का पालन करो। इस प्रकार श्रीकृष्ण के ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग के बारे में विस्तार से कहने पर अर्जुन ने फिर से रथारूढ़ हो युद्ध के लिये शंखध्वनि की।

दुर्योधन की सेना में सबसे पहले पितामह भीष्म सेनापति हुए। पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न, थे। इन दोनों में भारी युद्ध छिड़ गया। भीष्मसहित कौरव पक्ष के योद्धा उस युद्ध में पाण्डव-पक्ष के सैनिकों पर प्रहार करने लगे और शिखण्डी आदि पाण्डव- पक्ष के वीर कौरव-सैनिकों को अपने बाणों का निशाना बनाने लगे। कौरव और पाण्डव-सेना का वह युद्ध, देवासुर-संग्राम के समान जान पड़ता था। आकाश में खड़े होकर देखने वाले देवताओं को वह युद्ध बड़ा आनन्ददायक प्रतीत हो रहा था। भीष्म ने दस दिनों तक युद्ध करके पाण्डवों की अधिकांश सेना को अपने बाणों से मार गिराया।

भीष्म और द्रोण वध

बाणो की शय्या पर लेटे भीष्म

भीष्म ने दस दिनों तक युद्ध करके पाण्डवों की अधिकांश सेना को अपने बाणों से मार गिराया। भीष्म की मृत्यु उनकी इच्छा के अधीन थी। श्रीकृष्ण के सुझाव पर पाण्डवों ने भीष्म से ही उनकी मृत्यु का उपाय पूछा। भीष्म ने कहा कि पांडव शिखंडी को सामने करके युद्ध लड़े। भीष्म उसे कन्या ही मानते थे और उसे सामने पाकर वे शस्त्र नहीं चलाने वाले थे। और शिखंडी को अपने पूर्व जन्म के अपमान का बदला भी लेना था उसके लिये शिवजी से वरदान भी लिया कि भीष्म कि मृत्यु का कारण बनेगी। 10वे दिन के युद्ध में अर्जुन ने शिखंडी को आगे अपने रथ पर बिठाया और शिखंडी को सामने देख कर भीष्म ने अपना धनुष त्याग दिया और अर्जुन ने अपनी बाणवृष्टि से उन्हें बाणों कि शय्या पर सुला दिया। तब आचार्य द्रोण ने सेनापतित्त्व का भार ग्रहण किया। फिर से दोनों पक्षो में बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। विराट और द्रुपद आदि राजा द्रोणरूपी समुद्र में डूब गये थे। लेकिन जब पाण्डवो ने छ्ल से द्रोण को यह विश्वास दिला दिया कि अश्वत्थामा मारा गया तो आचार्य द्रोण ने निराश हो अस्त्र-शस्त्र त्यागकर उसके बाद योग समाधि ले कर अपना शरीर त्याग दिया। ऐसे समय में धृष्टद्युम्न ने योग समाधि लिए द्रोण का मस्तक तलवार से काट कर भूमि पर गिरा दिया।

कर्ण और शल्य वध

कर्ण और अर्जुन का युद्ध

द्रोण वध के पश्चात कर्ण कौरव सेना का कर्णधार हुआ। कर्ण और अर्जुन में भाँति-भाँति के अस्त्र-शस्त्रों से युक्त महाभयानक युद्ध हुआ, जो देवासुर-संग्राम को भी मात करने वाला था। कर्ण और अर्जुन के संग्राम में कर्ण ने अपने बाणों से शत्रु-पक्ष के बहुत-से वीरों का संहार कर डाला। यद्यपि युद्ध गतिरोधपूर्ण हो रहा था, लेकिन कर्ण तब उलझ गया, जब उसके रथ का एक पहिया धरती में धँस गया। गुरु परशुराम के शाप के कारण वह अपने को दैवीय अस्त्रों के प्रयोग में भी असमर्थ पाकर रथ के पहिए को निकालने के लिए नीचे उतरता है। तब श्रीकृष्ण, अर्जुन को उसके द्वारा किये अभिमन्यु वध, कुरु सभा में द्रोपदी को वेश्या और उसकी कर्ण वध करने की प्रतिज्ञा याद दिलाकर उसे मारने को कहते

है, तब अर्जुन ने एक दैवीय अस्त्र से कर्ण का सिर धड़ से अलग कर दिया। तदनन्तर राजा शल्य कौरव-सेना के सेनापति हुए, किंतु वे युद्ध में आधे दिन तक ही टिक सके। दोपहर होते-होते राजा युधिष्ठिर ने उन्हें मार दिया।

भीमसेन द्वारा दुर्योधन का वध

दुर्योधन वध और महाभारत युद्ध की समाप्ति

दुर्योधन की सारी सेना के मारे जाने पर अन्त में उसका भीमसेन के साथ गदा युद्ध हुआ। भीम ने छ्ल से उसकी जांघ पर प्रहार करके उसे मार डाला। इसका प्रतिशोध लेने के लिये अश्वत्थामा ने रात्रि में पाण्डवों की एक अक्षौहिणी सेना, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों, उसके पांचालदेशीय बन्धुओं तथा धृष्टद्युम्न को सदा के लिये सुला दिया। तब अर्जुन ने अश्वत्थामा को परास्त करके उसके मस्तक की मणि निकाल ली। फिर अश्वत्थामा ने उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। उसका गर्भ उसके अस्त्र से प्रायः दग्ध हो गया था, किंतु भगवान श्रीकृष्ण ने उसको पुनः जीवन-दान दिया। उत्तरा का वही गर्भस्थ शिशु आगे चलकर राजा परीक्षित के नाम से विख्यात हुआ। इस युद्ध के अंत में कृतवर्मा, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा तीन कौरवपक्षिय और पाँच पाण्डव, सात्यकि तथा श्रीकृष्ण ये सात पाण्डवपक्षिय वीर जीवित बचे। तत्पश्चात् युधिष्ठिर राजसिंहासन पर आसीन हुए।

यदुकुल का संहार और पाण्डवों का महाप्रस्थान

ब्राह्मणों और गांधारी के शाप के कारण यादवकुल का संहार हो गया। बलभद्रजी योग से अपना शरीर त्याग कर शेषनाग स्वरुप होकर समुद्र में चले गये। भगवान कृष्ण के सभी प्रपौत्र एक दिन महामुनियों की शक्ति देखने के लिये एक को स्त्री बनाकर मुनियों के पास गए और पूछा कि हे मुनिश्रेष्ठ! यह महिला गर्भ से है, हमें बताएं कि इसके गर्भ से किसका जन्म होगा? मुनियों को ज्ञात हुआ कि यह बालक उनसे क्रिडा करते हुए एक पुरुष को महिला बना, उनके पास लाए हैं। मुनियों ने कृष्ण के प्रपौत्रों को श्रापा कि इस मानव के गर्भ से एक मूसल लिकलेगा, जिससे तुम्हारे वंश का अंत होगा। कृष्ण के प्रपौत्रों नें उस मूसल को पत्थर पर रगड़ कर चूरा बना नदी में बहा दिया तथा उसके नोक को फेंक दिया। उस चूर्ण से उत्पन्न वृक्ष की पत्तियों से सभी कृष्ण के प्रपौत्र मृत्यु को प्राप्त किये। यह देख श्रीकृष्ण भी एक पेड़ के नीचे ध्यान लगाकर बेठ गये। 'जरा' नाम के

एक व्याध (शिकारी) ने अपने बाण की नोक पर मूसल का नोक लगा दिया तथा भगवान कृष्ण के चरणकमल को मृग समझकर उस बाण से प्रहार किया। उस बाण द्वारा कृष्ण के पैर का चुम्बन उनके परमधाम गमन का कारण बना। प्रभु अपने संपूर्ण शरीर के साथ गोलोक प्रस्थान किये। इसके बाद समुद्र ने द्वारकापुरी को अपने जल में डुबा दिया। तदनन्तर द्वारका से लौटे हुए अर्जुन के मुख से यादवों के संहार का समाचार सुनकर युधिष्ठिर ने संसार की अनित्यता का विचार करके परीक्षित को राजासन पर बिठाया और द्रौपदी तथा भाइयों को साथ ले हिमालय की तरफ महाप्रस्थान के पथ पर अग्रसर हुए। उस महापथ में युधिष्ठिर को छोड़ सभी एक-एक करके गिर पड़े। अन्त में युधिष्ठिर इन्द्र के रथ पर आरूढ़ हो (दिव्य रूप धारी) भाइयों सहित स्वर्ग को चले गये।

बुद्धचरित

बुद्धचरितम्, संस्कृत का महाकाव्य है। इसके रचयिता अश्वघोष हैं। इसकी रचनाकाल दूसरी शताब्दी है। इसमें गौतम बुद्ध का जीवनचरित वर्णित है। इस महाकाव्य का आरम्भ बुद्ध के गर्भाधान से तथा इसकी परिणति बुद्धत्व-प्राप्ति में होती है। यह महाकव्य भगवान बुद्ध के संघर्षमय सफल जीवन का ज्वलन्त, उज्ज्वल तथा मूर्त चित्रपट है। इसकी कथा का रूप-विन्यास वाल्मीकिकृत रामायण से मिलता-जुलता है।

सन् 420 में धर्मरक्षा ने इसका चीनी भाषा में अनुवाद किया तथा 7वीं एवं 8वीं शती में इसका अत्यन्त शुद्ध तिब्बती अनुवाद किया गया। दुर्भाग्यवश यह महाकाव्य मूल रूप में अपूर्ण ही उपलब्ध है। 28 सर्गों में विरचित इस महाकाव्य के द्वितीय से लेकर त्रयोदश सर्ग तक तथा प्रथम एवं चतुर्दश सर्ग के कुछ अंश ही मिलते हैं। इस महाकाव्य के शेष सर्ग संस्कृत में उपलब्ध नहीं है। इस महाकाव्य के पूरे 28 सर्गों का चीनी तथा तिब्बती अनुवाद अवश्य उपलब्ध है। इसका चीनी भाषा में अनुवाद पांचवीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'धर्मरक्ष', 'धर्मक्षेत्र' अथवा 'धर्माक्षर' नामक किसी भारतीय विद्वान ने ही किया था तथा तिब्बती अनुवाद 9वीं शताब्दी से पूर्ववर्ती नहीं है।

कथास्त्रोत

बुद्धचरित का कथानक, प्रख्यात कोटि का कथानक है। बुद्ध के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक घटनाओं का श्रवण एवं पठन यत्र-तत्र आज भी

पाया जाता है। बुद्धचरित महाकाव्य का कथानक किस निश्चित स्रोत से लिया गया है, इस प्रश्न का उत्तर पूर्णतः निश्चित नहीं है। बील के अनुसार अश्वघोष के इस काव्य का आधार महापरिनिर्वाणसूत्र था। मैक्समूलर के अनुसर भी बुद्धचरित के कथानक का स्रोत महापरिनिर्वाणसूत्र ही है, किन्तु कीथ के अनुसार बुद्धचरित का आधार ग्रन्थ बुद्ध के प्रति भक्तिभावना से युक्त हीनयान सम्प्रदाय से सम्बन्धित 'ललितविस्तर' नामक ग्रन्थ है।

वस्तुतः बुद्धचरित की कथावस्तु महावस्तु, ललितविस्तर, निदानकथा तथा जातक कथाओं से अत्यधिक साम्य प्राप्त करती है, किसी एक ग्रन्थ से नहीं।

बुद्धचरित के सर्ग

बुद्धचरित 28 सर्गों में था जिसमें 14 सर्गों तक बुद्ध के जन्म से बुद्धत्व-प्राप्ति तक का वर्णन है, किन्तु बुद्धचरितम् मूल रूप में अपूर्ण ही उपलब्ध है। 28 सर्गों में विरचित इस महाकाव्य के दूसरे सर्ग से लेकर तेरहवें सर्ग तक पूर्ण रूप से तथा पहला एवं चौदहवाँ सर्ग के कुछ अंश ही मिलते हैं। प्रथम सर्ग के प्रारम्भ के सात श्लोक और चतुर्दश सर्ग के बत्तीस से एक सौ बारह तक (81 श्लोक) मूल में नहीं मिलते हैं। चौखम्बा संस्कृत सीरीज तथा चौखम्बा विद्याभवन की प्रेरणा से उन श्लोकों की रचना श्री रामचन्द्रदास ने की है। उन्हीं की प्रेरणा से इस अंश का अनुवाद भी किया गया है। इस महाकाव्य के शेष सर्ग संस्कृत में उपलब्ध नहीं है।

15 से 28 सर्गों की मूल संस्कृत प्रति भारत में बहुत दिनों से अनुपलब्ध है। उसका अनुवाद तिब्बती भाषा में मिला था। उसके आधार पर किसी चीनी विद्वान ने चीनी भाषा में अनुवाद किया तथा आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से संस्कृत अध्यापक डाक्टर जॉन्सटन ने उसे अंग्रेजी में लिखा। इसका अनुवाद श्रीसूर्यनारायण चौधरी ने हिन्दी में किया है, जिसको श्री रामचन्द्रदास ने संस्कृतपद्यमय काव्य में परिणत किया है।

बुद्धचरित के 28 सर्गों में भगवत्प्रसूति, संवेगोत्पत्ति, अभिनिष्क्रमण, तपोवन प्रवेश, अंतःपुर विलाप, कुमारान्वेषणम्, श्रेणभिगमनम्, बुद्धत्वप्राप्ति, महाशिष्याणा प्रव्रज्या प्रमुख हैं। प्रथम तेरह सर्गों के नाम इस प्रकार हैं-

1. भगवत्प्रसूति,
2. अन्तःपुरविहार
3. संवेगोत्पत्तिः

4. स्त्रीविघातन
5. अभिनिष्क्रमण
6. छन्दकनिवर्तनम्
7. तपोवनप्रवेशम्
8. अन्तःपुरविलाप
9. कुमारान्वेषणम्
10. श्रेणभिगमनम्
11. कामविगर्हणम्
12. आराडदर्शन
13. मारविजय
14. बुद्धचरित की कथावस्तु
15. प्रथम सर्ग

'भगवत्प्रसूतिः' नामक इस सर्ग की महत्वपूर्ण कथा बुद्ध के जन्म की है, जिसमें बताया गया है कि इक्ष्वाकुवंश रूपी समुद्र में शुद्धोदन नाम का शाक्यों में एक राजा हुआ, उसकी पत्नी का नाम माया था। रानी ने लोककल्याण के लिए गर्भधारण किया। गर्भधारण के बाद रानी ने स्वप्न में अपने अन्दर एक सफेद हाथी प्रवेश करते देखा। एक दिन रानी ने नन्दन वन सदृश लुम्बिनी वन में जाने की इच्छा की। राजा रानी को लुम्बिनी वन में ले गया, वहां पुष्य नक्षत्र के आने पर एक बालक का जन्म हुआ। जन्म होते ही वह बालक सप्तर्षि तारा की तरह सात पग चला तथा गम्भीर स्वर में बोला- विश्वकल्याण के लिए एवं ज्ञान प्राप्ति के लिए मैंने यह जन्म ग्रहण किया है, संसार में यह मेरा अन्तिम जन्म है। (बोधाय जातोऽस्मि जगद्वितार्थमन्त्या भवोत्पत्तिरियं मामेति। -- बुद्धचरित 1/15)। ब्राह्मणों ने उस बालक के सम्बन्ध में विचार किया तथा राजा से कहा, 'हे राजन! यह आपका पुत्र शुभ लक्षणों से युक्त है, यह समय आने पर गुणों का निधान होगा और बुद्धों में ऋषि होगा अथवा अत्यन्त राज्य श्री प्राप्त करेगा (दीपप्रभोऽयं कनकोज्जवलाङ्ग, सुलक्षणैर्यस्तु समन्वितोऽस्ति। निधिर्गुणानां समये स मन्ता बुद्धर्षिभावं परमां प्रियं वाघ-- बु0च0 1-34)। जिस प्रकार धातुओं में शुद्ध स्वर्ण, पर्वत में सुमेरु, जलाशयों में समुद्र, ताराओं में चन्द्रमा तथा अग्नियों में सूर्य श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार मनुष्यों में आपका पुत्र श्रेष्ठ है।

यथा हिरण्यं शुचि धातुमध्ये मेरुगिरीणां सरस समुद्रः।

तारासु चन्द्रस्तपतां च सूर्यः पुत्रस्तथा ते द्विपदेषु वर्थः।। (बुद्धचरित 1-37)

तब राजा को आश्चर्य हुआ कि ब्राह्मणों द्वारा कथित ये गुण इसमें कैसे आयेंगे, जो पूर्वजों में नहीं थे, तब ब्राह्मणों ने बहुत दृष्टान्त देकर बताया कि ऐसे बहुत व्यक्ति हैं, जो अपने से पूर्व किसी ने नहीं किया वे उन लोगों ने कर दिया। उन्होने वाल्मीकि, जनकादि का उदाहरण दिया और कहा कि न तो अवस्था ही प्रमाण होती है और न वंश ही। संसार में कोई भी कहीं भी श्रेष्ठता प्राप्त कर सकता है, क्योंकि राजाओं एवं ऋषियों के पुत्रों ने वे कर्म किये जो उनके पूर्वजों ने नहीं किया।

तस्मात् प्रमाणं न वयो न वंशः न कश्चित् क्वचिन्ह श्रेष्ठ्यमुपैतिलोके।
राज्ञामृषीणां च हि तानि तानि कृतानि पुत्रैरकृतानि पूर्वैः।। (बुद्धचरित 1-46)

इसके बाद राजा ने ब्राह्मणों को प्रसन्नतापूर्वक, सत्कारपूर्वक धन दिया, इस उद्देश्य से कि वह (बालक) राजा होवे और वृद्धावस्था को ही बन को जाय। तदन्तर महर्षि असित, तपोबल से जन्मान्तकर का जन्म हुआ, ऐसा जानकर सद्धर्म की जिज्ञासा से शाक्यराज के घर आये। राजा ने आसन पर बैठाकर पाद्यार्ध्य से उनकी पूजा की। महर्षि असित अपने आने का प्रयोजन बताया, 'मैं आपके पूत्र का दर्शन करने आया हूँ, मार्ग में ही मैने सुना कि बुद्धत्व प्राप्ति के लिए आपका पुत्र उत्पन्न हुआ है।' राजा ने धाई की गोद से बालक को महर्षि की गोद में दे दिया। महर्षि ने आश्चर्य से देखा कि उसके पैरों में चक्र के चिन्ह थे, अंगुलियों, हाथों एवं पैरों में रेखाओं का जाल विछा हुआ था, भौहें बालों से युक्त थीं एवं अण्डकोश हाथी के समान सूक्ष्म थे।

चक्राङ्कपादं स ततो महर्षिर्जालावनद्धानुलिपाणिपादम्।
सोर्णभ्रूवं वारणवस्तिकोशं सविस्मयं राजसुतं ददर्श। (बुद्धचरित 1-60)

इसके बाद महर्षि असित ने राजा से उनके पुत्र के विषय में बहुत सारी बातें बताया कि आपका पुत्र अत्यन्त विलक्षण गुण वाला है और यह धर्म का राजा होगा, एवं बुद्धत्व प्राप्त करके मोहपाश से बँधे हुए दुःख से पीड़ित जगत् का बन्धन खोलेगा। इस प्रकार महर्षि असित पुत्रसम्बन्धी नियत बात बताकर आकाश मार्ग से जैसे–आये थे, वैसे ही चले गये।

राजा ने अपने राज्य के सभी कैदियों को छोड़ दिया। पुत्र का जातक आदि संस्कार करवाया। पुत्र के मंगल के लिए जप, होम, दान आदि मांगलिक कृत्य किया और उसके बाद मंगल शुभ मुहूर्त आने पर वहां से राज्य में प्रवेश किया।

द्वितीय सर्ग

'अन्तःपुरविहार' नामक इस सर्ग में बताया गया है कि उस पुत्र के जन्म से उस शाक्यराज के राज्य में सारी सम्पत्तियाँ अनायास प्राप्त होने लगीं। वह राजा प्रतिदिन धन-धान्य, हॉथी-घोड़ों से इस प्रकार बढ़ने लगा, जिस प्रकार जल के प्रवाह से नदी बढ़ती है।

उसके राज्य में केवल सन्यासियों ने ही भिक्षावृत्ति की, अन्य किसी ने नहीं किया। उसका राज्य चोर और शत्रुओं से रहित था। सूर्यपुत्र मनु के राज्य की तरह उसके राज्य में उस बालक के जन्म से हर्ष का संचार हुआ, पाप का नाश हुआ, धर्म प्रज्वलित हुआ, कलुषता मिट गयी।

बालक के जन्म के कारण राजकुल की ऐसी सर्वार्थसिद्धि हुई कि राजा ने उसका नाम 'सर्वाथसिद्ध' रखा। उस बालक की माता माया देवी अपने पुत्र का देवर्षि सदृश विशाल प्रभाव देखकर उत्पन्न हर्ष को न सम्भाल सकी, अतः निवास के लिए स्वर्ग चली गयीं। तब माता के सदृश मौसी ने विशेष प्यार एवं भाव से सगे की भाँति उस देवतुल्य बालक का पालन-पोषण किया।

वह बालक शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह क्रमशः बढ़ने लगा। उस बालक ने बाल्यावस्था को बिताकर उचित समय में उपनयनादि संस्कार से विधिवत सुसंस्कृत होकर बहुत वर्षों में सीखी जाने वाली अपने कुल के अनुसार विद्या थोड़े ही दिनों में सीख ली।

वयश्च कौमारमतीत्य सम्यक् सम्प्राप्य काले प्रतिपत्तिकर्म।
अल्पैरहोभिर्बहुवर्षगम्या जग्राह विद्याः स्वकुलानुरूपाः॥ (बुद्धचरितम् 2-24)

इसके बाद राजा ने विषयों में उसकी आसक्ति उत्पन्न करने की इच्छा से उसका विवाह यशोधरा नाम की कन्या से सम्पन्न करा दिया, ताकि बालक वन को न जावे। मन को क्षुभित करने वाला कोई प्रतिकूल दृश्य यह बालक किसी तरह न देख सके, ऐसा विचार कर वह राजा उस कुमार के लिए महल के अन्दर रहने की ही आज्ञा देता था, बाहर घुमने की नहीं। इस प्रकार वह कुमार महलों में ही स्त्रियों के मनोरम तूर्य, वीणा आदि नाद के बीच विहार करने लगा। अनेक सुन्दर युवतियों ने अपने कटाक्ष एवं भूविलास से उसको रमाने का प्रयास किया। राजा ने उस कुमार की दीर्घायु के लिए अग्नि में आहुति एवं ब्राह्मणों को गाय, स्वर्ण इत्यादि दान दिया।

उत्तम गुण वाली यशोधरा ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम राहु के समान मुख होने के कारण राहुल रखा गया। अब राजा को अपने वंश के विस्तार का पूर्ण विश्वास हुआ तथा जिस प्रकार पुत्र जन्म से प्रसन्ता हुयी थी, उसी प्रकार पौत्र जन्म से भी हुयी।

'मेरे ही समान मेरे पुत्र को भी अपने पुत्र में प्रेम होवें', इस प्रसन्नता से उस राजा ने यथासमय तत् तत् धर्म का आचरण किया। सत्पुरुषों द्वारा सेवित एवं वेदप्रतिपादित विविध धर्मो का सेवन किया, एवं पुत्र का मुख देखकर यह प्रार्थना की कि मेरा पुत्र किसी भी प्रकार वन न जाये।

तृतीय सर्ग

'संवेगउत्पत्तिः' नामक इस सर्ग में महात्मा बुद्ध के मन में विभिन्न कारणों से वैराग्य उत्पन्न होने की चर्चा की गयी है। बताया गया है कि किसी समय सिद्धार्थ ने वन के विषय में सुना कि कोमल तृणों से सम्पन्न है और वहाँ के वृक्ष कोयलों के विवाद से विवादित हैं तथा कमलों के तालाबों से सुशोभित गीत से निबद्ध हैं। इस प्रकार जब सिद्धार्थ ने स्त्रियों के प्रिय नगर के उद्यानों की सुन्दरता सुनी तब राजकुमार ने बाहर जाने की इच्छा की। राजकुमार के मनोगत भाव को जानकर राजा ने वनविहारयात्रा की आज्ञा दे दी। राजकुमार के मन में रोगादि से पीड़ित व्यक्तियों को देखकर संवेग न उत्पन्न हो जाय, अतः ऐसे लोगों का मार्गों में आवागमन रोक दिया गया। कर्मचारियों ने राजपथ से अङ्गहीनों, इन्द्रियहीनों, वृद्धों, रोगियों एवं गरीब जनों को परम शान्ति से हटाकर मार्ग को बहुत सजाया।

प्रत्यङ्गहीनान्विकलेन्द्रियांश्च जीर्णातुरादीन् कृपणांश्च दिक्षु।
ततः समुत्सार्य परेण सान्न! शोभां परां राजपथस्य चक्रुः॥ (बुद्धचरित 3-5)

राजपथ के सज जाने पर राजा से आज्ञा लेकर राजकुमार स्वर्ण के आभूषणों से अलङ्कृत, चार अश्वों से संयुक्त, कुशल सारथी वाले सुवर्णमय रथ पर सवार हुए। नगर के लोगों ने उसका अभिनन्दन किया। स्त्रियाँ उसको देखने की इच्छा से अटारियों पर चढ़ गयीं।

राजमार्ग पर जाते समय राजकुमार को वन में जाने के लिए प्रेरित करने हेतु शुद्धाधिवास देवयोनि विशेषों ने एक वृद्ध पुरूष का निर्माण किया। तब राजकुमार ने जर्जर से उस व्यक्ति को देखकर स्तब्ध होते हुए सारथी से कहा–

हे सूत! यह कौन मनुष्य आया है। सफेद केशों से युक्त, हाँथों में लाठी पकड़े हुए, भौहों से आँखे ढंकी हैं, शिथिलता के कारण शरीर झुका है। क्या यह विकार है अथवा स्वभाव या अनायास ऐसा हो गया है?

क ऐष भो सूत नरोऽभ्युपेतः केशैः सितैर्यष्टिविषक्तहस्तः।
भूसंवृताक्षः शिथिलानताङ्गः किं विक्रियैषा प्रकृतिर्यदृच्छा॥ (बुद्धचरित 3-28)

इस प्रकार बुद्ध के द्वारा पूछे जाने पर देवताओं के प्रभाव से बुद्धिमोह को प्राप्त उस सारथी ने बिना कुछ छिपाये उस अवस्था के विषय में सब कुछ बता दिया। सारथी ने कहा, 'रूप को नष्ट करने वाली, बल के लिए विपत्ति स्वरूप, शोक की जननी, आनन्द का निधन, स्मृति का नाश एवं इन्द्रियों का शत्रु यह जरावस्था है, जिसने इसे तोड़ डाला है।

ऐसा कहे जाने पर राजकुमार ने सारथी से पूछा क्या यह मुझे भी दोष होगा? तब सारथी ने कहा, 'आयुष्मन! यह किसी को नहीं छोड़ती, अतः आपको भी अवश्यम्भावी है'। इस प्रकार सुनकर वह कुमार उद्विनग्मन हो सारथी से रथ लौटाने को कहा। सारथी ने रथ लौटाया और महल में प्रवेश किया। 'जरा-जरा' का चिन्तन करते हुए जब राजकुमार को शान्ति नहीं आयी तब राजा की आज्ञा से दूसरी बार भी पुनः उसी क्रम से बाहर गया। अनन्तर व्याधिग्रस्त दूसरे मनुष्य का भी मार्ग में उसी देवों ने निर्माण किया। तब राजकुमार ने फिर सारथी से पूछा कि दूसरे का आश्रय लेकर दुःखित स्वर में जो माँ-माँ चिल्ला रहा है यह कौन है? तब सारथी ने बताया कि हे सौम्य! रसादि धातु के प्रकोप से बढ़ा हुआ रोग नामक यह महान अनर्थ है, जिसने इस समर्थ को भी पराधीन कर दिया है।

ततोऽब्रवीत्सारथिरस्य सौम्य धातुप्रकोपप्रभवः प्रवृद्धः।
रोगाभिधानः येमहाननर्थः शक्तोऽपि पेनैष कृतोऽस्वतन्त्रः॥ (बुद्धचरित 3-421)

तदनन्तर राजकुमार के द्वारा पूछे जाने पर कि यह रोग इसी को हुआ है या सबको होता है, सारथी ने कहा कि यह रोग सबको होता है। इस प्रकार के सारथी के वचन को सुनकर उद्विग्नमन राजकुमार ने फिर रथ लौटाने को कहा और रथ लौटकर महल में प्रवेश किया। राजकुमार के लौटने पर राजा का मन बहुत दुःखित हुआ कि कहीं यह पुत्र मुझे छोड़ न दे।

राजा ने पुनः सारथी एवं रथ का परिवर्तन कर राजमार्ग को सजवा कर सुदृढ़ व्यवस्था कराकर भली प्रकार से मार्ग का परीक्षण कर बाहर भेजा। फिर

उन्हीं शुद्धाधिवास देवों ने एक मृतक का निर्माण किया। उस मृतक को मार्ग में जाते हुए केवल राजकुमार एवं सारथी ने देखा, अन्य कोई नहीं। तब राजकुमार ने सारथि से पूछा कि चार पुरुषों से ढोया जा रहा यह कौन है? राजकुमार के पूछने पर देवों के द्वारा अभिभूत चित्त वाले सारथी ने न कहने योग्य यह बात भी राजकुमार से कह दी कि बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण और गुणों से वियुक्त यह चेतन रहित तृण या लकड़ी के समान कोई सदा के लिए सो गया है, अभी तक प्रेमी स्वजनों ने इसे पाला-पोसा, अब छोड़ रहे हैं। राजकुमार ने रथवाहक का यह वचन सुनकर फिर पूछा कि यह सबको होता है या इसी का 'धर्म' है, तब सारथी ने बताया कि सब प्राणियों का यही अन्तिम कर्म है। उत्तम, मध्यम, नीच कोई भी हो, विनाश सबका निश्चित है।

ततः प्रणेतावदति स्म तस्मै सर्वप्रजानामिदमन्तकर्म।
हीनस्य मध्यस्य महात्मनो वा सर्वस्य लोके नियतो विनाशः॥
(बुद्धचरित 3-59)

इस प्रकार सारथी के कहने पर राजकुमार ने गम्भीर स्वर से बोला, 'प्राणियों की यह मृत्यु निश्चित है, किन्तु भय को छोड़कर लोग भूल कर रहे हैं। मैं समझता हूँ कि मनुष्यों का मन कठिन है, जो इस प्रकार मृत्यु पथ पर चलते हुए भी सुखी हैं। अतः हे सुत! यह विहार करने का समय उपयुक्त नहीं, रथ लौटाओ। विनाश को जानता हुआ भी बुद्धिमान विपत्ति काल में विभोर कैसे रह सकता है? इस प्रकार राजकुमार के कहने पर भी सूत ने रथ नहीं लौटाया और राजा की आज्ञा से विशेष सुन्दरता से युक्त नन्दनवन के सामन राजकुमार को पभषण्ड नामक बन को ले गया।

चतुर्थ सर्ग

नगर की स्त्रियाँ नगर उद्यान से बाहर निकलकर उस राजपुत्र के पास आयीं और कमल सदृश करों से स्वागत कीं। यद्यपि वे स्त्रियां उस राजकुमार को रागाभिमुख करने के उद्देश्य से वहाँ आयीं थीं, किन्तु उसके प्रभाव से निरूद्ध होकर कुछ बोल न सकीं, मात्र देखती ही रहीं, तब ऐसा देखकर पुरोहित पुत्र उदायी ने कहा कि आप लोग सब कला को जानने वाली हो, भावग्रहण में पण्डिता हो, चातुर्य से सम्पन्न हो, अपने गुणों से प्रधानता को प्राप्त हुयी हो, स्त्रियों का तेज महान होता है। इस प्रकार कहते हुए उदायी ने अनेक दृष्टान्त दिया। कहा कि स्त्रियों ने स्त्रियों के विषय में अनभिज्ञ ऋष्यश्रृङ्ग का भी

अपहरण किया। विश्वामित्र ने जो महान तपस्वी थे, घृताची अप्सरा से अपहृत होकर दस वर्ष को एक दिन समझा। इस प्रकार जब स्त्रियों ने ऐसे लोगों को विकार उत्पन्न करवाया तो यह सुन्दर एवं युवा राजपुत्र क्या चीज है। तुम लोग निश्चित रूप से ऐसा प्रयत्न करो, जिससे राजा के वंश की शोभा यहाँ से विरक्त होकर न जावे। उदायी की ऐसी बात सुनकर स्त्रियों ने उस राजकुमार को लुभाने के लिए अनेक विशिष्ट प्रयत्न प्रारम्भ किया। किसी ने लोकलज्जा छोड़ वस्त्रवरण शरीर से हटा दिया तो किसी ने उसका चुम्बन किया। इस प्रकार नाना प्रकार के हाव-भावों से प्रभावति करने का प्रयास किया, लेकिन वह राजकुमार इस प्रकार आकृष्ट किये जाने पर भी विचलित नहीं हुआ और धीरचित्त से सोचनें लगा- क्या ये स्त्रियाँ यौवन को क्षणिक नहीं समझतीं, जिसको वृद्धावस्था नष्ट कर देगी। क्या ये किसी को रोगग्रस्त नहीं देखतीं, जिससे भय त्यागकर प्रसन्न हैं। सब कुछ हर लेने वाली मृत्यु से ये अनभिज्ञ हैं तभी तो स्वस्थ एवं उद्वेगरहित होकर खेलती और हँसती हैं। कौन वृद्ध रोगी एवं मृतक को देखकर ऐसे प्रसन्न रहेगा, जो ऐसे प्रसन्न रहेगा, वह निश्चित ही अचेतन सदृश है। इस प्रकार ध्यानमग्न होकर वह सोच रहा था कि उदायी ने, जो नीतिशास्त्र का ज्ञाता था, उसको ध्यानमग्न एवं विषयों से निस्पृह देख मित्रता पूर्वक बोला- मैं तुम्हारा मित्र हूँ, मित्रता के नाते कुछ कहना चाहता हूँ। अहित में निषेध करना, हित में नियुक्त करना, विपत्ति में भी न छोड़ना ये ही मित्र के तीन लक्षण हैं।

अहितात् प्रतिषेधश्च हिते चानुप्रवर्तनम्।
व्यसने चापरित्यागस्त्रिविधं मित्रं लक्षणम् (बुद्धचरित 4-64)

अतः मित्र होने के नाते मैं कहता हूँ कि स्त्रियों के प्रति इस प्रकार की उदासीनता तुम जैसे-सुन्दर पुरुष के अनुरूप नहीं है। दुर्लभ विषय को पाकर तुम्हे उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। इन्द्र ने भी गौतम पत्नी अहल्या के साथ काम का सेवन किया। इसी प्रकार वृहस्पति-ममता, पराशर-काली जैसे-अनेक प्रमाण प्रस्तुत कर उदायी समझा रहा था कि उदायी की बात सुनकर राजकुमार ने उत्तर दिया- मैं विषयों की उपेक्षा नहीं करता, संसार को तदात्मक जानता हूँ, किन्तु जगत् को अनित्य मानकर मेरा मन इसमें नहीं रम रहा है।

नावजानामि विषयान् जाने लोकं तदात्मकम्।
अनित्यं तु जगन्मत्वा नात्र मेरमते मनः।

यदि जरा, व्याधि एवं मृत्यु नहीं होते तो इस मनोहर विषयों में मेरा भी मन रमता। मैं तो जन्म, मृत्यु और व्याधि से होने वाले भय को देखकर अत्यन्त भयातुर

एवं विकल हूँ। अग्नि से जलते हुए के समान जगत को देखते हुए मुझे न शान्ति है न धैर्य ही। मृत्यु, व्याधि एवं जरा स्वरूप मनुष्य यदि मृत्यु व्याधि और रूप आदि विषयों में रमता है तो वह मृग पक्षियों के समान है।

इस प्रकार जब कुमार ने काम-मूल को नष्ट करने वाली निश्चयात्मक बातें कहीं, तब स्त्रियाँ सूर्य को अस्तचल को जाते देख अपने गुणों तथा प्रेमलीलाओं के निष्फल हो जाने पर काम भाव को अपने में निरुद्ध कर विवश होकर नगर को लौट गयीं और राजकुमार भी प्रासाद में प्रवेश किया, लेकिन राजा ने जब सुना कि कुमार का मन विषयों में नहीं रमा तो उसे ऐसे दु:ख हुआ मानो उसके हृदय में बाण चुभ गया हो। रात्रि में उसे नींद भी नहीं आयी।

पंचम सर्ग

जब राजकुमार को धैर्य नहीं हुआ तो राजा की आज्ञा पाकर एक बार फिर वन प्रान्त में घूमने के उद्देश्य से बाहर निकला। वन-दर्शन के लोभ से और पृथ्वी के गुण विशेष से आकृष्ट होकर सुदूर वन के अन्त की भूमि की ओर गया तथा जलतरङ्ग की भाँति विकृत हल से जुतते हुए उसने पृथ्वी को देखा। हल जुतने से तृण, कुशायें छिन्न-भिन्न हो गयी थीं। छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े मर कर बिछ गये थे। वैसे उस बसुधा को देखकर अत्यन्त शोक किया, मानो स्वजन का बध हुआ हो। वहाँ वह हरित तृण युक्त सुन्दर पवित्र भूमि पर बैठा और विश्व के जन्म-मृत्यु की गवेषणा करते हुए मन की एकाग्रता के मार्ग का सहारा लिया।

इसी समय दूसरे के द्वारा न देखा जाता हुआ एक पुरूष भिक्षु वेष में उसके पास आया। राजपुत्र ने उससे पूछा, कहो कौन हो? तब उसने उससे कहा, 'नरश्रेष्ठ! जन्म-मृत्यु से डरा हुआ मैं सन्यासी हूँ तथा मोक्ष के लिए सन्यास लिया हूँ। नश्वर जगत में मोक्ष की इच्छा वाला मैं, प्रसिद्ध कल्याणमय अविनाशी पद खोज रहा हूँ। निज और पराये में समान बुद्धि होकर, विषयों के राग-द्वेष से रहित हो गया हूँ। जहाँ कहीं, जो कुछ मिल जाता है, वही लेकर खा लेता हूँ और आशारहित हो घूम रहा हूँ। ऐसा कहकर वह आकाश में उड़ गया। वह उसकी स्मृति जगाने वाला देव विशेष था। इस प्रकार आकाश में उड़ते उसे देख वह कुमार अत्यन्त प्रसन्न और आश्चर्यचकित हो घर को पुन: प्रस्थान किया।

घर जाकर उसने राजा के पास जाकर करबद्ध प्रणाम कर बोला- 'हे नरदेव! मुझे शुभ आज्ञा देवें, मैं मोक्ष के लिए सन्यास लेना चाहता हूं, क्योंकि एक दिन इस व्यक्ति विशेष से अवश्य वियोग होगा।' इस प्रकार की उसकी

वाणी सुनकर राजा कम्पित हो गया और अश्रुपूर्ण सजल नेत्र वाला होकर बोला– हे तात! इस बुद्धि को लौटाओ, धर्मसेवन का तुम्हारा समय नहीं है। प्रथम अवस्था में मन चंचल होने के कारण बुद्धजन धर्माचरण में बहुत दोष बताते हैं, अतः तुम इस वैभवशाली लक्ष्मी का सेवन कर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो। राजा की यह बात सुनकर कुमार ने उत्तर दिया– हे राजन! यदि चार बातों में रक्षक बनें तो मैं वन का आश्रय न लूँ। मेरा जीवन मरण के लिए न हो, रोग मेरे इस आरोग्य को न हरे, बुढ़ापा यौवन को विक्षिप्त न करे और विपत्ति मेरी इस सम्पत्ति को न हरे।

न भवेन्मरणाय जीवितं न विहरत्स्वास्थ्यमिदं च में न रोगः।
न च यौवनमाक्षिपेज्जरा में न च सम्पत्तिमिमा हरेद्विपतिः॥ (बुद्धचरित 5-35)

ऐसी असम्भव बात सुनकर राजा ने कहा, पुत्र! अप्राप्य की कामना करने वाले का उपहास होता है। राजकुमार ने कहा– हे पिताजी! घर से मोक्ष की कामना वाले को भागने से रोकना उचित नहीं है।

पुत्र का ऐसा निश्चय सुनकर राजा ने रक्षा की विशेष व्यवस्था की और विषय भोगों का उसके लिए विशिष्ट विधान किया। राजकुमार ने अपने महल में प्रवेश किया। रात्रि में युवतियाँ बाजे-गाजे के साथ उसके पास उपस्थित हुईं। प्रतीत होता था मानो किसी देव श्रेष्ठ के पास अप्सराओं का झुण्ड आया हो। उन युवतियों के द्वारा लुभाने एवं बाजे बजाने पर भी वह नरश्रेष्ठ न तो सुखी हुआ और न प्रसन्न ही, तब श्रेष्ठ देवों ने उसके अभिप्राय को जानकर वहां सब प्रमादाओं को एक साथ निद्रित तथा उनकी मात्र चेष्टाओं को विकृत कर दिया। यद्यपि उनके शरीर सुन्दर थे एवं वाणी मधुर थी, फिर भी अभद्र तरीके से सोने के कारण उनकी आकृतियाँ विकृत एवं चेष्टायें चंचल थीं, जिसे देखकर राजपुत्र ने निन्दा की। इस संसार में वनिताओं का ऐसा विकराल तथा अपवित्र स्वभाव है, तथापि वस्त्रभूषणों से वंचित पुरुष स्त्रियों के विषय में राग करता है।

इस प्रकार सो रही उन स्त्रियों की निन्दा करते हुए वे राजकुमार महल के ऊपरी भाग से निचले भाग प्रथम कक्ष में आये। शीघ्रगामी अश्वरक्षक को जगाकर कन्धक नामक या जाति विशेष अश्व को शीघ्र लाने के लिए कहा और कहा कि मोक्ष पाने के लिए यहाँ से जाने की मेरी इच्छा है। अश्वरक्षक छन्दक ने अन्यमनस्क मन से ही राजकुमार की आज्ञा को स्वीकार करते हुए अश्व को लाया। तब राजकुमार उस अश्व की पीठ पर चढ़कर सिंहनाद करते हुए कहा,

'जन्म एवं मृत्यु का अन्त देखे बिना इस कपिलवस्तु नगर में प्रवेश नहीं करूँगा। इस प्रकार उसकी बात सुनकर देवताओं ने प्रसन्नतापूर्वक प्रफुल्लित चित्त से उसका मनोरथ सिद्ध करने का संकल्प किया। कुछ अन्य देवताओं ने अग्निरूप धारण करके उसे वर्फीले मार्ग में प्रकाश किया और वह घोड़ा सूर्य की किरणों से आकाश के तारे मलिन नहीं हो पाये (अर्थात रात में ही) इतने ही समय में अनेकों योजन दूर निकल गया।

षष्ठ सर्ग

कुछ मुहूर्त में भगवान भास्कर के उदित हो जाने पर उस नरश्रेष्ठ ने भार्गव का आश्रम देखा। अश्वपीठ से उतरकर उसको सहलाया और कहा 'तुमने मुझको पार कर दिया। इसके बाद स्निग्ध दृष्टि से छन्दक से कहा, हे सौम्य! तुमने अपनी अतुलनीय भक्ति मुझमें दिखाई, तुम्हारे इस फलकामना रहित कर्म से मैं सन्तुष्ट हूँ। अब तुम अश्व लेकर लौट जाओ। इतना कहकर उसने अपना सब आभूषण उतार कर उसको दे दिया तथा दीपक का काम करने वाली एक तेजस्वी मणि मुकुट से लेकर कहा कि हे छन्दक इस मणि से राजा को बारम्बार प्रणाम करते हुए कहना कि यथार्थ में स्वर्ग की तृष्णा से नहीं और न वैराग्य तथा क्रोध से अपितु जरामरण नाश के लिए मैं तपोवन में आया हूँ, अतः इस प्रकार निकलने वाले मेरे लिए शोक नहीं करना चाहिए। ऐसी बात सुनकर छन्दक ने अश्रुग्रसित वाणी से उत्तर दिया, हे स्वामिन्! बन्धुओं को कष्ट देने वाले आपके इस भाव से मेरा मन व्यथित हो रहा है, अतः हे महाबाहो! पुत्र में उत्कठित प्रेम एवं वृद्ध राजा को आप इस प्रकार न छोड़ें जिस प्रकार नास्तिक सद्धर्म को छोड़ता है। पालन-पोषण वाली उस अपनी दूसरी माता को भी उसी प्रकार न छोड़ें, जैसे–कृतघ्न सत्कार को भुला देता है। हे श्रेष्ठ! पतिव्रता यशोधरा और पुत्र राहुल भी आपके द्वारा नहीं छोड़ा जाना चाहिए और यदि आपने सबको त्यागने का निश्चय भी किया है तो मुझे न छोड़ें। मैं सुमन्त्र की तरह राम (आप)को छोड़कर घर नहीं जाना चाहता।

तब कुमार ने शोकसंतप्त छन्दक की बात सुनकर इस प्रकार कहा, हे छन्दक! मेरे वियोग सम्बन्धी इस संताप को छोड़ो। पृथक-पृथक जाति (योनि) वाले देहधारियों में वियोग होना एवं नानाभाव होना नियत है। मेरे विचार में जैसे–बादल मिलकर फिर विलग हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणियों का भी वियोग होता है।

इसके बाद उसने कन्धक को भी 'हे कन्थक! अश्रुपात न करो' ऐसा कहते हुए सान्त्वना दिया और कृपाण निकालकर अपने मुकुट को काटा और आकाश में फेंक दिया। देवताओं ने उस छिन्न-भिन्न मुकुट को आदर से लेकर स्वर्गीय सामग्री से उसकी पूजा की। तदन्तर पवित्र अन्तःकरण वाला एक देवता उसका अभिप्राय जानकर शिकारी के वेष में काषाय वस्त्र धारण कर उसके पास गया। राजकुमार ने कहा कि हे सौम्य, यदि तुम्हें इस वस्त्र में ममता न हो तो यह मेरा वस्त्र लेकर तुम हमें यह वस्त्र दे दो। तब उस व्याध (शिकारी) ने परम हर्ष से अपना वस्त्र दे दिया। कुमार ने काषाय वस्त्र धारण किया और व्याध भी शुक्ल वस्त्र लेकर दिव्य शरीर धारण कर स्वर्ग चला गया। इसके बाद कुमार और छन्दक दोनों आश्चर्यचकित हुए। काषाय वस्त्रधारी कुमार ने छन्दक को लौटाकर आश्रम की ओर जाने वाले एक मार्ग से चल दिया। छन्दक स्वामी के इस वेष को देखकर बहुत विलाप किया और घोड़े को लेकर केवल शरीर मात्र से लौटा, लेकिन चित्त से नहीं।

सप्तम सर्ग

छन्दक को विसर्जित कर, वन में स्वच्छन्दता की इच्छा से, सर्वार्थसिद्ध सिंह के समान शरीर की शोभा वाला, आश्रम को आक्रान्त करके वह वहाँ पहुँचा। आश्रम में पहुंचते ही सभी आश्रमवासियों का चित्त उसकी ओर आकृष्ट हुआ। सब लोगों ने निरनिमेष दृष्टि से उसको देखा। निश्चल बुद्धि तपस्वीयों ने भी उसको उसी प्रकार देखा, अपने मठो में वे उस समय नहीं गये। मोक्षाभिलाषी धीर उस कुमार ने स्वर्गाभिलाषी पुण्यकर्मी जनों से परिपूर्ण उस आश्रम को तथा वहाँ की विविध तपस्याओं को देखते हुए विचरण किया।

उस शान्त कुमार ने उस तपोवन में तपोधनों की तपस्या के प्रकार को देखकर तत्त्व ज्ञान की इच्छा से कहा- मेरा यह प्रथम आश्रम दर्शन है। मैं इस धर्म विधि को नहीं जानता हूँ, अतः आपकी जिसके प्रति यह प्रवृत्ति है और जो आपका निश्चय है, मुझे बतावें। तब तपोविहारी द्विजाति ने उससे तपस्याओं की विशेषताएँ एवं तपस्या का फल बताया। उन्होंने कहा कि- जल में जायमान फल, कन्द, मूलादि ही मुनियों की आजीविका है। कुछ लोग पक्षी की तरह चुन कर धान्य का सेवन करते हैं। कुछ मृगों की तरह तृण चरते हैं, कुछ लोग अग्नि में दो बार हवन करते हैं। इस प्रकार बहुत काल में संचित श्रेष्ठ तपों से स्वर्ग में जाते हैं। इस प्रकार इन वचनों से नरश्रेष्ठ को सन्तोष नहीं हुआ, वह मन्दस्वर से

स्वगत ही कहा कि विविध प्रकार की तपस्याएँ दु:ख रूप हैं और तपस्या का प्रमुख फल स्वर्ग है, तथा समस्त लोक बदलते रहने वाले हैं, अत: आश्रमवासियों का यह परिश्रम सचमुच में लघुफल के लिए है। तपस्याओं की परीक्षा करता हुआ उसने कुछ रात्रि वहाँ निवास किया और संक्षेप में सभी तपों को समझकर वहाँ से चल दिया। आश्रमवासी उसके पीछे-पीछे जाने लगे। उसमें से एक वृद्ध ने अत्यन्त आदर से कहा कि, हे सौम्य! आपके आने से यह आश्रम भर गया, आप यहाँ से जाइए मत। ये तपोधन आपको अपनी तपस्या का सहायक बनाना चाहते हैं। इस प्रकार तपस्वीयों के कहने पर उसने कहा कि आप सबका धर्म स्वर्ग के लिए है, किन्तु मेरी अभिलाषा मोक्ष की है। इसी कारण से इस वन में रहने की मेरी इच्छा नहीं है, क्योंकि प्रवृत्ति से निवृत्ति धर्म भिन्न है।

तदनन्तर एक द्विज ने उसकी ऐसी विचारधारा को जानकर कहा कि हे प्रज्ञ! आपका निश्चय सचमुच उदार है, जो कि आपने युवावस्था में ही जन्मगत दोषों को देखा, अत: आपकी बुद्धि निश्चित (दृढ़) है, तो आप शीघ्र विन्ध्य कोष्ठ को जाँय। वहाँ पर अराड मुनि निवास करते हैं। आप उनसे तत्त्वमार्ग सुनेंगे एवं रूचि होने पर स्वीकार भी करेंगे। लेकिन मैं समझता हूँ कि आपकी बुद्धि उनकी बुद्धि का भी तिरस्कार कर चली जाएगी। तब नृपात्मज 'अति उत्तम' ऐसा कहकर उन ऋषियों का अभिनन्दन कर वहाँ से निकल गया, वे ऋषिगण भी तपोवन में प्रवेश किए।

अष्टम सर्ग

नरश्रेष्ठ के वन में चले जाने पर छन्दक एवं कन्धक अश्वों ने शोक रोकने का प्रयत्न किया, लेकिन नहीं रोक पाये। जिस मार्ग में वे एक रात्रि में गये थे उसी मार्ग से विरहकातर यो आठ दिन में लौटे। नगर में आते ही लोगों ने कुमार को न देखकर आश्चर्य किया। कुछ लोगों ने क्रोधपूर्वक छन्दक को खरी-खोटी सुनाई। छन्दक ने लोगों से कहा कि इसमें हमारा कोई दोष नहीं हैं, हम लोगों ने उनको नहीं छोड़ा, वे ही हम लोगों को छोड़ दिये। कुमार आये है, ऐसा जानकर नगर की स्त्रियाँ अट्टारियों पर चढ़ गयीं, किन्तु उनको न देख अत्यन्त दु:खित हुईं। नगर में दु:खपूर्ण वातावरण हो गया। पालन-पोषण करने वाली माता सदृश गौतमी कन्धक को खाली देख हतप्रभ हो पृथ्वी पर गीर पड़ीं। अन्य स्त्रियाँ भी वैसे ही विलाप करने लगीं। यशोधरा जिसके अंगप्रत्यङ्ग काँप रहे थे, क्रोध से आँखे लाल हो गयीं थीं, बोली- हे छन्दक! एक साथ गये तुम तीन में से

दो को देखकर मेरा मन काँप रहा है, हे निर्दय! ऐसा अशोभन बैरी कर्म करके, और रो रहे हो, आँसू रोको, प्रसन्नचित हो जाओ, ठीक ही कहा जाता है- मनुष्य का पण्डित शत्रु अच्छा होता है, किन्तु मूर्ख मित्र अच्छा नहीं होता। अपने के मित्र कहने वाले तुझ मूर्ख ने इस कुल का नाश कर दिया।

निश्चय ही यह कन्धक तुरङ्ग भी अनर्थकारी है। जिस प्रकार रात में सोने पर चोर, चोरी कर लेता है, वैसे ही इसने भी मेरा सर्वस्व हर लिया। इस प्रकार की विलाप एवं दुःख भरी वाणी सुनकर छन्दक ने कहा, 'हे देवि! इसमें हम लोगों को दोष नहीं देना चाहिए, हम दोनों निर्दोष हैं। इसमें दैवी प्रेरणा ही प्रतीत होती है। जिस समय राजकुमार बाहर निकलने लगे तब द्वार स्वयं ही खुल गए, रात्रि का अन्धकार नष्ट हो गया सभी दरवान सो गये, कोई भी जागा नहीं। मैने चाह कर भी विपरीत आचरण नहीं कर पाया। अतः हे नरदेवि! इसके जाने के प्रति हम दोनों का दोष नहीं है, न मेरी इच्छा से यह कार्य हुआ, न इस कन्धक की। वह तो देवताओं की प्रेरणा से हो गया।

इस प्रकार इधर नगर में माता, पत्नी, सभी नगरवासी नर-नारी विलाप कर रहे थे, तब तक राजा पुत्र के मंगलपूर्वक प्राप्ति के लिए हवन पूजादि कर्म करके मन्दिर से बाहर आये। राजा भी कन्धक और छन्दक को देख मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। तब मन्त्री और बृद्ध पुरोहित ने राजा को समझाया और राजा से आदेश ले उस नरश्रेष्ठ से मिलने के लिए तथा समझाकर वापस लाने के लिए उस वन की ओर चल दिया।

नवम सर्ग

मन्त्री और पुरोहित दोनों उस वन में भार्गव के आश्रम पहुंचकर भार्गव मुनि से प्रश्न किये कि हमलोग उसको खोज रहे हैं, जो जरामृत्यु के भय से आपके पास आया था। वह राजपुत्र कहाँ गया? तब भार्गव ने बताया कि इस धर्म को पुनर्जन्मप्रद जानकर वह दीर्घबाहु कुमार अराड़ की ओर तत्त्वज्ञान की जिज्ञासा से चला गया। ऐसा जानकर वे दोनों मन्त्री और पुरोहित उसी आश्रम की ओर कुछ दूर चलने पर उस कुमार को देख वे दोनों उसके पास गये और आदरपूर्वक उसके पास बैठे। बैठने के बाद पुरोहित ने उस राजकुमार से कहा, हे कुमार! राजा ने तुम्हारे शोक के हृदय में चुभने पर क्षण भर के लिए पृथ्वी पर बेहोश होते हुए आँसू पोंछकर जो कहा वह सुनो- 'धर्म के प्रति तुम्हारा विश्वास है, यह जानता हूँ। यह तुम्हारा अवश्यम्भावी होनहार था, यह भी जानता हूँ। किन्तु असमय में

तुमने वन का आश्रय लिया है, अतः अग्नि तुल्य शोकाग्नि से जल रहा हूँ। हे धर्मप्रिय! मेरा प्रिय करने के लिए इस बुद्धि को त्यागो। चौथेपन में वन को जाना। इस सम्बन्ध में चौथेपन में बन जाने वाले अनेक राजाओं का नाम गिनाया गया है तथा गृहस्थ होने पर भी मोक्ष प्राप्त करने वाले जनकादि का नाम गिनाया गया है।' इस प्रकार पुरोहित ने माता गौतमी, यशोधरा, पुत्र रोहित सबके शोक जन्य दुःख का वर्णन राजा के शब्दों में किया, किन्तु राजकुमार ने उनके वचनों का उत्तर दिया और वन से घर लौटने को तैयार नहीं हुआ। उन्होंने कहा, 'धर्म के लिए समय नहीं होता' और कहा कि विषय भोग के लिए अकाल होता है, उसी प्रकार धनोपार्जन में काल का विधान है। काल सदैव जगत को खींचता है। मोक्ष के सम्बन्ध में कोई निश्चित काल नहीं है।

पुरोहित के बाद मन्त्री ने भी बहुत दर्शनयुक्त वाक्यों के द्वारा और मोक्ष तथा स्वर्ग का वर्णन, पुनर्जन्म का वर्णन, करते हुए उसको समझाने का प्रयत्न किया। लेकिन वह नरश्रेष्ठ लौटने को तैयार नहीं हुआ और कहा कि मैं प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर लूँगा, किन्तु असफल होकर घर में प्रवेश नहीं करूँगा और ऐसी प्रतिज्ञाकर उठकर वहाँ से एक ओर चल दिया, तब मन्त्री और पुरोहित दोनों उसके दृढ़ विचार सुनकर दुःखी हुए एवं म्लानमुख रोते हुए कुछ दूर उसके पीछे-पीछे गये। फिर हताश होकर शनैःशनैः नगर की ही ओर चलने लगे।

दशम सर्ग

वह राजकुमार मन्त्री और पुरोहित को छोड़कर चलायमान तरंगों वाली गंगा को पार कर लक्ष्मी-सम्पन्न भवनों से युक्त राजगृह को गया। उसे देखकर, जो दूसरी ओर जा रहा था रूक गया, जो रूका हुआ था, पीछे-पीछे गया, जो तेजी से जा रहा था, वह धीरे-धीरे चला, एवं जो बैठा था, वह उठकर खड़ा हो गया। किसी ने हाथों से उसकी पूजा की, किसी ने सत्कार करके सिर से प्रणाम किया, किसी ने प्रिय वचन से अभिनन्दन किया, उसकी पूजा किये बिना कोई नहीं रहा। तब मगध राज के राजा श्रेष्ठ (बिम्बसार) ने महल से देखा कि बाहर विशाल जनसमुदाय है, उसका कारण पूछा। तब एक राजपुरुष ने उसको बताया कि यही विप्रों के द्वारा कथित मोक्ष धर्माभिलाषी शाक्यराज का पुत्र परिव्राजक हो गया है। लोग उसे देख रहे हैं, तब राजा ने कहा, पता लगाओ कहाँ जा रहा है। वह पुरूष 'अच्छा' कह कर उसके पीछे-पीछे गया। वह भिक्षुश्रेष्ठ भिक्षा माँग रहा था। भिक्षा में जो कुछ मिल गया उसे लेकर पर्वत के पास एकान्त में खाया और

खाकर पाण्डव पर्वत पर चढ़ गया। उस राजपुरूष ने वहाँ से आकर राजा को बताया। राजा यह सुनकर अनुचरों के साथ वहाँ प्रस्थान किया। न्यायवेत्ताओं में वरिष्ठ उस कुमार के पास जाकर राजा ने उससे आरोग्य पूछा। उसने भी राजा को आरोग्य बताया। इसके बाद राजा ने उससे कहा कि आपके कुल से परम्परागत एवं परीक्षित मेरी बड़ी प्रीति है। आपका कुल महान है। सूर्य से प्रारम्भ हुआ है। आपकी अवस्था नयी है। यह शरीर भी देदीप्यमान है। किस कारण आपकी गति भिक्षा में रमी, राज्य में न रमी, आपका शरीर रक्त चन्दन लेप के समान है, काषाय के योग्य नहीं, यह हाथ प्रजापालन के योग्य है, भिक्षा के योग्य नहीं। अतः हे सौम्य! यदि पिता से स्नेह वश पैतृक राज्य पराक्रम से नहीं लेना चाहते तो मेरा ही आधा राज्य भोगिये। मैं यह बात स्नेह से कह रहा हूँ, ऐश्वर्य के राग से नहीं। जब तक वृद्धावस्था नहीं आ जाती, तब तक विषयोपभोग करिये, फिर समय से धर्म कीजिए। बूढ़ा आदमी धर्म प्राप्त कर सकता है। कामोपभोग में बुढ़ापे की गति नहीं होती, अतः युवा के लिए काम, मध्य के लिए धन, एवं वृद्ध के लिए धर्म कहते हैं।

यदि आपको धर्म ही करना है, तो यज्ञ कीजिए। यज्ञ करना आपका कुलधर्म है। राजार्षि लोग यज्ञ के द्वारा उसी गति को प्राप्त हुए, जिस गति को कठिन तपस्या के द्वारा महर्षिगण।

एकादश सर्ग

इस प्रकार जब मगधराज बिम्बसार ने ऐसी बात कही तब क्षुब्ध शाक्यश्रेष्ठ ने इस प्रकार कहा- 'विशाल चन्द्रवंश में उत्पन्न आपके लिए ऐसा कहना आश्चर्यजनक नहीं, क्योंकि हे मित्रकामी! विशुद्ध व्यवहार वाले आपकी मित्र के पक्ष में ऐसी भावना है। संसार में जो मनुष्य धन क्षीण होने पर मित्रों के समान सहायक होते हैं, उन्हीं को मैं अपनी बुद्धि के अनुसार मित्र समझता हूँ। सम्पन्न व्यक्ति की कौन मित्र नहीं होता? हे राजन! मित्रता एवं सज्जनता के कारण मेरे प्रति आपका जो यह निश्चय हुआ है, इस विषय में मित्रता से ही मैं अनुनय करूँगा। मैं जरा एवं मृत्यु का भय जानकर मोक्ष की इच्छा से इस धर्म की शरण में आया हूँ। पहले अशुभ के हेतु भूत कामों को, फिर बाद में रोते हुए बन्धुओं को छोड़कर आया हूँ। मैं विषधरों से उतना नहीं डरता, और न आकाश से गिरे हुए वज्रों से, और न वायु मिश्रति अग्नि से, जितना की विषयों से डरता हूँ। काम अनित्य हैं, ज्ञानरूप धन के चोर है, माया सदृश हैं, एवं संसार में उसकी आशा

करने पर भी मनुष्यों के मन को मोह में डाल देते हैं। फिर यदि अन्दर स्थिर हो तो क्या कहना।

कामा ह्यनित्याः कुशलार्थ चौरा रिक्ताश्च माया सदृशाश्च लोके।
आशास्यमाना अपि मोहयन्ति चित्तं नृणां किं पुनरात्मसंस्थाः॥
(बुद्धचरितम् 11/9)

इस संसार में प्राणी को काम से तृप्ति नहीं होती। इस सम्बन्ध में मान्धाता, नहुष इत्यादि राजाओं का उदाहरण दिया और कहा कि इनको भी तृप्ति नहीं हुयी। काम मनुष्य को नाश को प्राप्त कराता है। इस सम्बन्ध में कहा कि कौरव, वृष्णि, अन्धक, सुन्द-उपसुन्द जिस काम के चलते नष्ट हो गये, उस काम में किस आत्मवान को सुख होगा। गीतों से हिरण बध के लिए फुसलाये जाते हैं, रूप के निमित्त पतंगे अग्नि में गिरते हैं। मांस के लिए मछली लोहे का कांटा लील जाती है, अतः विषयों का फल विपत्ति है, अतः कल्याण एवं मंगलमय कार्य में प्रयुक्त हुआ मैं बहकाया नहीं जा सकता हूँ। मित्रत्व का स्मरण करके आप मुझसे बारम्बार यह कहें कि आप अपनी प्रतिज्ञा पालन करें। जिस पद में न जरा, न भय, न रोग, न जन्म, न मृत्यु और न व्याधि है- उसको ही मैं परम पुरुषार्थ मानता हूँ। जिसमें बार-बार कर्म नहीं करना पड़ता। आपने जो कहा कि 'वृद्धावस्था की प्रतीक्षा करो', नई अवस्था में विकार होता है- यह भी निश्चित नहीं, क्योंकि बहुधा देखा गया है वृद्धावस्था में अधीरता एवं युवावस्था में धैर्य रहता है। जब विनाश का समय अनिश्चित है तब ऐसा जानकर कल्याण चाहने वाला व्यक्ति वृद्धावस्था की प्रतीक्षा क्यों करे? आपने जो कहा 'कुलोचित यज्ञ करो'। उन यज्ञों के लिए नमस्कार है। मैं ऐसा सुख नहीं चाहता जो दुसरों को दुःख देकर किए जाते हैं। मनुष्य को दूसरों को दुःख देकर सुख प्राप्ति की कामना नहीं करनी चाहिए।

हे राजन! यहाँ से मैं शीघ्र ही मोक्ष वादी अराड मुनि के दर्शन की इच्छा से जा रहा हूँ। आपका कल्याण हो। मेरे इस सत्य निष्ठुर वचन को क्षमा करें। तब राजा बड़े अनुराग से हाथ जोड़कर कहा, आप अपना अभिष्ट निर्विघ्न प्राप्त करें और मेरे ऊपर भी अनुकम्पा करें। तब 'वैसा ही हो' इस प्रकार कह कर वहां से वह वैश्वन्तर आश्रम को गया और राजा भी गिरिव्रज को प्रस्थान किया।

द्वादश सर्ग

वह इक्ष्वाकु वंश का चन्द्रमा अराड मुनि के आश्रम में गया। मुनि ने उसको आदरपूर्वक बैठाया तथा कहा कि शिष्य को अच्छी तरह जान लेने के बाद शास्त्र

का वर्णन किया जाता है, लेकिन मैं तुम्हारे उद्योग से प्रसन्न हूँ और तुम्हारी परीक्षा नहीं करूँगा, तब कुमार के प्रेमपूर्वक आग्रह करने पर मुनि ने प्रकृति, विकृति, अहंकार, बुद्धि, पंच महाभूत, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, मोह, माया, सन्देह, अभिसम्पलव, ज्ञान, अज्ञान, विषाद इत्यादि का शास्त्र रीति से उपदेश किया। मुनि ने बताया कि 'द्रष्टा, श्रोता, ज्ञाता, कार्य एवं कारण मैं ही हूँ' – ऐसा मानता हुआ व्यक्ति संसार में भटकता है। ये ही पुनर्जन्म के हेतु हैं। हेतु के अभाव में फल का अभाव होता है। बुद्धिमान को चार बातें अच्छी तरह जाननी चाहिए– प्रतिबुद्ध, अप्रयुद्ध, व्यक्त एवं अव्यक्त। क्षेत्रज्ञ इनको अच्छी तरह जानता है, अतः वह अक्षर पद पाता है। इसीलिए ब्रह्मवादी बह्मचर्य का आचरण करते हैं। इस प्रकार अराड ने ब्रह्म और मोक्ष की भी व्याख्या की और कहा कि मैंने आपको मोक्ष और उपाय भी बताया, यदि आपकी रूचि हो तो ग्रहण करें, किन्तु यह व्यक्ति अराड का धर्म जानकर सन्तुष्ट नहीं हुआ। 'यह धर्म अपूर्ण है' – ऐसा जानकर वहाँ से चला गया। वह विशेष जानने की इच्छा से उद्रक के आश्रम में गया, किन्तु आत्मा को स्वीकार करने के कारण उसका भी दार्शनिक विचार उसने ग्रहण नहीं किया। इसके बाद कल्याण की इच्छा से निश्चय करके वह राज ऋषि गय के पास नगरी नामक आश्रम गया तथा आनन्द पाने वाला मुनि ने नैरंजना नदी के तट पर निवास किया। वहाँ उसने पाँच भुक्षुओं को देखा। तदनन्तर वह निराहार रह कर छः वर्ष तक दुष्कर तप करते हुए अपने को कृश किया। संसार से डरने वाला वह मुनि 'कठिन तपस्या से सत्य ही शरीर को व्यर्थ कष्ट होता है' – ऐसा सोचते हुए विचार किया, यह धर्म न वैराग्य दे सकता है, न बोध, न मुक्ति। इस प्रकार चिन्तन कर वह कुछ खाने की इच्छा किया और नैरंजना नदी के तट से धीरे-धीरे ऊपर चढ़ा।

उसी समय देवताओं से प्रेरित गोपराज की कन्या नन्दबाला वहाँ आयी और प्रसन्नता पूर्वक उनको पायस दिलवाया। पाँच भिक्षुओं ने उसे 'ब्रत भंग' समझकर छोड़ दिया, तब बोध पाने के लिए निश्चय करके वह एक अश्वत्थ मूल में निश्चय के साथ गया। उसी समय गजराज के समान पराक्रमी 'काल' नामक महासर्प ने 'बोधि प्राप्ति के लिए आया है' ऐसा जानकर उसकी स्तुति की। तब भुजंग श्रेष्ठ के द्वारा स्तुति किये जाने पर 'जब तक कृतार्थ नहीं हो जाऊँगा, तब तक पृथ्वी पर इस आसन को नहीं तोड़ूँगा' ऐसा निश्चय करके उत्तम अचल एवं सोये हुए सर्प के फण के समान पिण्डाकार पर्यंक आसन उस महावृक्ष के मूल में बाँधा।

त्रयोदश सर्ग

राजर्षि वंश में उत्पन्न होने वाले उस महर्षि के मोक्ष के लिए वहाँ प्रतिज्ञा पूर्वक बैठ जाने पर संसार तो प्रसन्न हुआ, किन्तु सद्धर्म का शत्रु मार भयभीत हुआ। कामदेव के विभ्रम, हर्ष एवं दर्प तीन पुत्र तथा अरति, प्रीति एवं तृषा तीन कन्यायें हैं। अपने पुत्रों और कन्याओं के द्वारा खिन्न मन का कारण पूछ्र जाने पर वह कहा कि यह मुनि निश्चय का कवच एवं सत्य रूप धनुष धारण कर बुद्धिरूप बाण तान कर हमारे विषयों को जीतना चाहता है, अतः मुझे यही दुःख है।

इस प्रकार अपने दुःख का कारण बताकर वह कामदेव, पुष्प, धनुष एवं संसार को मोहित करने वाले पाँच वाणों का प्रहार किया किन्तु उस मुनि ने उसकी उपेक्षाकर दी। तब कामदेव अपने पुत्र एवं पुत्रियों को आगे कर प्रहार किया, इसकी परवाह मुनि के द्वारा न की गयी। आश्चर्यचकित मार अपनी सेना का स्मरण कर उसकी शान्ति को भंग करने का बहुत ही प्रयास किया, जिससे संसार में सद्धर्मीयों के बीच दुःखमय वातावरण हो गया, किन्तु इस प्रकार कामदेव के द्वारा दुष्टता किये जाने पर आकाश से एक जीव विशेष ने आकाशवाणी के माध्यम से कहा, 'हे कामदेव! व्यर्थ परश्रिम मत करो। हत्यारापन छोड़ो, शान्त हो जाओ। तुम इसे उसी प्रकार नहीं डिगा सकते हो जिस प्रकार सुमेरु को हवा।' तब उसका वचन सुनकर वह मार महामुनि की अचलता देख निष्फल प्रयास वाला होकर वहाँ से चला गया। उसकी सेना भी वहाँ से लौट गयी। इस प्रकार मार के सेना सहित चले जाने एवं मुनि की विजय होने पर आकाश से सुगन्धित जल युक्त पुष्प वृष्टि हुयी।

चतुर्दश सर्ग

इसके बाद उस ध्यान निपुण ने मार की सेना को धैर्य एवं शान्ति से जीतकर परमतत्त्व जानने की इच्छा से ध्यान लगाया तथा सब प्रकार की ध्यान विधियों में पूर्ण प्रभुता प्राप्त करके प्रथम प्रहर में अपने पूर्व जन्मों की परम्परा का स्मरण किया। अमुक स्थान में मैं अमुक था। वहाँ से गिरकर यहाँ आया– इस प्रकार हजारों जन्मों को मानो प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए स्मरण किया। द्वितीय प्रहर आने पर उस मुनि ने दिव्य चक्षु पाया, तब उसने उस दिव्य चक्षु से अखिल विश्व को देखा। उसने देखा कि नभचरों द्वारा नभचारी एवं जलचरों द्वारा जलचारी तथा स्थलचरों द्वारा स्थलचारी परस्पर सताये जाते हैं।

इस प्रकार विचार कर वह महामुनि संसार के दु:ख के कारणों एवं उसके विरोध का सम्यक ज्ञान प्राप्त किया। तदनन्तर उस मुनि ने पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार संसार में शान्ति के उपदेश की इच्छा की। तब उस मुनि के पास दो स्वर्गवासी देवता आये और महामुनि को संसार में उपदेश करने के लिए प्रेरित कर चले गये। तब मुनि ने जगत की मुक्ति के लिए अपना मन लगाया। दिशाओं के देवताओं ने आकर उस मुनि को भिक्षा पात्र दिये। मुनि ने प्रसन्नता पूर्वक उन सबको एक कर लिया। उस समय जाते हुए काफिले के दो सेठों ने उनकी पूजा कर प्रथम भिक्षा कराया। मुनि ने धर्म ग्रहण करने में समर्थ अराड एवं उद्रक को दिवंगत जानकर पाँच भिक्षुओं का स्मरण किया और भीमरथ की प्रिय मनोहर धन्य नगरी को जाने लगे। तब मुनि ने काशी जाने की इच्छा की और बोधि वृक्ष के ऊपर अपना शरीर घुमाकर सुदृढ एवं शुभ दृष्टि डाली।

पंचदश: सर्ग

जब महात्मा बुद्ध काशी जाने लगे तब मार्ग में किसी अन्त:शुद्ध भिक्षु ने हाथ जोड़कर कहा, 'हे सौम्य! आप देदीप्यामान तेज से तत्त्ववेत्ता की तरह शोभा पा रहे हैं, आप निश्चय ही इन्द्रियों पर स्वामित्व प्राप्त कर चुके हैं। आपका क्या नाम है? किस गुरू से यह उत्तम सिद्धि पाये हैं? तब भगवान ने बताया, 'न मेरा कोई गुरू है, न सम्माननीय है, और न निन्दनीय है। मैने निवार्ण प्राप्त किया है। मुझे धर्म का स्वामी जानो। धर्मभेरी बजाने के लिए मैं काशी जा रहा हूँ। न सुख के लिए, न यश के लिए, अपितु आर्तो की रक्षा के लिए। तत्पश्चात् वह भिक्षु मन ही मन प्रशंसा करता हुआ अपने गन्तव्य को चल दिया और महात्मा बुद्ध वहाँ से काशी जाकर महानाम, अश्वजित, वाष्प, कौण्डिन्य एवं भद्रजित नामक ये पाँच भिक्षु जहाँ थे, वहाँ गये। ये लोग उनको देखकर कहने लगे बुद्ध आ रहा है, तपभ्रष्ट है, हम लोग इसका सत्कार नहीं करेंगे। लेकिन भगवान के आने पर वे लोग शिष्य भाव को प्राप्त हो गये, लेकिन नाम लेकर बोलना नहीं छोड़े। तब सुगत ने उन्हें शिष्टाचार एवं धर्म का उपदेश दिया और पूछा कि क्या तुम लोगों को ज्ञान प्राप्त हुआ, तब मुनियों ने कहा, 'हाँ हम सबको अवश्य ज्ञान प्राप्त हुआ।' उन लोगों ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

षोड्श सर्ग

इसके बाद उस सुगत ने मुनियों को दीक्षित किया। तदनन्तर यशनाम कुलपुत्र, जिसके मन में सोई स्त्रियों को देखकर क्षोभ उत्पन्न हुआ था, महात्मा

बुद्ध ने उसको उपदेश देकर उसके साथ 54 व्यक्तियों को दीक्षित किया और विचरण करने का आदेश दिया तथा 'मैं गया को जाता हूँ' ऐसा कहकर स्वयं भी चल दिया। वहाँ से जाकर सुगत ने मुनिश्रेष्ठ कश्यप को देखा। सुगत के निवास योग्य भूमि की याचना करने पर कश्यप ने ईर्ष्यावश मार डालने की इच्छा से वह अग्निशाला दी, जिसमें करला सर्प रहता था। उस महासर्प ने शान्त बैठे उसको देखकर विष की ज्वालायें उगली, फिर भी न जलने पर वह महासर्प आश्चर्यचकित हो प्रणाम किया। आश्रम के लोगों में कोलाहल हुआ- 'गौतम मर गया', लेकिन प्रात:काल होने पर सुगत ने कश्यप को भिक्षा पात्र में वह सर्प लाकर दिखाया। कश्यप आश्चर्यचकित हो गया। महात्मा बुद्ध ने कश्यप की बुराइयों को उपदेश-जल से धोकर उसे पवित्र किया। कश्यप का मत परिवर्तित होते देखकर औरूबिल्व भी अपने 900 शिष्यों के साथ सौगत धर्म स्वीकार किया। **गय और नदी कश्यप** के दो छोटे भाई भी इस धर्म को स्वीकार किये। ये। गय-शीर्ष नामक पहाड़ पर सुगत ने तीनों कश्यप बन्धुओं सहित अपने शिष्यों को निर्वाण का उपदेश किया। इसके बाद सुगत अपने पूर्व वचन के अनुसार तीन कश्यपों के साथ मगध राज्य को कृतार्थ करने के लिए राजगृह पधारे। सुगत को आते देख मगधराज ने आगे बढ़ नगरवासियों के साथ स्वागत किया। कश्यप को शिष्टता प्राप्त देख नगरवासियों में आश्चर्य हुआ। सुगत के आदेशानुार कश्यप ने नगरवासियों के सामने 'मैं शिष्यता प्राप्त कर लिया हूँ, यही धर्म श्रेष्ठ है' ऐसा कह आकाश में उड़ गया। वह कहीं बजली की तरह चमका, कहीं बादल की तरह बरषा, कभी एक ही साथ दोनों काम किया। इस प्रकार यह निश्चय होने के बाद कि यह गौतम ही सर्वश्रेष्ठ धर्मज्ञ है, महात्मा बुद्ध ने धर्म का उपदेश किया। इस प्रकार मगध राज तथा सभी नगर वासी उस उपदेशामृत का पानकर कृतार्थ हो परमपद को प्राप्त किये।

सप्तदश सर्ग

राजा विम्बसार ने वेणु वन में निवास के लिए बुद्ध ने निवेदन किया। महात्मा बुद्ध उस वन में शान्तचित्त हो रहने लगे। एक दिन अश्वजित नामक जितेन्द्रिय भिक्षु भिक्षा के लिए नगर में गया। रास्ते में जाते हुए उस भिक्षु को देखकर शारद्वती पुत्र कापिलेय सन्यासी ने बहुत से शिष्यों के साथ उससे कहा- हे सौम्य! तुम्हारे इस नवीन वेष को देखकर मेरा मन आश्चर्य में है। आपका गुरू कौनहै? उसकी शिक्षा क्या है? तब अश्वजित ने कहा मेरे गुरु महात्मा बुद्ध हैं।

उनकी शिक्षा में भली प्रकार नहीं बता सकता, क्योंकि मैं अभी नया हूँ लेकिन संक्षेप में सुनो। इस प्रकार कह उस अश्वजित ने सभी धर्मो को कारण से उत्पन्न होने वाला तथा निरोध और निरोध मार्ग की व्याख्या की। पहली बार ऐसा सुन वह ब्राह्मणश्रेष्ठ बड़ा प्रभावित हुआ। अश्वजित ने अपने धर्म का उपदेश किया। वह ब्राह्मण उसके साथ सुगत के पास आया। अश्वजित ने इनका परिचय बता प्रयोजन कहा। तदनन्तर सुगत ने भी धर्म का उपदेश किया। अश्वजित और मौद्गल्यायन ये दोनो मुनि को प्रणाम कर क्रमशः नैतिक पद को प्राप्त किये। एक और कश्यपवंशीय धनी ब्राह्मण अपनी पत्नी और सम्पत्ति का त्यागकर शरणागत ग्रहण की।

अष्टादश सर्ग

कोशल देश का सुदत्त नाम का विख्यात राजा मुनि के निवास को जनकर उनके पास आया और दण्ड की भांति गिरकर प्रणाम किया। मुनि ने कहा हे राजन! तुम नैष्ठिक पद पाने के अधिकारी हो। जगत में बारम्बार जन्म, जरा एवं मृत्यु के दुःख को देखते हुए मुक्ति के लिए प्रयत्नशील हो जाओ। इस प्रकार सुगत ने राजा को उपदेश दिया। राजा उपदेश से परमपद का लाभ प्राप्त कर मुनि से विनम्र भाव से बोला, 'हे मानद! मैं अपनी श्रावस्ती में आपके निवास के लिए विहार (मठ) बनवाना चाहता हूँ, अतः आप मुझ दीन पर कृपाकर वहाँ निवास कर हमें कृतार्थ करें। इस प्रकार राजा के कहने पर मुनि ने कहा, 'जो अन्न दान देता है वह बल देता है, जो वस्त्र देता है वह सौन्दर्य देता है, किन्तु जो मुनियों को निवास देता है वह 'सब प्रकार का दान कर दिया' ऐसा कहलाता है। इस प्रकार वह स्वीकृति प्रदान की। स्वीकृति पाकर प्रसन्न राजा उपतिष्य के साथ वहाँ से चला गया। राजा ने जेतवन में जाकर जेत से खरीदने की इच्छा से प्रार्थना की। देने की न इच्छा वाला जेत बिहार की बात सुन तैयार हो गया। राजा ने विपुल धन देकर उस वन को खरीदकर शीघ्र ही उपतिष्य के निर्देशन में बिहार निर्माण प्रारम्भ करा दिया। वह विहार उस राजा के शक्ति की, उसके वैभव की, एवं उसके ज्ञान की, कीर्ति के समान हुआ।

उन्नीसवाँ सर्ग

ज्ञान के द्वारा अनेकों शास्त्रज्ञों को जीतकर महात्मा बुद्ध राजगृह से अपने पिता के नगर में गये। पुत्र के आने का समाचार सुनकर राजा नगरवासियों के साथ

आया। काषाय वस्त्र में देख राजा को बड़ा दु:ख हुआ। जब बुद्ध ने देखा कि मेरे पिता मुझे पुत्र ही मानते हैं, तब यो तुरन्त योग बल से आकाश में उड़ गये। वहां वे कहीं बिजली की तरह चमके, कहीं मेघ की तरह बरषे। सब लोग आश्चर्यचकित हो गये। आकाश में स्थित हो उन्होंने उपदेश दिया। राजा से कहा कि हे राजन! पुत्रशोक त्यागकर धर्मानन्द प्राप्त करें। उस समय बहुत से लोगों ने घर त्यागने का निश्चय किया। अनेक राजकुमार कृमिल, नन्द, उपनन्द, अनिरुद्ध, आनन्द, देवदत्त, उपालि तथा राजा शुद्धोदन भी भाइयों पर राज्यभार छोड़ सौगत मत को ग्रहण किया। उन दीक्षितों तथा पुरवासियों के साथ बुद्ध नगर में गये। नगर की स्त्रियाँ विलाप करते हुए उन्हें देख रही थी, लेकिन बुद्ध अनासक्त भाव से भिक्षा लेकर न्यग्रोध वन को चले गये।

बीसवाँ सर्ग

महात्मा बुद्ध कपिलवस्तु में कुछ समय निवास करके प्रसेनजित के रम्य नगर में गये, वहाँ से जेतवन को गये। वहाँ राजा सुदत्त ने कलश में जल लेकर, तथागत की पूजा कर, जेतवन उन्हें दे दिया। उस समय दर्शन की इच्छा से राजा प्रसेनजित वहाँ आया और प्रणाम कर कहा, हे दयासिंधो! मुझ अधम को निरन्तर आपका दर्शन होता रहे। हे साधो! मैं राग और राजधर्म से अत्यन्त पीड़ित हूँ। इस प्रकार प्रसेनजित की बात सुन, बुद्ध ने उसको उपदेश दिया तथा कहा, 'सद्धर्म में मन लगाओ, साधुओं का सत्संग करो।' इस प्रकार मुनि का उपदेश ग्रहण कर राज्य को नश्वर समझकर वह राजा श्रावस्ती को लौट गया।

पण्डितों एवं राजा के अनुरोध पर सौगत चमत्कार दिखाते हुए आकाश में सूर्य की तरह उदित हुए। इस प्रकार आश्चर्यजनक शक्तियों का प्रदर्शन कर महात्मा बुद्ध अपनी माता को धर्म की दीक्षा देने के लिए स्वर्ग चले गये। वहाँ दीक्षा देकर उन्होंने चातुर्मास किया एवं देवों से भिक्षा ग्रहण कर फिर पृथ्वी की ओर प्रस्थान किया।

इक्कीसवाँ सर्ग

स्वर्ग में अपनी माता तथा देवों को दीक्षा देने के बाद तथागत ने अन्य दीक्षा पाने योग्य लोगों को दीक्षित करने के लिए पृथ्वी पर भ्रमण किया। भ्रमण में अनेक राजाओं, यक्षों और ब्राह्मणों को अपने धर्म में दीक्षित किया, जिससे उनकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी। बुद्ध की इस बृद्धि को देख ईर्ष्यावश देवदत्त संघ में फूट

डाल दिया। उनको मार डालने की इच्छा से एक हाथी, जो मतवाला था, को ललकारा। लोगों में हाहाकार मच गया, लेकिन वह मतवाला हाथी सुगत के पास जाकर शान्त हो गया। सुगत ने उसके मस्तक पर हाथ फेरा। सुगत ने गंधार नगर में रहने वाले एक विषधर को भी विषहीन और जितेन्द्रिय बना दिया। इस प्रकार मुनि ने अजातशत्रु आदि अनेक राजाओं नर-नारियों को दीक्षित एवं अद्‌भुत चमत्कार कर संसार में एक नयी धर्मधारा प्रवाहित की। देवदत्त निन्दित कार्य कर विगर्हणा को प्राप्त हुआ।

बाइसवाँ सर्ग

महात्मा बुद्ध कुछ समय बाद राजगृह से पाटलिपुत्र को आये। मगधराज के मंत्री वर्षकार के द्वारा लिच्छवियों के लिए निर्मित एक किले में देवताओं द्वारा स्वर्ग से धन लाये जाते हुए देखकर बुद्ध ने उसे 'विश्व में यह प्रमुख नगर होगा', ऐसा कहा। वर्षकार ने विधिवत उनकी पूजा की, वहाँ से ये गंगा के किनारे आये। जिस द्वार से निकले उस द्वार का नाम गौतम द्वार हुआ। वे मुनि अपने योग बल से गंगा के उस पार आकाश मार्ग से चले गये। उस स्थान का नाम गौतम तीर्थ हुआ। वहीं से कुटी ग्राम में जाकर शम धर्म का उपदेश कर नदी ग्राम को गये, वहीं से वैशाली नगरी में जाकर आम्रपाली के उपवन में कुछ दिन ठहरे। मुनि आगमन का समाचार सुनकर आम्रपाली दर्शन हेतु यहाँ आयी। आम्रपाली को आते देख अपने शिष्यों को उपदेश दिया कि दुर्बलों के मन को पीड़ित करने वाली आम्रपाली आ रही है, अतः तुम लोग बोध रूपी औषधि से स्वयं को संयत करके ज्ञान में स्थिर हो जाओ। इस प्रकार उपदेश करते ही आम्रपाली आ गयी। मुनि को प्रणाम कर वह हाथ जोड़ बैठ गयी। मुनि ने कहा, 'युवा स्त्रियों में धर्म की जिज्ञाषा बहुत कठिनाई से होती है, वैठो'। फिर धर्म का उपदेश किया।

तेइसवाँ सर्ग

तदनन्तर आम्रपाली के घर चले जाने पर मुनि आगमन का समाचार सुनकर लिच्छवियों ने वहाँ दर्शन हेतु पधारा, जाकर लिच्छवियों ने प्रणाम कर भूमि पर आसन ग्रहण किया। उनका राजा सिंहासन पर, तब महात्मा बुद्ध ने प्रसन्न हो जन्म, जरा, मृत्यु आदि महाव्याधि से मुक्ति पाने के लिए तत्त्वज्ञानरूप दिव्य औषधि प्रदान किया। लिच्छवियों ने प्रणाम कर घर ले जाने की उत्सुकता से निवेदन किया, लेकिन 'आम्रपाली को बचन दे चुका हूँ' ऐसा कह मुनि ने

आम्रपाली का आतिथ्य स्वीकार किया। वहाँ से चातुर्मास व्रत के बाद सर्वज्ञ मुनि पुनः वैशाली लौट आये और मर्कट नामक सरोवर के तट पर बैठ गये। वहाँ वृक्ष मूल में बैठे मुनि को देखकर मार उनके पास आकर बोला, 'हे मुनि! नैरंजना के तट पर मैने कहा था, अब आपका कार्य समाप्त हो चुका है। निर्वाण में मन लगाइये, तब आपने कहा था, जब तक पापियों का उद्धार न कर लूँ, तब तक नहीं। अब तो निर्वाण लें। तब मुनि ने कहा, 'आज से तीसरे महीने मैं निर्वाण लूंगा। सोचो मत। मार वहाँ से चला गया। इसके बाद मुनि ने देह से वायु को खींचकर चित्त में लाकर चित्त को प्राण में समाधान करके प्राण को योग से जोड़ दिया। उस समय पहाड़ों सहित पृथ्वी हिल गयी, तब मुनि ने ऐसा संक्षोभ देख कहा, 'अब मैं भयवन्धन देने वाली आयु से निकल चुका हूँ।'

चौबीसवाँ सर्ग

आनन्द उस भूकम्प को देखकर काँप गया और सर्वज्ञ से कारण पूछा। तब महामुनि ने कहा मेरा भूलोक का निवास समाप्त हो चुका है। भूकम्प का यही कारण है। अब मेरी आयु मात्र तीन महीने शेष है। ऐसा सुनकर आनन्द को मर्माघात जैसा शोक हुआ। तब बुद्ध ने कहा, 'मैं शरीर रखूँ या त्यागूँ, दोनों मेरे लिए समान है। बुद्ध, धर्म मूर्ति होता है, मर्त्य देह से तुम्हें क्या लाभ?' ऐसा कहते हुए बहुविध उपदेश दिया। ऐसा उपदेश देने के बाद शीघ्र ही यह वृतान्त सुनकर लिच्छवि वहाँ पधारे। तब मुनि ने लिच्छवियों को समझाया, 'समय पर सूर्य भी आकाश से गिर जाता है, देवलोक से देवता भी गिरते हैं, सैकड़ों इन्द्र समाप्त हो गये। यहाँ सदा कोई रहने वाला नहीं है।' ऐसा समझाते हुए तथा धर्मरत रहने का उपदेश देकर मुनि ने लिच्छवियों को घर जाने के लिए कहा, तब वे लिच्छवि पराधीन होकर सन्तप्त शरीर मृतक के समान घर लौटे।

पच्चीसवाँ सर्ग

महात्मा बुद्ध को निर्वाण की इच्छा से वैशाली छोड़कर चल देने पर लिच्छवियों के राजा सिंह ने बहुत विलाप किये। महात्मा बुद्ध ने पीछे मुड़कर कहा, 'हे भाई, हे वैशाली! इस जन्म में मैं पुनः नहीं देखूँगा। ऐसा कह पीछे आते हुए सबको लौटने को कहा और यहाँ से वे महात्मा भोगवती नगरी को गये। वहाँ कुछ क्षण रुक कर अनुचरों को कुछ उपदेश दिया। तदनन्तर महात्मा बुद्ध पावापुरी को गये, वहाँ मल्लों ने उनका स्वागत किया। यहाँ दयानिधि ने चुन्द के घर

अन्तिम भोजन किया। वहाँ से चुन्द को उपदेश देकर वे कुशीनगर को गये। वहीं हिरण्यवती नदी में स्नानकर बुद्ध ने आनन्द से 'शयन स्थान रचो' ऐसा आदेश दिया, तब उस स्थान में निर्वाण मुद्रा में बैठकर नरश्रेष्ठ ने कहा, 'आनन्द! अब मेरे अन्तिम समय में दर्शन के लिए मेरे भक्त मल्लों को भी सूचना कर दो, जिससे वे बाद में पश्चाताप न करें।' इस प्रकार मल्लों को बुलाकर महात्मा बुद्ध ने अपना अन्तिम उपदेश दिया तथा आलस्य छोड़कर विनय युक्त धर्म का आचरण करने को कहा। इस प्रकार मल्ल समूह मुनि की वाणी से बोध प्राप्त कर विषाद मन घर को आये।

छब्बीसवाँ सर्ग

इसके बाद 'सुभद्र' नाम का एक त्रिदण्डी मुनि को देखने के लिए आया और कहा- 'निर्वाण के अन्तिम क्षण में मुनि को मैं देखने के लिए आया हूँ। किन्तु 'यह धर्म पूछने के बहाने बाद-विवाद न कर दे', इस आशंका से आनन्द ने दर्शन से रोक दिया। तब लोगों के आशय को जानने वाले मुनि ने कहा, 'हे आनन्द! उसको मत रोको'। मुनि के कहने पर वह दर्शन हेतु समीप गया और कहा, हे कृपापुंज! सभी दार्शनिकों से भिन्न आप अपना मार्ग हमको बतायें। तब बुद्ध ने उसको आरोग्य मार्ग को व्याख्या करके बताया, तब उस विप्र ने बुद्ध मत को जानकर पूर्व मत का परित्याग कर उस उत्तम मन्त्र को स्वीकार किया और गुरु के निर्वाण के पहले ही प्राण त्याग दिया। संस्कार के ज्ञाता मुनि ने शिष्यों को उसका अन्तिम संस्कार करने को आदेश दिया। इसके बाद महात्मा बुद्ध ने अपने जाने के बाद अपने उपदेशों को ही श्रेष्ठ मानकर तदनुसार आचरण करने को कह अपना वह शरीर ध्यानविधि के सहारे छोड़ दिया और सदा के लिए शान्त हो गये।

सत्ताइसवाँ सर्ग

जब महात्मा बुद्ध सदा के लिए शान्त हो गये तब मल्लों ने उनके पार्थिव शरीर को स्वर्णमयी शिविका में रखा और उस शिविका को कन्धे पर रख नगरद्वार से निकल कर हिरण्यवती नदी के पार मुकुट चैत्य के नीचे सुन्दर चिता रचा। उस समय आकाश से देवताओं ने सुन्दर नन्दन वन के पुष्पों की वर्षा की, गन्धर्वो ने नृत्य गीतादि किया। कुछ लोगों ने मुनि के स्तोत्रों का पाठ किया। इस प्रकार चिता पर शरीर रखकर तीन बार आग लगाने पर भी चिता नहीं जली

क्योंकि उनका शिष्य कश्यप दर्शन के लिए आ रहा था, जब वह आया तब उसके दर्शन के बाद चिता स्वयं जल उठी। अग्नि ने मुनि के चर्म, मांस आदि जला दिये, लेकिन हड्डियों को नहीं जला पाये। मल्लों ने उन हड्डियों को धोकर स्वर्ण कलश में रखकर अपने सुन्दर नगर में स्थापित किया।

अट्ठाइसवाँ सर्ग

कुछ समय बाद पड़ोसी राजाओं के दूत मल्लों से उस मुनि की धातु को लेने के लिए आये, किन्तु मल्लों द्वारा देना अस्वीकार कर देने पर वे दूत राजाओं से जाकर कहे, तब सात राजाओं का समूह मल्लों पर चढ़ाई कर दिया। उसी समय 'द्रोण' नाम का एक ब्राह्मण आया और उनको समझाया, तब राजाओं ने कहा, 'हम तो शान्ति चाहते ही हैं, लेकिन ये मल्ल नहीं चाहते,' तब उस ब्राह्मण ने राजाओं से कहने के बाद मल्लों के पास जाकर उनको भी समझाया। मल्ल तैयार हो ये। मल्लों ने उस धातु का आठ भाग किया। सात भाग सात राजाओं को दिया तथा एक भाग अपने ले लिया। राजाओं ने उस धातु से सात स्तूप बनवाया। इस द्रोण ब्राह्मण ने अपने देश में स्तूप बनवाने के लिए केवल घट ले लिया तथा पिसल मुनि ने भक्ति के कारण केवल भस्म लिया। इस तरह पृथ्वी पर धातुगर्भित आठ, घटगर्भित नवाँ एवं भस्मगर्भित दसवाँ – ये दस स्तूप बने।

कुछ समय बाद पाँच भिक्षुओं ने एक गोष्ठी कर आनन्द को निश्चित कर तथागत के उपदेश को फिर दुहराने के लिए कहा, जिससे वे उपदेश ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित किए गए। इसके बाद कालान्तर में धर्मप्रिय अशोक का जन्म हुआ। कुशल अशोक ने उन सात स्तूपों से मुनि की धातु लेकर एक दिन के अन्दर अस्सी हजार स्तूपों में क्रमशः स्थापित किया। रामपुर में आठवाँ स्तूप था, जहाँ विश्वासी सर्पो द्वारा उसकी रक्षा होती थी, उससे कोई भी धातु न ले सका। राज्य के विविध सुखोपभोग होने पर भी घर में रहते हुए विशुद्ध चित्त अशोक ने उत्तम धर्म लाभ किया। इस प्रकार जिस किसी ने मुनि का पूजन किया, करता है, करेगा, वह अवश्य उत्तम फल पाया, पाता है और पायेगा। जीवित मुनि को नमस्कार कर जो फल लोग पाते थे, वही फल धातु-पूजा से पायेंगे- इसमें संशय नहीं है।

बुद्धचरित में प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री

बुद्धचरित एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें जगह-जगह अनेक ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध होते हैं। इस ग्रन्थ का आधार ही एक इतिहास प्रसिद्ध

व्यक्ति का जीवनचरित है। श्रीमद्भागवत भी कलियुग के सम्प्रवृत्त होने पर, बुद्ध को विष्णु के भावी अवतार के नाम से 'बौधावतार' घोषित कर भविष्यवाणी करता है-

ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम्।
बुद्ध नाम्ना जनसुतः कीकटेषु भविष्यति।

तथा बौध धर्म की भिन्नता होने पर भी आज भी अनेकों स्थितियों में सनातन धर्म के कर्मकाण्डों में संकल्प लेते समय 'बौधावतरे' (बौद्धावतार में) बोला जाता है। अर्थात बुद्ध को भी विष्णु के अवतारों से पृथक् नहीं किया जा सकता। गीतगोविन्द स्तोत्र में भी- 'केशव धृत बुद्ध शरीरं जय जगदीश हरे' ऐसा गान किया गया है, जिससे ये विष्णु के अवतार सिद्ध होते हैं।

हिन्दुओं के अनुसार भी विष्णु के अवतार, सिद्ध, अद्वितीय, विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न महात्मा बुद्ध के वर्णन के साथ ही इस ग्रन्थ में कवि द्वारा रामायण, महाभारत एवं पुराणों एवं पालि साहित्य आदि में प्राप्त अनेकों ऐतिहासिक महापुरूषों, राजाओं एवं ऋषियों का उल्लेख संकेत रूप में प्राप्त होता है।

वैराग्य का कारण

बुद्ध के वैराग्यप्राप्ति का कारण था? इसका उत्तर राजकुमार के प्रथम विहार के समय मार्ग में जाते हुए वृद्ध को देखकर सारथी से पूछा गया प्रशन और सारथी द्वारा दिया गया उत्तर में मिल सकता है-

क एष भोः सूत! नरोऽभ्युपेतः ? केशैः सितैर्यष्टिविषक्तहस्तः।
भ्रूसंवृताक्षः शिथिलानतांगः, किं विक्रियैषा प्रकृतिर्यदृच्छा॥ बुद्धच. 3-28

(हे सारथि! सफेद बालों से युक्त, लाठी पर टिके हुए हाथ वाला, भौंहों से ढके हुए नेत्रों वाला, ढीले और झुके हुए अंगों वाला, सामने आया हुआ यह मनुष्य कौन है? क्या यह विकार है अथवा स्वाभाविक रूप है अथवा यह कोई संयोग है?)

सारथी ने इसका समुचित उत्तर दिया-

रूपस्य हन्त्री व्यसनं बलस्य, शोकस्य योनिर्निधनं रतीनाम।
नाशः स्मृतीनां रिपुरिन्द्रियाणाम् एषा जरा नाम ययैष भग्नः / बुद्धच. 3-30

(यह रूप का विनाश करने वाला, बल के लिए संकटस्वरूप, दुःख की उत्पत्ति का मूल कारण, कामसुखों को समाप्त करने वाला, स्मृति को नष्ट करने वाला, इन्द्रियों का शत्रु बुढ़ापा है, जिसके द्वारा यह पुरुष टूट गया है।)

सारथी ने पुनः कहा

पीतं ह्यनेनापि पयः शिशुत्वे, कालेन भूयः परिमृष्टमुर्व्याम।
क्रमेण भूत्वा च युवा वपुष्मान्, क्रमेण तेनैव जरामुपेतः। बुद्धच. 3-31

(निश्चय ही इसने भी बचपन में दूध पीया है, समय के अनुसार पृथ्वी पर लोट लगायी है और क्रम से सुन्दर शरीर वाला युवा होकर उसी क्रम में बुढ़ापे को प्राप्त किया है। तात्पर्य यह है कि इस (वृद्ध) की ऐसी अवस्था अकस्मात् ही नहीं हो गयी है, वरन् एक निश्चित कम-जन्म, बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, अधेड़ावस्था, वृद्धावस्था के अनुसार हुई है।)

जब राजकुमार द्वितीय विहार पर बाहर निकले, तब उन्हीं देवताओं ने एक रोगी मनुष्य का सृजन कर उनके सामने दर्शाया। उसे देखकर गौतम ने सूत से पूछा-

स्थूलोदरः श्वासचलच्छरीरः स्रस्तांसबाहुः कृशपाण्डुगात्रः।
अम्बेति वाचं करुणं ब्रूवाणः परं समाश्लिष्य नरः क एषः?॥

(मोटे पेट वाला, साँस लेने से काँपते हुए शरीर वाला, झुके हुए ढीले कन्धे और भुजा वाला, दुर्बल और पीले शरीर वाला, दूसरे का सहारा लेकर 'हाय माता!' इस प्रकार के करुणापूर्ण वचन कहता हुआ यह मनुष्य कौन है?)

तब सूत ने उनसे कहा, ' रोगाभिधानः सुमहाननर्थः' इति। (रोगग्रस्त होना महान अनर्थ है।)

राजकुमार के तृतीय विहार के समय देवताओं ने एक नया दृष्य प्रस्तुत किया जिसमें एक मृत मनुष्य के शव को चार मनुष्य उठा कर ले जा रहे थे। राजकुमार ने पूछा, ये चार लोग क्या ले जा रहे हैं? सूत ने उत्तर दिया-

बुद्धीन्द्रियप्राणगुणैर्वियुक्तः सुप्तो विसंज्ञः तृणकाष्ठभूतः।
संवर्ध्य संरक्ष्य च यत्नवद्भिः प्रियाप्रियैस्त्यज्यत एष कोऽपि॥

(बुद्धि, इन्द्रियों, पुराणों और गुणों से बिछुड़ा हुआ महानिन्द्रा में सोया हुआ, चेतना से शून्य, तृण और काष्ठ के समान निर्जीव, यह कोई (मृत मनुष्य) यत्न करने वाले प्रिय और अप्रिय लोगों के द्वारा अच्छी तरह बाँधकर और भली-भाँति रक्षा करके (सदा के लिए) छोड़ा जा रहा है।)

यह सुनकर गौतम का मन दुःख से भर गया।

भट्टिकाव्य

भट्टिकाव्य महाकवि भट्टि द्वारा रचित महाकाव्य है। इसका वास्तविक नाम 'रावणवध' है। इसमें भगवान रामचंद्र की कथा जन्म से लगाकर लंकेश्वर

रावण के संहार तक उपवर्णित है। यह महाकाव्य संस्कृत साहित्य के दो महान परम्पराओं – रामायण एवं पाणिनीय व्याकरण का मिश्रण होने के नाते कला और विज्ञान का समिश्रण जैसा है। अतः इसे साहित्य में एक नया और साहसपूर्ण प्रयोग माना जाता है।

भट्टि ने स्वयं अपनी रचना का गौरव प्रकट करते हुए कहा है कि यह मेरी रचना व्याकरण के ज्ञान से हीन पाठकों के लिए नहीं है। यह काव्य टीका के सहारे ही समझा जा सकता है। यह मेधावी विद्वान के मनोविनोद के लिए रचा गया है, तथा सुबोध छात्र को प्रायोगिक पद्धति से व्याकरण के दुरूह नियमों से अवगत कराने के लिए।

भट्टिकाव्य की प्रौढ़ता ने उसे कठिन होते हुए भी जनप्रिय एवं मान्य बनाया है। प्राचीन पठनपाठन की परिपाटी में भट्टिकाव्य को सुप्रसिद्ध पंचमहाकाव्य (रघुवंश, कुमारसंभव, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नैषधचरित) के समान स्थान दिया गया है। लगभग 14 टीकाएँ जयमंगला, मल्लिनाथ की सर्वपथीन एवं जीवानंद कृत हैं। माधवीयधातुवृत्ति में आदि शंकराचार्य द्वारा भट्टिकाव्य पर प्रणीत टीका का उल्लेख मिलता है।

संरचना

इस महाकाव्य का उपजीव्य ग्रंथ वाल्मीकिकृत रामायण है। महाकाव्य में चार काण्ड हैं। कथाभाग के उपकथन की दृष्टि से यह महाकाव्य 22 सर्गो में विभाजित है तथा महाकाव्य के सकल लक्षणों से समन्वित है।

प्रकीर्णकाण्डम्
अधिकारकाण्डम्
प्रसन्नकाण्डम्
तिङन्तकाण्डम्

रचना का मुख्य उद्देश्य व्याकरण एवं साहित्य के लक्षणों को लक्ष्य द्वारा उपस्थित करने का है। लक्ष्य द्वारा लक्षणों को उपस्थित करने की दृष्टि से यह महाकाव्य चार कांडों में विभाजित है, जिसमें तीन कांड संस्कृत व्याकरण के अनुसार विविध शब्दरूपों को प्रयुक्त कर रचयिता की उद्देश्यसिद्धि करते हैं। मध्य में एक कांड काव्यसौष्ठव के कतिपय अंगों को अभिलक्षित कर रचा गया है। रचना का अनुक्रम इस प्रकार है कि प्रथम कांड व्याकरणानुसारी विविध शब्दरूपों को प्रकीर्ण रूप से संगृहीत करता है। द्वितीय कांड 'अधिकार कांड'

है, जिसमें पाणिनीय व्याकरण के कतिपय विशिष्ट अधिकारों में प्रदर्शित नियमों के अनुसार शब्दप्रयोग है। तृतीय कांड साहित्यिक विशेषताओं को अभिलक्षित करने की दृष्टि से रचा गया है अतएव इस कांड को महाकवि ने 'प्रसन्नकांड' की संज्ञा दी है। इस कांड में चार अधिकरण हैं–प्रथम अधिकरण में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार के लक्ष्य हैं। द्वितीय अधिकरण में माधुर्य गुण के स्वरूप का प्रदर्शन लक्ष्य द्वारा किया गया है, तृतीय अधिकरण में भाविकत्व का स्वरूप प्रदर्शन करते हुए कथानक के प्रसंगानुसार राजनीति के विविध तत्त्वों एवं उपायों पर प्रकाश डाला गया है। प्रसन्न कांड का चौथा अधिकरण इस महाकाव्य का एक विशेष रूप है। इसमें ऐसे पद्यों की रचना की गई है, जिनमें संस्कृत तथा प्राकृत भाषा का समानांतर समावेश है, वही पद्य संस्कृत में उपनिबद्ध है, जिसकी पदावली प्राकृत पद्य का भी यथावत् स्वरूप लिए हैं और दोनों भाषा में प्रतिपाद्य अर्थ एक ही है। भाषा सम का उदाहरण प्रस्तुत करता हुआ यह अंश भट्टिकाव्य की निजी विशेषता है। अंतिम कांड पुनः संस्कृत व्याकरण के एक जटिल स्वरूप तिङन्त के विविध शब्दरूप को प्रदर्शित करता है। यह कांड सबसे बड़ा है।

लक्षणात्मक इन चार कांडों में कथावस्तु के विभाजन की दृष्टि से प्रथम कांड में पहले पाँच सर्ग हैं, जिनमें क्रमशः रामजन्म, सीताविवाह, राम का वनगमन एवं सीताहरण तथा राम के द्वारा सीतान्वेषण का उपक्रम वर्णित है। द्वितीय कांड अगले चार सर्गो को व्याप्त करता है, जिसमें सुग्रीव का राज्याभिषेक, वानर भटों द्वारा सीता की खोज, लौट आने पर अशोकवाटिका का भंग और मारुति को पकड़कर सभा में उपस्थित किए जाने की कथावस्तु वर्णित है। तीसरे, प्रसन्नकांड में अगले चार सर्ग हैं, जिनमें सीता के अभिज्ञान का प्रदर्शन, लंका में प्रभात का वर्णन, विभीषण का राम के पास आगमन तथा सेतुबंध की कथा है। अंतिम, तिङन्त कांड अगले नौ सर्ग ले लेता है, जिनमें शरबंध से लगाकर राजा रामचंद्र के अयोध्या लौट आने तक का कथाभाग वर्णित है। चारों कांड और 22 सर्गो में 1625 पद्य हैं, जिनमें प्रथम पद्य मंगलाचरण वस्तुनिर्देशात्मक है तथा अंतिम पद्य काव्योपसंहार का है। 1625 पद्यसंख्या के इस महाकाव्य में अधिकांश प्रयोग अनुष्टुभ श्लोकों का है, जिनमें सर्ग छह, नौ तथा 14 वाँ एवं 12 वाँ। दसवें सर्ग में विविध छंदों का प्रयोग किया गया है, जिनमें पुष्पिताग्रा प्रमुख है। इनके अतिरिक्त प्रहर्षिणी, मालिनी, औपच्छंदसिक, वंशस्थ, वैतालीय, अश्वललित, नंदन, पृथ्वी, रुचिरा, नर्कुटक, तनुमध्या, त्रोटक, द्रुतविलंबित, प्रमिताक्षरा, प्रहरणकलिका, मंदाक्रांता, शार्दूलविक्रीड़ित एवं स्रग्धरा का छुटपुट

प्रयोग दिखाई देता है। साहित्य की दृष्टि से भट्टिकाव्य में प्रधानतः ओजोगुण एवं गौड़ी रीति है, तथापि अन्य माधुर्यादि गुणों के एंव वैदर्भी तथा लाटी रीति के निदर्शन भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

रचयिता एवं रचनाकाल

स्वयं प्रणेता के अनुसार भट्टिकाव्य की रचना गुर्जर देश के अंतर्गत बलभी नगर में हुई। भट्टि कवि का नाम 'भर्तृ' शब्द का अपभ्रंश रूप है। कतिपय समीक्षक कवि का पूरा नाम भर्तृहरि मानते हैं, परंतु यह भर्तृहरि निश्चित ही शतकत्रय के निर्माता अथवा वाक्यपदीय के प्रणेता भर्तृहरि से भिन्न हैं। भट्टि उपनाम भर्तृहरि कवि वलभीनरेश श्रीधर सेन से संबंधित है। महाकवि भट्टि का समय ईसवी छठी शताब्दी का उत्तरार्ध सर्वसम्मत है। अलंकार वर्ग में निदर्शित उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भट्टि और भामह एक ही परंपरा के अनुयायी हैं।

अष्टाध्यायी और भट्टिकाव्य

भट्टिकाव्य की रचना के पूर्व लगभग 10 शताब्दियों तक पाणिनि का अष्टाध्यायी का ही गहन पठन-पाठन होता आ रहा था। भट्टि का उद्देश्य अष्टाध्यायी के अध्ययन को आसान बनाने वाला साधन निर्मित करना था। ऐसा उन्होने पहले से मौजूद व्याकरण के भाष्यग्रन्थों में दिए गये उदाहरणों को रामकथा के साथ सम्बद्ध करके किया। इससे सीखने में सरलता और सरसता आ गई।

भट्टिकाव्य और जावा भाषा का रामायण

भट्टिकाव्य का प्रभाव सुदूर जावा तक देखने को मिलता है। वहाँ का प्राचीन जावा भाषा का रामायण भट्टिकाव्य पर ही आधारित है। यह रामायण जावा भाषा का वर्तमान में बचा हुआ सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। यह रामायण भट्टिकाव्य को 12वें सर्ग तक पूर्णतः अनुसरण करता है। कभी-कभी तो पूरी की पूरी कविता का अनुवाद कर दिया गया है। 12वें सर्ग के बाद जावा भाषा का रामायण भट्टिकाव्य से अलग होता दिखता है।

कुमारसंभवम्

कुमारसम्भवम् (अर्थ-'कुमार का जन्म') महाकवि कालिदास विरचित कार्तिकेय के जन्म से संबंधित महाकाव्य जिसकी गणना संस्कृत के पंच

महाकाव्यों में की जाती है। इस महाकाव्य में अनेक स्थलों पर स्मरणीय और मनोरम वर्णन हुआ है। हिमालयवर्णन, पार्वती की तपस्या, ब्रह्मचारी की शिवनिंदा, वसन्त आगमन, शिवपार्वती विवाह और रतिक्रिया वर्णन अदभुत अनुभूति उत्पन्न करते हैं। कालिदास का बाला पार्वती, तपस्विनी पार्वती, विनयवती पार्वती और प्रगल्भ पार्वती आदि रूपों नारी का चित्रण अद्‌भुत है।

कवित्व व काव्य-कला के हर प्रतिमान की कसौटी पर 'कुमारसंभव' एक श्रेष्ठ महाकाव्य सिद्ध होता है। मानव-मन में कवि की विलक्षण पैठ सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। पार्वती, शिव, ब्रह्मचारी आदि सभी पात्र मौलिक व्यक्तित्त्व व जीवन्तता से सम्पन्न है। प्रकृति-चित्रण में कवि का असाधारण नैपुण्य दर्शनीय है। काम-दहन तथा कठोर तपस्या के फलस्वरूप पार्वती को शिव की प्राप्ति सांस्कृतिक महत्त्व के प्रसंग है। कवि ने दिव्य दम्पत्ति को साधारण मानव प्रेमी-प्रेमिका के रूप में प्रस्तुत कर मानवीय प्रणय व गार्हस्थ्य जीवन को गरिमा-मंडित किया है।

यह महाकाव्य 17 सर्गों में समाप्त हुआ है, किंतु लोक धारणा है कि केवल प्रथम आठ सर्ग ही कालिदास रचित हैं। बाद के अन्य नौ सर्ग अन्य कवि की रचना है, ऐसा माना जाता है। कुछ लोगों की धारणा है कि काव्य आठ सर्गों में ही शिवपार्वती समागम के साथ कुमार के जन्म की पूर्वसूचना के साथ ही समाप्त हो जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि आठवें सर्ग में शिवपार्वती के संभोग का वर्णन करने के कारण कालिदास को कुष्ठ हो गया और वे लिख न सके। एक मत यह भी है कि उनका संभोगवर्णन जनमानस को रुचि नहीं इसलिए उन्होंने आगे नहीं लिखा।

कथा

कुमारसंभव का शाब्दिक अर्थ है- 'कुमार का जन्म'। यहाँ 'कुमार' से आशय शिव-पार्वती के पुत्र कार्तिकेय या स्कन्द से है। कवि का उद्देश्य शिव-पार्वती की तपस्या, प्रेम, विवाह और उनके पुत्र कुमार कार्तिकेय के जन्म की पौराणिक कथा को एक महाकाव्य का रूप दीया है। कालिदास ने कथा के सूत्र कहाँ से लिये, यह बताना कठिन है। वैसे 'शिव महापुराण' व अन्य पुराणों में इस कथा के अनेक प्रसंग व सूत्र मिलते हैं, पर पुराणों का रचनाकाल अनिश्चित होने के कारण यह बताना सम्भव नहीं कि कालिदास ने पुराणों से यह कथा ली है या पुराणों ने ही कालिदास से काव्य से प्रभावित होकर इसके अनेक प्रसंगो व

अभिव्यक्तियों को अपना लिया है। उदाहरण के लिए शिव महापुराण में कुमारसम्भव की अनेक पंक्तियां, वाक्य, शब्द-प्रयोग व प्रसंग उसी रूप में उपलब्ध है। 'रामायण' के बालकाण्ड के सैंतीसवें सर्ग तथा 'महाभारत' के वन पर्व के अध्याय 225 में भी कार्तिकेय या स्कंद के जन्म की कथा संक्षेप में कही गई है।

इसमें वर्णित कथा संक्षेप में इस प्रकार है-

पर्वतराज हिमालय के मैनाक नामक पुत्र और गौरी नामक कन्या हुई। कन्या पार्वती और उमा नाम से भी विख्यात हुई, जब कन्या हुई तो एक दिन उसके घर नारद आए और भविष्यवाणी की कि कन्या का विवाह शिव से होगा। यह भविष्यवाणी सुनकर हिमालय निश्चिंत हो गए। उधर शिव हिमालय के शिखर पर तप कर रहे थे। हिमालय ने एक सखी के साथ उमा को उनकी परिचर्या के लिये भेज दिया और उमा भक्तिभाव से शिव की सेवा करने लगी।

उन्हीं दिनों तारकासुर से युद्ध में देवता लोग पराजित हो गए। दैत्य अनेक प्रकार के छल करने लगा, तब इन्द्र सहित सारे देवता ब्रह्मा के पास आए। तारकासुर के निमित योग्य सेनापति की माँग की, तब ब्रह्मा ने कहा कि शंकर के वीर्य से उत्पन्न पुरूष ही तुम्हारा योग्य सेनापति हो सकता है। इसलिए तुम लोग प्रयास करो, जिससे शिव पार्वती के प्रति आसक्त हों। यदी शिव ने पार्वती को स्वीकार कर लिया तो पार्वती से जो पुत्र होगा तो उसके सेनापति बनने पर तुम्हारी विजय होगी। तत्पश्चात् इंद्रादि देवता शिव के विरक्त भाव को हटाने के उपाय पर विचार करने के लिये एकत्र हुए। जब मदन उस सभा में आए तो इंद्र ने उनसे अननुरोध किया कि वे अपने मित्र वसन्त के साथ शिव के तपस्या स्थान पर जाएँ और शिव को पार्वती के प्रति आसक्त करें। तदनुसार मदन अपनी पत्नी रति और मित्र वसन्त को लेकर शंकर के आश्रम में पहुँचा। जब पार्वती कमलबीज की माला अर्पण करने शिव के निकट पहुँची और शिव ने उसे लेने के लिये हाथ बढ़ाया, तब मदन ने अपने धनुष पर मोहनास्त्र चढ़ाया। तत्क्षण शिव का मन विचलित हुआ। शंकर ने इस प्रकार मन के अकस्मात् विकृत होने का कारण जानने के लिये चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। उन्हें शरसंधान करता मदन दिखाई पड़ा। उसे देखते ही शिव आग बबूला हो गए, उनके तृतीय नेत्र से अग्निज्वाला प्रकट हुई और मदन उसमें भस्म हो गया।

रति अपने पति को इस प्रकार भस्म होते देख विलाप करने लगी और वसंत से चिता तैयार करने को कहा और स्वयं प्राण त्यागने को तैयार हुई। तब आकाशवाणी हुई कि थोड़ा सब्र करो तुम्हे तुम्हारा पति पुन प्राप्त होगा।

उधर शिव नारीसंपर्क से बचने के लिए अंतर्धान हो गए। मदन के भस्म होने और शिव के अंतर्धान हो जाने से पार्वती ने अपना सारा मनोरथ विफल होते देखा और यह सोचकर कि यह रूपसौंदर्य व्यर्थ है, वे शिव को प्रसन्न करने के लिए एक पर्वत शिखर पर जा कर उग्र तप करने लगी। कुछ काल के अनन्तर शिव का मन पिघला उन्होंने पार्वती को स्वीकार करने का विचार किया। किन्तु इससे पूर्व उन्होंने पार्वती की परीक्षा करने का निश्चय किया और वे एक तपस्वी के आश्रम में पहुँचे। पार्वती ने अतिथि के रूप में उनका समुचित सत्कार किया। तदन्तर उस तरुण तपस्वी ने पार्वती से जिज्ञासा की कि किसकी प्राप्ति के लिए इतनी उग्र तपस्या कर रही हो। अतिथि के प्रश्न को सुनकर पार्वती लज्जित हुई और अपने मनोभाव प्रकट करने में संकोच करने लगी, तब उनकी सखी ने शिव की प्राप्ति की इच्छा की बात कही। यह सुनकर तपस्वी वेशधारी शिव, शिव के दुर्गुणों और कुरूपता आदि का उल्लेख कर उनकी निन्दा करने लगे। पार्वती को यह शिव निन्दा नहीं हुई और उन्हे डाँटने लगी। तब शिव अपने स्वरूप में प्रकट हुए और उनका हाथ पकड़ लिया।

तत्पश्चात शिव ने सप्तर्षि के बुलाकर हिमालय के पास भेजा। उन्होंने उनसे जाकर बताया कि शिव ने पार्वती का पाणिग्रहण करने की इच्छा प्रकट की है, तब विवाह का निश्चय हुआ और विवाह की तैयारी होने लगी। सप्तमातृकाएँ दूल्हे के योग्य वस्त्र लेकर आई पर शिव ने उन सब को स्वीकार नहीं किया और नन्दी पर सवार होकर ही चले। पश्चात् विवाह की सारी क्रियाएँ हुई। विवाह संपन्न होने पर शिव सहित पार्वती ने ब्रह्मा को प्रणाम किया। ब्रह्मा ने आशीर्वाद दिया। तुम्हें वीर पुत्र हो। अप्सराओं ने आकर वर-वधु के सम्मुख एक नाटक प्रस्तुत किया। नाटक समाप्त होने के बाद इंद्र ने शिव से मदन को जीवित करने का अनुरोध किया। अंत में शिव और पार्वती के एकांत मिलन की चर्चा विस्तार से की गई है।

संरचना

कुमारसम्भव महाकाव्य 17 सर्गों में समाप्त हुआ है, किन्तु लोक धारणा है कि केवल प्रथम आठ सर्ग ही कालिदास रचित हैं और बाद के अन्य नौ सर्ग अन्य कवि की रचना है। इस महाकाव्य के नाम से लगता है कि इसमें कुमार के जन्म तक का वृतान्त होना चाहिए, किन्तु आठ सर्गों में शिव-पार्वती विवाह तक का ही प्रसंग आ पाया है और लगता है कि यह ग्रन्थ कालिदास ने अपूर्ण

ही छोड़ दिया। कुछ लोगों की धारणा है कि काव्य आठ सर्गों में ही शिवपार्वती समागम के साथ कुमार के जन्म की पूर्वसूचना के साथ ही समाप्त हो जाता है। संभव है, कालिदास का उद्देश्य कुमार कार्तिकेय के जन्म का संकेत मात्र करना रहा हो, न कि उसका साक्षात् विस्तृत वर्णन। इस दृष्टि से 'कुमारसम्भव' अपने वर्तमान रूप में एक संपूर्ण काव्य ही माना जाना चाहिए, अधूरी रचना नहीं।

कालिदास-प्रणीत अंश के आठवें सर्ग में कवि ने शिव व पार्वती की विवाहोपरान्त कामक्रीड़ाओं का काफी खुलकर वर्णन किया गया है। परम्परा से यह प्रसिद्ध है कि कालिदास के इस वर्णन से पार्वती जी रुष्ट हो गई और इसे माता-पिता के नग्न शृंगार-चित्रण के समान मानते हुए कवि को शाप दिया, जिसके कारण कालिदास अपनी कवित्व-शक्ति से वंचित हो गए व काव्य को पूरा नहीं कर सके। एक मान्यता यह भी है कि शिव-पार्वती के संभोग-वर्णन को अनुचित मानते हुए तत्कालीन सहृदयों ने कालिदास की कटु आलोचना की, जिससे हतोत्साहित होकर उन्होंने काव्य को अधूरा ही छोड़ दिया। संभवतः इसलिए कवि काव्य के नामकरण के अनुसार इसमें कुमार कार्तिकेय के जन्म के प्रसंग का वर्णन नहीं कर सका। एक मत यह भी है कि इस काव्य की एकमात्र मूल में से आठवें सर्ग के बाद के पन्ने किसी कारण से तुल्य या नष्ट हो गए, जिनमें कुमार-जन्म का वृत्तान्त रहा होगा। एक सर्ग समाप्त होने के बाद कवि की अकस्मात मृत्यु हो गई और यह अधूरा ही रह गया, पर यह कल्पना उचित प्रतीत नहीं होती, क्योंकि फिर तो 'कुमारसम्भव' को कालिदास की अंतिम रचना मानना पड़ेगा, जबकि 'रघुवंश' कुमारसंभव' के बाद का काव्य मालूम पड़ता है।

नौवें से सत्रहवें सर्ग तक का भाग कालिदास कृत नहीं है, इस विषय में अनेक तर्क दिये गये हैं। अरुणगिरिनाथ व मल्लिनाथ ने 'कुमारसंभव' के आरम्भिक आठ सर्गों पर ही अपनी टीका लिखी है। यह सम्भवतः इसलिए हुए कि उस समय आगे के सर्ग उन्हें उपलब्ध नहीं थे। काव्यशास्त्र के दूसरे आचार्यों ने प्रारम्भ के आठ सर्गों में से ही अपने ग्रन्थों में श्लोक उद्धृत हैं, आगे के नौ सर्गों में से एक भी उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया। तीसरे इन सर्गों में कवित्व व काव्य कला का स्तर पूर्व के आठ सर्गों की तुलना में घटिया है, उसे कालिदास के कवित्व शक्ति के अनुरूप नहीं माना जा सकता है। इस भाग के श्लोकों में व्याकरण की अनेक त्रुटियाँ छन्दोभंग, यतिभंग तथा अनेक दोष दिखाई देते हैं, जिससे कोई सन्देह नहीं रह जाता कि इन परवर्ती नौ सर्गों की रचना बाद में

किसी अज्ञातनामा कवि ने की और कालिदास की मूल रचना के साथ उसे मिला दिया।

बाद के नौ सर्गों में कुमार कार्तिकेय के जन्म बाल्यकाल, युवा होने पर उसके द्वारा देवसेना का नेतृत्व तथा अत्याचारी तारकासुर वध आदि का वृत्तान्त विस्तार से प्रस्तुत किया है। इस प्रकार नौ सर्गों के इस अज्ञात लेखक ने काव्य के नाम को ध्यान रखते हुए कुमार कार्तिकेय के जन्म आदि प्रसंगों की रचना कर अपनी दृष्टि से कालिदास के अपूर्ण काव्य को पूरा करने का प्रयास किया है

प्रथम सर्ग

कालिदास ने कुमारसम्भव को हिमालय-वर्णन से आरम्भ किया है। प्रथम सर्ग के प्रारम्भिक सत्रह पद्यों में कवि ने हिमालय पर्वत का भव्य व गरिमापूर्ण चित्रण करते हुए इसकी विविध छवियों, प्राकृतिक वैभव इसके निवासियों के कार्य-कलापों तथा पर्वतराज के पुराकथात्मक व्यक्तित्त्व का उदात्त चित्रण किया है।

अस्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्यां इव मानदण्डः॥

(अर्थः (भारतवर्ष के) उत्तर दिशा में देवताओं की आत्मा वाला पर्वतों का राजा हिमालय है, जो पूर्व और पश्चिम दोनों समुद्रों का अवगाहन करके पृथ्वी के मापने के दण्ड के समान स्थित है। तात्पर्य यह है कि हिमालय का विस्तार ऐसा है कि वह पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओं के समुद्रों को छू रहा है।)

तत्पश्चात् पार्वती के जन्म, बाल्यकाल, यौवन-प्राप्ति व विलक्षण सौंदर्य का परिचय देते हुए नारद की भविष्यवाणी का उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार पार्वती का विवाह शिव के साथ ही होगा। इस भविष्वाणी में विश्वास कर पिता हिमालय पुत्री को कैलास पर्वत पर तपस्यारत भगवान् शिव की सेवा के लिये भेज देता है।

द्वितीय सर्ग

दूसरे सर्ग में इन्द्र आदि सभी देवता तारकासुर के अत्याचारों से त्रस्त होकर ब्रह्माजी के पास जाकर अपनी कष्ट-कथा सुनाते हैं तथा प्रार्थना करते हैं कि आप ही तारकासुर का दमन कर सकते हैं। ब्रह्माजी अपनी विविशता प्रकट करते हैं

कि मेरे ही वरदान से वह इतना शक्तिशाली हुआ है, मैं स्वयं उसका संहार नहीं कर सकता। वे देवताओं को उपाय बताते हैं कि शिव का यदि पार्वती से विवाह हो जाए तो इस युगल से उत्पन्न पुत्र तारकासुर को नष्ट कर सकता है। शिव का वीर्य धारण करने की क्षमता पार्वती के अतिरिक्त किसी में नहीं है। इसलिए आप लोग कोई ऐसा उपाय करें, जिससे तपस्या में तल्लीन शिव का मन पार्वती में अनुरक्त हो। ब्रह्मा जी के इस परामर्श के पश्चात् इन्द्र कामदेव को स्मरण करते हैं। कामदेव के देवराज इन्द्र के सम्मुख उपस्थित होने के साथ ही सर्ग की समाप्ति होती है।

तृतीय सर्ग

कामदेव के उपस्थित होने पर देवराज इन्द्र ने उन्हें आदरपूर्वक अपने पास बैठाया। कामदेव इन्द्र से विनम्र होकर उनकी चिन्ता का कारण ज्ञात करने लगे। कामदेव अपनी वीरता की प्रशंसा करते हुए बोले, कि मैं शिवजी तक को अपने वाणों का कौशल दिखा सकता हूँ। देवराज इन्द्र ने कामदेव को उत्साहित करते हुए कहा कि ब्रह्मा जी से ज्ञात हुआ है कि महादेव से उत्पन्न पुत्र देवताओं का सेनापति बनाया जाय तो देवताओं की विजय अवश्य होगी। महादेव का वीर्य धारण करने की क्षमता केवल पर्वतकन्या पार्वती में ही है। पार्वती अपने पिता से आज्ञा प्राप्त करके महादेव की सेवा में लगी हुई हैं। आप अपने मित्र बसन्त के साथ देवताओं का यह कार्य अवश्य करें, इससे आपको यश प्राप्ति होगी। इन्द्र की आज्ञा पाकर कामदेव अपने सखा बसन्त के साथ उस स्थान की ओर गये, जिधर शिव समाधि लगाये बैठे हुए थे। बसन्त ने प्रचण्ड रूप से अपना प्रभाव प्रदर्शित किया। पशु-पक्षी, देव, यक्ष, किन्नर, मानव तथा ऋषि-मुनियों में भी काम विकार उत्पन्न होने लगा, परन्तु महादेव निर्विकार भाव से समाधि में मग्न बैठे रहे। नन्दी द्वारपाल के रूप में पहरा दे रहा था। उसने सभी गणों को सतर्क कर दिया, किन्तु नन्दी की दृष्टि को बचाता हुआ कामदेव उस स्थान पर पहुँच गया, जहाँ शिवजी समाधि लगाये बैठे थे। शिव के तेजस्वी रूप को देखकर कामदेव भयभीत हो गया तथा उसके हाथ से धनुष-वाण छूटकर गिर गये। उसी समय मालिनी और विजया नाम की वन-देवियों के साथ पार्वती पर कामदेव की दृष्टि पड़ी। पार्वती का सौन्दर्यावलोकन के पश्चात् कामदेव के मन में महादेव को जीतने की अभिलाषा पुनः बलवती हो गयी। ठीक उसी क्षण पार्वती महादेव के आश्रम के द्वार पर उपस्थित हो गयीं। ठीक उसी समय महादेव ने भी परमेश्वर

की परमज्योति का दर्शन करके अपनी समाधि तोड़ दी। नन्दी ने समाधि खुली होने पर प्रणाम करते हुए पार्वती का परिचय कराया। महादेव ने पार्वती को असाधारण पति प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया। पार्वती भक्ति भाव से महादेव के गले में कमल बीजों की माला पहना रही थीं, उसी समय उचित अवसर जानकर कामदेव ने "सम्मोहन" नामक अचूक बाण धनुष पर चढ़ा लिया। पार्वती को देखकर शिव के मन में कामविकार उत्पन्न होने लगा, परन्तु महादेव ने अपनी चंचल इन्द्रियों को वश में करते हुए चारों ओर दृष्टिपात किया, जब उन्होंने लक्ष्य साधे हुए कामदेव को देखा, तब अपने तप में बाधक बने कामदेव पर वह अत्यधिक क्रोधित हुए। महादेव ने अपने तृतीय नेत्र की अग्नि से कामदेव को भस्म कर दिया। महादेव ने तप में बाधक स्त्रियों का साथ छोड़ देने का निश्चय किया। वे उसी क्षण अपने गणों के साथ अन्तर्ध्यान हो गये।

चतुर्थ सर्ग

इस सर्ग में कामपत्नी रति का करुण विलाप है। रति कामदेव के सहवास काल की स्मृतियों का स्मरण करके विलाप करती है। वह कामदेव के बिना अपने जीवन को अधूरा समझती है। वह अपने पति के मित्र बसन्त से अपनी चिता तैयार करने का आग्रह करती है। उसी समय आकाशवाणी होती है। आकाशवाणी द्वारा रति को सांत्वना दी जाती है कि उसका पति कुछ दिनों बाद उसे अवश्य मिल जायेगा। ब्रह्मा के शापवश कामदेव शिव के तृतीय नेत्र से भस्म हुए हैं। जब पार्वती की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव उनके साथ विवाह कर लेंगे, तब कामदेव को पूर्ववत् शरीर देने की कृपा करेंगे। आकाशवाणी सुनकर रति ने अपना शरीर त्यागने का विचार छोड़ दिया।

पंचम सर्ग

महादेव द्वारा मदनदहन की घटना के उपरान्त पार्वती ने अपने सौन्दर्य की निन्दा करते हुए तप द्वारा महादेव को पतिरूप में प्राप्त करने का निश्चय किया। पार्वती की माँ ने उन्हें तप करने से मना किया, किन्तु वह अपने निश्चय से विचलित नहीं हुई। अपने पिता की आज्ञा से पार्वती ने हिमालय के उस शिखर पर तपस्या आरम्भ कर दी, जिसका कालान्तर में गौरी शंकर नाम पड़ गया। पार्वती की तपस्या ऋषि-मुनियों को भी विस्मित करने वाली थी। तपोरत पार्वती के आश्रम में कुछ दिनों के पश्चात् महादेव गुप्त वेश में उनके निकट गये।

ब्रह्मचारी बने हुए महादेव ने पार्वती से तप का कारण पूछा। पार्वती का संकेत पाकर उसकी सखी ने ब्रह्मचारी को बताया, कि मेरी सखी महादेव को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए इतना कठोर तप कर रही हैं। ब्रह्मचारी ने अनेक प्रकार से भगवान शिव की आलोचना एवं निन्दा की। अपने आराधय की निन्दा को असहनीय जानकर पार्वती ने अपनी सखी से, ब्रह्मचारी को मौन रहने के लिए कहा। शिव निन्दा श्रवण में अक्षम पार्वती ने अन्यत्र गमन का उपक्रम किया। उसी क्षण महादेव प्रकट रूप में आ गये एवं पार्वती से बोले – हे देवि! मैं आपकी तपस्या से खरीदा हुआ आपका दास हूँ। इसी के साथ पंचम सर्ग का समापन होता है।

षष्ठ सर्ग

पार्वती ने महादेव को अपने ऊपर प्रसन्न देखकर अपनी सखी से कहलाया, कि यदि वे मुझसे विवाह करने के लिए अभिमत हैं तो पिता हिमालय के निकट जाकर अनुमति प्राप्त करें। इतना कहकर पार्वती महादेव की आज्ञा से अपने पिता के घर चली गई। पार्वती के प्रस्थानान्तर महादेव ने सप्त-ऋषियों को स्मरण किया। सप्तर्षि अरुन्धती के साथ महादेव के सम्मुख उपस्थित होकर स्मरण करने का कारण पूँछते हैं। महादेव सप्तर्षियों से कहते हैं कि देवता मुझसे पुत्र उत्पन्न कराना चाहते हैं। पुत्र उत्पन्न करने हेतु मैं पार्वती से विवाह करना चाहता हूँ। आप लोग पर्वतराज हिमालय से पार्वती की याचना करने मेरी ओर से जायें। आर्या अरुन्धती इस कार्य में विशेष सहयोग कर सकती हैं। आप लोग हिमालय के औषधिप्रस्थ नगर में जाकर कार्य सफल करने के उपरान्त मुझे महाकोशी नदी के झरने पर मिलने की कृपा करें। सप्तर्षि ओषधिप्रस्थ नगर जाते हैं। कवि ने ओषधि- प्रस्थ नगर का सुन्दर वर्णन किया है। सप्तर्षि पर्वतराज हिमालय के पास जाते हैं। हिमालय ने सप्तर्षियों का विधिपूर्वक आदर सत्कार किया तथा उनके आगमन पर अपने आपको धन्य माना। हिमालय ने सप्तर्षियों से अपने योग्य सेवा कार्य करने के लिए पूँछा, तब अंगिरा ऋषि ने हिमालय से कहा, कि हम लोग महादेव का संदेश लेकर आपके पास आये हैं। महादेव ने अपने विवाह के लिए आपकी पुत्री माँगी है। महादेव संसार के पिता हैं, उनसे अच्छा वर आपकी पुत्री के लिए कोई नहीं हो सकता है। हिमालय ऋषि अंगिरा की बात से सहमत हो गये और अपनी पत्नी मेना से भी सहमति प्राप्त करके महादेव को अपनी पुत्री देने की सहमति प्रदान कर दी। तीन दिन बाद विवाह की तिथि निश्चित हो गयी।

हिमालय से विदा लेने के उपरान्त सप्तर्षियों ने महादेव को विवाह की तिथि बतायी और आकाश में उड़ गये।

सप्तम सर्ग

इस सर्ग में पार्वती का विवाह वर्णन है। हिमालय ने सभी कुटुम्बियों को बुलाकर शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को अपनी पुत्री के विवाह का आयोजन किया। पार्वती को वधू के वेष में सजाया गया। सभी प्रकार की मांगलिक सामिग्रियों से पार्वती को अलंकृत किया गया। वधू वेष में पार्वती की सुन्दरता अवर्णनीय थी। महादेव भी बारात लेकर ओषधिप्रस्थ नगर जाते हैं। महादेव नन्दी पर बैठे हुए थे, उनके गण मंगलवाद्य बजाते हुए उने आगे चल रहे थे। विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित छत्र सूर्यदेव भगवान शिव के ऊपर लगाये हुए थे। महादेव की बारात में ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा पुरोहित सप्तर्षि चल रहे थे। ओषधिप्रस्थ नगर पहुँचने पर हिमालय ने अपने कुटुम्बियों के साथ हाथी पर चढ़कर शिव की अगवानी की। महादेव की बारात ने जब नगर में प्रवेश किया, तब सभी स्त्रियां अपने-अपने कार्यों को छोड़कर शिव को देखने दौड़ पड़ी। भवनों के झरोखों, अट्टालिकाओं से शिव के दर्शन किये एवं उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। शुभ मुहूर्त में महादेव-पार्वती का विवाह पुरोहितों ने किया। ब्रह्मा ने वधू को वीरमाता बनने का आशीष दिया। सरस्वती ने संस्ड्डत तथा पालि में वर-वधू की प्रशंसा की। विवाह कार्य के सम्पन्न होने के पश्चात् देवताओं ने शिव से कामदेव को जीवित करने का आग्रह किया। शिव ने कामदेव को जीवित कर दिया। इनके अनन्तर शिव ने सभी देवताओं को विदा किया और पार्वती का हाथ पकड़कर विनोद भवन में चले गये।

अष्टम सर्ग

इस सर्ग में शिव-पार्वती की काम-क्रीड़ा का शृंगारिक वर्णन है। प्रारम्भ में पार्वती महादेव की कामुक चेष्टाओं से भयभीत हो जाती थीं, परन्तु कुछ दिनों बाद पार्वती भी काम-क्रीड़ाओं में प्रशिक्षित हो गयीं। इस प्रकार विभिन्न प्रकार से महादेव ने एक मास तक पार्वती के साथ रमण किया। तत्पश्चात् महादेव ने हिमालय से जाने की अनुमति माँगी। नन्दी पर आरूढ़ होकर महादेवी पार्वती के साथ सुमेरू पर्वत पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक राति Estelar 58 विश्राम किया।

मेरू पर्वत से प्रस्थान कर वे कैलाश पर्वत पर जा पहुँचे। कैलाश पर कुछ दिन बिताकर वे मलय पर्वत, नन्दन वन होते हुए गन्ध मादन पर्वत पर पहुँच गये। वहाँ महादेव ने बहु प्रकार पार्वती को उद्दीप्त करके काम-क्रीड़ाओं का आनन्द लिया। उन्होंने पार्वती के साथ सैकड़ों वर्ष काम-क्रीड़ाओं में इस प्रकार बिता दिये कि मानो एक रात्रि ही बीती हो।

नवम् सर्ग

जिन दिनों शिव अपनी प्रिया पार्वती के साथ काम-क्रीड़ा में रत थे, उन्हीं दिनों उनके विनोद भवन में एक कबूतर प्रविष्ट हो गया था। भगवान शंकर ने उसे देखते ही विचार किया, कि निश्चय ही अग्निदेव कपट वेष में आया होगा। क्रोध से महादेव की भृकुटि तन गयीं, इसे देखकर कबूतर सच्चा रूप बनाकर महादेव से विनम्र वाणी में बोला - महादेव! आपने अपनी प्रिया के साथ सौ वर्ष तो इसी प्रकार काम-क्रीड़ाओं में ही बिता दिये। इन्द्रादि देवता आपके दर्शन पाना चाहते हैं। आप अपने वीर्य से ऐसा वीर पुत्र उत्पन्न करने की कृपा करें, जिसे देवताओं का सेनापति बनाकर तारकासुर पर विजय प्राप्त हो सके। अग्निदेव की विनती पर भगवान शिव ने अपना वह तेज अग्निदेव को समर्पित कर दिया। उसी समय काम-क्रीड़ाओं में बाधक बने अग्निदेव को पार्वती ने कोढ़ी हो जाने का श्राप दे दिया। शिव ने अपने वचनचातुर्य एवं प्रेमालापों से पार्वती का क्रोध शान्त किया। उसी समय जया और विजया नाम की सखियों ने पार्वती का शृंगार करना आरम्भ कर दिया। उचित अवसर समझते हुए नन्दी ने महादेव को प्रणाम करते हुए इन्द्रादि देवताओं के उपस्थित होने की सूचना दी। शिव पार्वती के साथ विनोद भवन से निकलकर देवताओं से मिलते हैं। तत्पश्चात् देवताओं को विदा करने के उपरान्त शिव अपनी प्रिया के साथ नन्दी पर आरूढ़ होकर कैलाश शिखर के लिए प्रस्थान करते हैं।

दशम् सर्ग

भगवान शिव के उस तेज को लेकर अग्निदेव इन्द्र की सभा में उपस्थित हुए। अग्निदेव का ऐसा विकृत रूप देखकर इन्द्र ने इसका कारण पूछा। अग्निदेव ने बताया, कि मैं आपकी आज्ञा को शिरोधार्य कर कबूतर का वेष बनाकर शिव के विनोद भवन में उपस्थित हुआ, तब उन्होंने मुझे तत्काल ही पहचान लिया। लज्जावश महादेव संभोग सुख से विरत हो गये, तथा उन्होंने अपना वीर्य मेरे शरीर

के ऊपर गिरा दिया। संभोग सुख में बाधा उत्पन्न होने पर पार्वती ने भी मुझे कुष्ठी हो जाने का श्राप दे दिया। महादेव के इस प्रचण्ड तेज से मेरा शरीर जला जा रहा है। आप मेरी प्राणरक्षा का कोई उपाय बताने की कृपा करें। इन्द्र के परामर्शानुसार अग्निदेव गंगा में कूद गये। गंगा ने महादेव का वह तेज अपने अन्दर ग्रहण कर लिया। महादेव के उस तेज से गंगा का जल उबलने लगा, तथा उसमें रहने वाले जीव-जन्तु व्याकुल होकर बाहर निकलने लगे, परन्तु गंगा ने वह तेज अपने अंदर संजोये रखा। कुछ दिवसों के अनन्तर छः कृत्तिकाएँ गंगा में स्नानार्थ आयीं। गंगा ने वह तेज उन कृत्तिकाओं को दे दिया। उस तेज ने छः कृत्तिकाओं के अन्दर गर्भ का रूप ले लिया। वे कृत्तिकाएँ लाजवश तथा अपने पतियों के भय से भयभीत हो गयीं, परन्तु उन्होंने बुद्धिमत्तापूर्वक अपने-अपने गर्भ की रक्षा की। लज्जा तथा भय के कारण वे अपने-अपने गर्भ को एक झाड़ी में छोड़कर वे अपने-अपने घर चली गयीं। वह तेजस्वी गर्भ सैकड़ों सूर्यों को भी परास्त करने वाला था।

एकादश सर्ग

इस सर्ग में कुमार कार्तिकेय की बाललीला का नैसर्गिक वर्णन है। इन्द्रादि देवताओं की प्रार्थना पर गंगा ने स्त्री का रूप धारण कर बालक को स्तनपान कराया। वह बालक क्षण-प्रतिक्षण बढ़ने लगा। इस तेजस्वी बालक को प्राप्त करने के लिए गंगा, अग्निदेव तथा छः कृत्तिकाओं के मध्य कलह होने लगा। उसी समय महादेव अपनी प्रिया पार्वती के साथ विमान पर आरूढ़ उस स्थान पर पहुँचे। उस दिव्य बालक को देखकर पार्वती ने महादेव से उसकी माता का नाम पूँछा। महादेव ने पार्वती को बताया, कि देवि! तुम्हीं इसकी माता हो। महादेव की आज्ञा से पार्वती विमान से उतरीं तथा बालक को अपनी गोद में उठा लिया। उस समय इन्द्रादि देवों ने करबद्ध होकर शिव-पार्वती को प्रणाम किया। उस बालक को अपने साथ लेकर विमानारूढ़ होकर शिव-पार्वती कैलाश शिखर पर चले गये। कैलाश शिखर पर भगवान शिव ने अपने गणों से कुमार का जन्मोत्सव मनाने के लिए कहा। बड़ी धूमधाम से कुमार कार्तिकेय का जन्मोत्सव मनाया गया। यक्षों, विद्याधारों एवं किन्नरों की स्त्रियों ने कुमार के जन्मोत्सव में प्रसन्नतापूर्वक भाग लिया। कुमार अपनी बाल-लीलाओं से शिव-पार्वती को आनन्दित करता हुआ दिन- प्रतिदिन बढ़ने लगा।

द्वादश सर्ग

तारकासुर के आतंक से भयाकुल देवता इन्द्र के साथ कैलाश पर्वत पर पहुँचते हैं। नन्दी सोने का डंडा लिये पहरा दे रहा था। इन्द्रादि देवताओं ने अपने गणों के साथ बैठे हुए भगवान शिव को देखा। शिव अपने गणों के साथ कुमार कार्तिकेय की शस्त्र विद्या का अभ्यास देख रहे थे। नन्दी ने इन्द्रादि देवताओं के आगमन की सूचना भगवान शिव को दी। शिव ने मुरझाये कमलमुख वाले देवताओं से पूछा, कि आप लोग स्वर्ग छोड़कर इस प्रकार म्लान मुख एवं कान्तिहीन क्यों हैं? क्या आपके कष्टों का हेतु दैत्य तारक है? इस प्रकार महादेव द्वारा आश्वासन मिलने पर इन्द्र ने विनम्र भाव से कहा – ब्रह्मा से वरदान प्राप्त तारकासुर ने हम लोगों को स्वर्ग से निकाल दिया है। अब आप अपने इस अजेय पुत्र को हम देवताओं का सेनापति बनने की आज्ञा दे दीजिए, जिससे हम लोगों की प्राण रक्षा हो सके। इन्द्रादि देवताओं की प्रार्थना पर महादेव ने अपने पुत्र कुमार कार्तिकेय से कहा, हे पुत्र! तुम देवताओं के सेनापति बनकर तारकासुर का बधू करो।

त्र्योदशः सर्ग

सेनापति वेष में कुमार कार्तिकेय अपने माता-पिता की चरण वन्दना करके स्वर्ग की ओर प्रस्थान करते हैं। सभी देवता कुमार का अनुगमन करते हैं। कुमार ने देवताओं को साहस बँधाते हुए स्वर्ग में प्रवेश करने की आज्ञा दी। स्वर्ग में प्रवेश करते ही सबसे पहले आकाश गंगा दिखाई दी। कुमार ने देवनदी मंदाकिनी को प्रणाम किया। तत्पश्चात् नन्दनवन को देखा। नन्दन वन उजड़ा सा दिखाई दे रहा था। कार्तिकेय ने अनुमान लगाया कि तारकासुर के आतंक से ही इस नन्दनवन की यह दुर्दशा हुई है। कुमार कार्तिकेय ने उजड़ी हुई अमरावती नामक सर्वश्रेष्ठ नगरी को देखा। अमरावती की हीन- दीन दशा देखकर कुमार कार्तिकेय को तारकासुर पर बहुत क्रोध आया। इन्द्र कुमार को वैजयन्त नामक भवन में ले गये। उस भवन की सुन्दर दीवारें दैत्यों के हाथियों के दन्ताघात से धवस्त हो गयी थीं। उसी भवन में महर्षि कश्यप विराजमान थे। कुमार कार्तिकेय ने महर्षि को प्रणाम किया। कुमार ने देवमाता अदिति को सिर झुकाकर प्रणाम किया। कुमार ने वहाँ बारी-बारी से इन्द्राणी, देवांगनाओं एवं महर्षि कश्यप की सातों पत्नियों को प्रणाम किया। उन सभी ने कुमार को विजयी होने का आशीर्वाद दिया। इस

प्रकार इन्द्रादि देवताओं ने कुमार कार्तिकेय को अपना सेनापति बना लिया। कुमार का सेनापति पद पर अभिषेक होने के अनन्तर देवताओं को विश्वास हो गया, कि हम लोग तारकासुर को युद्ध में अवश्य जीत लेंगे।

चतुर्दश सर्ग

तारकासुर विजयार्थ कुमार कार्तिकेय "विजित्वर" नामक रथ पर आरूढ़ हो गये। यह रथ मन से भी अधिक वेगवान था। इस पर स्वर्णछत्र लगा हुआ था। कुमार के पीछे सभी देवता यथानुरूप अस्त्र-शस्त्रें से सुसज्जित होकर चल रहे थे। ग्यारह रुद्र भी बैलों पर आरूढ़ होकर कुमार के पीछे चल रहे थे। इस प्रकार देव सेना आकाश में तेज गर्जना के साथ चल रही थी। सेना का कोलाहल सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में गूंजने लगा। देव सेना के प्रस्थान से उठी हुई धूल आकाश में पहुँचकर बादलों का भ्रम उत्पन्न कर रही थी। देवसेना के प्रस्थान का यह रूप देखकर अमरावती के लोग हर्ष का अनुभव कर रहे थे। इस प्रकार सम्पूर्ण चतुर्दश सर्ग में देव सेना के प्रस्थान का घटाटोप वर्णन है। वीर रस का सुन्दर स्वाभाविक वर्णन दृष्टिगोचर होता है।

पंचदश सर्ग

इस सर्ग में तारकासुर की सेना के प्रस्थान का स्वाभाविक वर्णन है। जब दैत्यों को कुमार कार्तिकेय के सेनापति होने की जानकारी प्राप्त होती है, तब वे अत्यन्त भयभीत हो जाते हैं। उन्होंने तारकासुर को इस देव सेना के आगमन की सूचना दी। तारकासुर ने अपने सभी सेनापतियों को बुलाया तथ स्वयं सेना के साथ चल पड़ा। तारकासुर की विशाल सेना में इतनी पताकाएँ फहरा रही थीं, कि उनसे धूप तक रुक गयी। दैत्यराज की सेना के प्रस्थान के समय अनेक प्रकार के अपशकुन हो रहे थे। कौवे, गिद्ध आदि भयंकर जीव-जन्तु दैत्य सेना के ऊपर उड़ रहे थे। उसी समय सियारिनियां ऊपर मुँह करके रोने लगी थीं। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो तारकासुर के दिन पूरे हो गये हों। यद्यपि सभी अपशकुन तारकासुर को युद्ध में जाने से रोक रहे थे, परन्तु अभिमानी एवं हठी तारकासुर को कौन रोक सकता था। अभिमान में भरा हुआ तारकासुर चला जा रहा था, उसी समय आकाशवाणी हुई - 'हे दैत्यराज! तू कार्तिकेय के साथ युद्ध करने मत जा' दैत्यराज तारकासुर ने आकाशवाणी को अनसुना करते हुए अपनी सेना को देवसेना के सम्मुख युद्धभूमि में ला खड़ा किया। इतनी विशाल दैत्य

सेना को देखकर एकबारगी देवसेना भयाकुल होने लगी, परन्तु कुमार कार्तिकेय ने सभी देवताओं का साहस बँधाया। उन्होंने देवताओं से कहा, कि दैत्य सेना पर आक्रमण करने के लिए तैयार हो जाओ। इस प्रकार देवताओं में उत्साह की लहर दौड़ गयी।

षोडश सर्ग

इस सर्ग में इन्द्र और तारक की सेनाओं के युद्ध का भीषण रूप वर्णित है। युद्धभूमि में पैदल योद्धा पैदल से, घुड़सवार योद्धा घुड़सवार से तथा हाथी पर सवार योद्धा हाथी सवार से भयंकर युद्ध कर रहे थे। युद्धभूमि में रुधिर की नदी बह रही थी। युद्धक्षेत्र का वीभत्स वर्णन कालिदास की लेखनी ने अद्‌भुत कुशलता के साथ किया है। योद्धा परस्पर शत्रुभाव से वीरता के साथ युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हो रहे थे। कहीं-कहीं तो बन्ध तक परस्पर युद्धरत थे। महावतों से रहित हाथी मदमस्त होकर युद्ध क्षेत्र में योद्धाओं को मर्दित करते हुए भ्रमण कर रहे थे। इस प्रकार सम्पूर्ण सर्ग में देव सेना तथा दैत्य सेना का भीषण युद्ध चलता रहता है। तारकासुर स्वयं युद्ध करने हेतु इन्द्र के सम्मुख आकर खड़ा हो जाता है। इसी दृश्य के साथ सर्ग की समाप्ति हो जाती है।

सप्तदश सर्ग

तारकासुर ने देवसेना पर वाणों की ऐसी झड़ी लगा दी कि देवसेना विचलित हो गयी। तारक ने इन्द्रादि देवताओं के गले में नागफाँस के फन्दे डाल दिये। सभी देवता इस विपत्ति से छुटकारा पाने हेतु कुमार कार्तिकेय के समीप पहुँचे। कुमार के दृष्टिपात करने मात्र से देवताओं के नागफाँस छूट गये। इस चमत्कार से तारकासुर अत्यधिक क्रोधित हुआ। उसने सारथी से अपना रथ कुमार कार्तिकेय के निकट ले जाने के लिए कहा। कुमार के सम्मुख पहुँचकर तारक ने उन्हें इन्द्रादि देवताओं का साथ छोड़ देने के लिए कहा, परन्तु क्रोधित कुमार ने तारक पर वाण वर्षा आरम्भ कर दी, प्रत्युत्तर में तारक ने भी वाणों का कौशल दिखाया। जब तारकासुर परास्त होने लगा, तब उसने मायावी युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। उसने "वायव्य" नामक वाण धनुष पर चढ़ाया। वाण संधान करते ही प्रचण्ड वेग से धूल भरी आँधी चलने लगी। इस आँधी से देवसेना का साहस क्षीण होने लगा, परन्तु कुमार कार्तिकेय ने अपनी दिव्य शक्ति से देवसेना को पुनः नवशक्ति प्रदान कर दी। इसे देखकर तारकासुर बहुत क्रोधित हुआ, उसने

अग्निवाण अपने धनुष पर चढ़ा लिया। आकाश में काला धुआं एवं आग ही आग व्याप्त हो गयी। देवता भयभीत होकर कुमार कार्तिकेय के समीप जा पहुँचे। कुमार ने "वारुणास्त्र" चलाकर अग्नि वाण के प्रभाव को निष्क्रिय कर दिया। तारकासुर क्रोधित होकर अपना रथ छोड़कर कुमार की ओर झपटा। उसने तलवार से कुमार पर प्रहार करना चाहा, परन्तु इससे पूर्व ही कुमार ने भाले का प्रचण्ड प्रहार कर राक्षस तारक का वध कर दिया। राक्षस तारक के वधानन्तर देवताओं की सेना में हर्ष की लहर दौड़ गयी।

इसी के साथ महाकाव्य का अन्तिम एवं सत्रहवाँ सर्ग समाप्त हो जाता है। महाकवि ने इस पवित्र गाथा को केवल यहीं समाप्त नहीं किया, वे महाकाव्य के उद्देश्यों के निकट इस कथावस्तु को लाना चाहते थे। भारतीय परम्परा की काव्य समाज पर कल्याणकारी प्रभाव डाले, अतः इसे सुखान्त बनाया जाए। संभवतः कवि प्रवर ने इसी दृष्टि से असज्जन पर सज्जन की विजयश्री के साथ अपने काव्य की इतिश्री की है। विजय का मंगलगान करते हुए कवि ने अन्तिम छन्द इस प्रकार लिखा है –

इति विषमशरारेः सूनुना जिष्णुनाजौ
त्रिभुवनवरशल्ये प्रोद्धृते दानवेन्द्र।
बलरिपुरथ नाकस्याधिपत्यं प्रपद्य
व्यजयत सुरचूडारत्नघृष्टाग्रपादः॥

(इस प्रकार विजयी कार्तिकेय ने जब समस्त संसार के हृदय में कीट की भाँति चुभने वाले तारकासुर को मार डाला तब इन्द्र पुनः स्वर्ग के स्वामी बन गए और सभी देवताओं ने अपने-अपने मुकुट की मणियों सहित अपना मस्तक उनके चरणों पर रखकर उनकी वन्दना की।)

किरातार्जुनीयम्

किरातार्जुनीयम् (अर्थ–किरात और अर्जुन की कथा) महाकवि भारवि द्वारा सातवीं शती ई. में रचित महाकाव्य है, जिसे संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों 'वृहत्त्रयी' में स्थान प्राप्त है। महाभारत में वर्णित किरातवेशी शिव के साथ अर्जुन के युद्ध की लघुकथा को आधार बनाकर कवि ने राजनीति, धर्मनीति, कूटनीति, समाजनीति, युद्धनीति, जनजीवन आदि का मनोरम वर्णन किया है। यह काव्य विभिन्न रसों से ओतप्रोत रचना है, किन्तु वीर रस प्रधान है।

संस्कृत के छः प्रसिद्ध महाकाव्य हैं–बृहत्त्रयी और लघुत्रयी। किरातार्जनुयीयम् (भारवि), शिशुपालवधम् (माघ) और नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)–बृहत्त्रयी कहलाते हैं। कुमारसम्भवम्, रघुवंशम् और मेघदूतम् (तीनों कालिदास द्वारा रचित) - लघुत्रयी कहलाते हैं।

किरातार्जुनीयम् भारवि की एकमात्र उपलब्ध कृति है, जिसने एक सांगोपांग महाकाव्य का मार्ग प्रशस्त किया। माघ-जैसे कवियों ने उसी का अनुगमन करते हुए संस्कृत साहित्य भण्डार को इस विधा से समृद्ध किया और इसे नई ऊँचाई प्रदान की। कालिदास की लघुत्रयी और अश्वघोष के बुद्धचरितम् में महाकाव्य की जिस धारा का दर्शन होता है, अपने विशिष्ट गुणों के होते हुए भी उसमें वह विशदता और समग्रता नहीं है, जिसका सूत्रपात भारवि ने किया। संस्कृत में किरातार्जुनीयम् की कम से कम 37 टीकाएँ हुई हैं, जिनमें मल्लिनाथ की टीका घंटापथ सर्वश्रेष्ठ है। सन् 1912 में कार्ल कैप्पलर ने हारवर्ड ओरियेंटल सीरीज के अंतर्गत किरातार्जुनीयम् का जर्मन अनुवाद किया। अंग्रेजी में भी इसके भिन्न-भिन्न भागों के छः से अधिक अनुवाद हो चुके हैं।

किरातार्जुनीयम् की कथा

राजनीति और व्यवहार-नीति में भारवि के विशेष रुझान के चलते यह युक्तियुक्त ही था कि वे किरातार्जुनीयम् का कथानक महाभारत से उठाते। उन्होंने वनपर्व के पाँच अध्यायों से पांडवों के वनवास के समय अमोघ अस्त्र के लिए अर्जुन द्वारा की गई शिव की घोर तपस्या के फलस्वरूप पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के छोटे-से प्रसंग को उठाकर उसे अठारह सर्गों के इस महाकाव्य का रूप दे दिया।

जब युधिष्ठिर कौरवों के साथ संपन्न द्यूतक्रीड़ा में सब कुछ हार गये तो उन्हें अपने भाइयों एवं द्रौपदी के साथ 13 वर्ष के वनवास पर जाना पड़ा। उनका अधिकांश समय द्वैतवन में बीता। वनवास के कष्टों से खिन्न होकर और कौरवों द्वारा की गयी साजिश को याद करके द्रौपदी युधिष्ठिर को अक्सर प्रेरित करती थीं कि वे युद्ध की तैयारी करें और युद्ध के माध्यम से कौरवों से अपना राजपाठ वापस लें। भीम भी द्रौपदी की बातों का पक्ष लेते हैं।

गुप्तचर के रूप में हस्तिनापुर भेजे गए एक वनेचर (वनवासी) से सूचना मिलती है कि दुर्योधन अपने सम्मिलित राज्य के सर्वांगीण विकास

और सुदृढ़ीकरण में दत्तचित्त है, क्योंकि कपट-द्यूत से हस्तगत किए गए आधे राज्य के लिए उसे पांडवों से आशंका है। पांडवों को भी लगता है कि वनवास की अवधि समाप्त होने पर उनका आधा राज्य बिना युद्ध के वापस नहीं मिलेगा। द्रौपदी और भीम युधिष्ठिर को वनवास की अवधि समाप्त होने की प्रतीक्षा न कर दुर्योधन पर तुरंत आक्रमण के लिए उकसाते हैं, लेकिन आदर्शवादी, क्षमाशील युधिष्ठिर व्यवहार की मर्यादा लाँघने को तैयार नहीं।

उधर आ निकले व्यास सलाह देते हैं कि भविष्य के युद्ध के लिए पांडवों को अभी से शक्ति-संवर्धन करना चाहिए। उन्हीं के द्वारा बताए गए उपाय के अनुसार अर्जुन शस्त्रस्त्र के लिए इन्द्र (अपने औरस पिता) को तप से प्रसन्न करने के लिए एक यक्ष के मार्गदर्शन में हिमालय-स्थित इन्द्रकील पर्वत की ओर चल पड़ते हैं। वहां एक आश्रम बनाकर की गई तपस्या के फलस्वरूप अप्सराओं आदि को भेजकर परीक्षा लेने के बाद इंद्र एक वृद्ध मुनि के वेष में उपस्थित होते हैं और तपस्या के नाशवान लौकिक लक्ष्य को नि:सार बताते हुए परमार्थ की महत्ता का निदर्शन करते हैं। अर्जुन इसकी काट में कौरवों द्वारा किए गए छल एवं अन्याय का लेखा-जोखा प्रस्तुतकर शत्रु से प्रतिशोध लेने की अनिवार्यता, सामाजिक कर्त्तव्य-पालन तथा अन्याय के प्रतिकार का तर्क देकर इंद्र को संतुष्ट कर देते हैं। फलस्वरूप इंद्र अपने वास्तविक रूप में प्रकट होकर अर्जुन को मनोरथ-पूर्ति के लिए शिव की तपस्या करने की सलाह देते हैं।

अर्जुन फिर से घोर, निराहार तपस्या में लीन हो जाते हैं। अर्जुन इंद्रकील के लिए एक अजनबी तपस्वी है, जटा, वल्कल और मृगचर्म तो उसके पास हैं, लेकिन साथ ही शरीर में कवच भी है, यज्ञोपवीत की जगह प्रत्यंचा-समेत गांडीव धनुष है, दो विशाल तरकस हैं और एक उत्तम खड्ग भी। उसे मुनिधर्म-विरोधी समझकर वहाँ के अन्य तपस्वी आतंकित हैं और शंकर के पास निवेदन के लिये पहुँच जाते हैं।उसके क्रम में शिव जी किरातों की स्थानीय जनजाति के सेनापति का वेश धारणकर किरातवेशधारी अपने गणों की सेना लेकर अर्जुन के पास पहुँच जाते हैं। तभी 'मूक' नाम का एक दानव अर्जुन की तपस्या को देवताओं का कार्य समझकर, विशाल शूकर का शरीर धारण कर, उसको मारने के लिए झपटता है। शिव और अर्जुन दोनों द्वारा एक साथ चलाए गए एक-जैसे बाण से उस सूअर की इहलीला समाप्त हो जाती

है। शिव का बाण तो उसके शरीर को बेधता हुआ धरती में धँस जाता है और अर्जुन जब अपना बाण उसके शरीर से निकालने जाते हैं तो शिव अपने एक गण को भेजकर विवाद खड़ा करा देते हैं। परिणामतः दोनों के बीच युद्ध आरम्भ हो जाता है। अर्जुन गणों की सेना को तो बाण-वर्षा से भागने को मजबूर कर देते हैं, पर शिव के साथ हुए युद्ध में परास्त हो जाते हैं। पराजय से हताश अर्जुन किरात-सेनापति के वेश में शिव को पहचानकर समर्पण कर देते हैं, जिससे प्रसन्न होकर शिव प्रकट होते हैं और पाशुपतास्त्र प्रदानकर उसका प्रशिक्षण देते हैं। इस तरह अर्जुन का मंतव्य पूरा होने के साथ महाकाव्य-विधा के भी सारे मंतव्य सिद्ध हो जाते हैं।

नीति

किरात वेशधारी शिव के इस लोकोत्तर मिथक से इतर इस प्रसंग की अपनी एक विशिष्ट जनजातीय अभिव्यंजना भी है, जो इस काव्य को वर्तमान भावबोध के करीब लाती है। युधिष्ठिर और गुप्तचर बने वनेचर के बीच घटित संवाद में वनेचर की जो अटूट स्वामिभक्ति, अदम्य निर्भीकता और उच्च राजनीतिक समझ सामने आती है, वह वनवासियों के प्रति भारवि की पक्षभरता में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ती। वनेचर शुरू में ही स्पष्ट कर देता है–

क्रियासु युक्तैर्नृपचारचक्षुषो न वंचनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः॥ 1.4
स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः।
सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसंपदः 1:5

(किसी कार्य के लिए नियुक्त कर्मचारी द्वारा स्वामी को धोखा नहीं दिया जाना चाहिए। अस्तु, मैं प्रिय या अप्रिय आपको जो भी बताऊँ, उसके लिए क्षमा करेंगे। वस्तुतः ऐसी वाणी, जो हितकारी भी हो और मनोहर भी लगे, दुर्लभ है। वह मंत्री कैसा जो उचित (किन्तु अप्रिय लगनेवाली) सलाह न दे, और वह राजा कैसा जो हितकारी (किन्तु कठोर) बात न सुन सके। राजा और मंत्री में परस्पर अनुकूलता (पूर्ण विश्वास) होने पर ही राज्य के प्रति सभी प्रकार की समृद्धियां अनुरक्त होती हैं।)

इस पूरे प्रकरण के आरम्भ में द्रौपदी की बातों के समर्थन में भीम द्वारा युधिष्ठिर के प्रति कुछएक नीतिवचन कहे गये हैं। उन्हीं में से एक नीचे उद्धृत है–

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः 30
(किरातार्जुनीयम्, द्वितीय सर्ग)

(किसी कार्य को बिना सोचे-विचारे अनायास नहीं करना चाहिए। विवेकहीनता आपदाओं का परम आश्रय है। गुणों की लोभी संपदाएं अच्छी प्रकार से विचार करने वाले का स्वयमेव वरण करती हैं, अर्थात् उसके पास स्वयं चली आती हैं।)

काव्यसौन्दर्य एवं अर्थ गौरव

भारवि अपने अर्थ-गौरव (गहन भाव-सम्पदा) के लिए जाने जाते हैं–'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्'। इस अर्थ-गौरव से मेल खाती एक विदग्ध भाषा और अभिव्यक्ति-कौशल उनकी सम्पदा है। राजनीति और व्यवहार-नीति सहित जीवन के विविध आयामों में उनकी असाधारण पैठ है। आदर्श और व्यवहार के द्वंद्व तथा यथार्थ जीवन के अतिरेकों के समाहार से अर्जित संतुलन उनके लेखन को 'समस्तलोकरंजक' बनाता है। लेकिन भारवि मूलतः जीवन की विडंबनाओं और विसंगतियों के कवि हैं, उनका सामना करते हैं और उनके खुरदुरे यथार्थ के बीच संगति बिठाने का प्रयास करते हैं। किरातार्जुनीयम् के पहले सर्ग में द्रौपदी और दूसरे में भीम द्वारा युधिष्ठिर को दुर्योधन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा के लिए उकसाने और युधिष्ठिर द्वारा उसे अनीतिपूर्ण बताकर अस्वीकार कर देने के क्रम में भारवि ने राजनीति के दो छोरों के बीच के द्वंद्व पर बहुत सार्थक विमर्श प्रस्तुत किया है। इसी तरह ग्यारहवें सर्ग में मोक्ष के स्थान पर शक्ति और प्रभुता के लिए किए जा रहे अर्जुन के तप को इन्द्र द्वारा गर्हित बताए जाने पर, अर्जुन के प्रत्युत्तर के रूप में भारवि ने जीवन-व्यवहार में अन्याय के प्रतिकार, लौकिक सफलता, यश और आत्म-सम्मान के महत्व पर जो गम्भीर विचार दिए हैं वे स्वस्थ इहलौकिक जीवन का एक संतुलित आदर्श का चित्र उपस्थित करते हैं।

भाषा पर अपने अप्रतिम अधिकार के चलते चित्रकाव्य के जिस भाषिक चमत्कार (किरातार्जुनीयम् के पंद्रहवें सर्ग में) की परम्परा भारवि ने शुरू की, उनके बाद के कवियों के लिए वह कसौटी बन गई और माघ (शिशुपालवधम्) में जाकर वह चरमोत्कर्ष पर पहुँची।

निम्नलिखित पंक्तियों में चित्रलंकार देखिए-

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत्

अनुवाद–हे नाना मुख वाले (नानानन)! वह निश्चित ही (ननु) मनुष्य नहीं है, जो जो अपने से कमजोर से भी पराजित हो जाय और वह भी मनुष्य नहीं है (ना-अना) जो अपने से कमजोर को मारे (नुन्नोनो)। जिसका नेता पराजित न हुआ हो वह हार जाने के बाद भी अपराजित है (नुन्नोऽनुन्नो)। जो पूर्णनतः पराजित को भी मार देता है (नुन्ननुन्ननुत्) वह पापरहित नहीं है (नानेना)।

इसी प्रकार निम्नलिखित श्लोक को ध्यान से देखिये। इसे सर्वतोभद्र (सभी तरफ से सुन्दर) कहते हैं। इसमें पहली पंक्ति को बायें से पढ़िये या दायें से- समान है। इसी तरह सभी पंक्तियों के प्रथम अक्षर (मात्र सहित) लीजिये या अन्तिम अक्षर लीजिये - 'देवाकानि मिलता है।

देवाकानिनि कावादे वाहिकास्वस्वकाहि वा।
काकारेभभरे का का निस्वभव्यव्यभस्वनि॥

एक अन्य श्लोक देखिये। इसमें महायमक अलंकार है। एक ही पद (विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा) चार बार आया है, किन्तु अर्थ भिन्न-भिन्न हैं।

विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः।
विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः ॥

संरचना

कीरातार्जुनीयम् में 18 सर्ग हैं।

किरातार्जुनीयम् के पहले सर्ग में द्रौपदी और दूसरे में भीम द्वारा युधिष्ठिर को दुर्योधन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा के लिए उकसाने और युधिष्ठिर द्वारा उसे अनीतिपूर्ण बताकर अस्वीकार कर देने के क्रम में भारवि ने राजनीति के दो छोरों के बीच के द्वंद्व पर बहुत सार्थक विमर्श प्रस्तुत किया है। तीसरे सर्ग में व्यास कौरव पक्ष के भीष्म, द्रोण, कर्ण-जैसे धुरंधरों को पांडवों द्वारा अजेय बताते हुए 13 साल की अवधि में हर तरह से शक्ति-संवर्धन करने और भविष्य के अवश्यम्भावी युद्ध की तैयारी के लिए उसका उपयोग करने की सलाह देते हैं। इसके लिये वे अर्जुन को उच्च कोटि के शस्त्रस्त्र हेतु तपस्या से इंद्र को प्रसन्न करने के लिए प्रेरित करते हैं और अपने साथ लाए एक यक्ष को भी छोड़ जाते

हैं, जो अर्जुन को इंद्र की तपस्या के लिए उपयुक्त स्थान तक ले जाएगा। चौथे सर्ग में यक्ष के मार्गदर्शन में अर्जुन की द्वैतवन से हिमालय तक की यात्रा का सजीव एवं रोचक वर्णन है, जिसमें शरद ऋतु की थिर और संयत प्रकृति और उसके साथ घुले-मिले जन-जीवन का उल्लास नाना रूपों में तरंगित है। पाँचवाँ सर्ग यक्ष के साथ अर्जुन के यात्र-प्रसंग से गिरिराज हिमालय के पर्वतीय प्रदेश के विशद, अलंकारिक वर्णन की छटा से दीप्त है।

छठे सर्ग का वर्ण्य विषय है—अर्जुन की आँखों से देखी इंद्रनील की अप्रतिम शोभा, वहाँ पहुंचकर अर्जुन द्वारा तप का प्रारम्भ, प्रकृति के विभिन्न उपादानों का तप में सहयोग, वहाँ तैनात वनदेवों द्वारा अमरावती पहहुँचकर इन्द्र को सूचित करना, इंद्र द्वारा देवांगनाओं को उनके सहचर गंधर्वों के साथ वहाँ जाकर अपने हाव-भाव और सौन्दर्य से अर्जुन की तपस्या में विघ्न डालने का आदेश देना, ताकि उनकी निष्ठा की परीक्षा हो सके। सातवें सर्ग में अप्सराएँ तथा उनके सहचर गन्धर्व पूरे उल्लास-विलास के साथ आकाश मार्ग से विशेष प्रकार के हाथियों और रथों पर सवार देव गंगा के किनारे-किनारे अमरावती से इंद्रकील तक की यात्रा करते हैं। इंद्रकील के पास नीचे उतरकर वे पृथ्वी-गंगा के रम्य तट पर अपनी माया से गंधर्व-नगरी जैसा दिव्य शिविर बना लेते हैं। आठवाँ सर्ग में अप्सराएँ अपने शिविरों से वन-विहार के लिए निकलती हैं। यहाँ से शृंगार रस का रंग चढ़ना शुरू होता है, जो इसी सर्ग में वर्णित जल-क्रीड़ा में गाढ़ा होता है और नवें सर्ग में मद्य-पान के साथ सम्पन्न काम-केलि में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। दसवाँ सर्ग अप्सराओं द्वारा अर्जुन का ध्यान खींचकर उसे तपस्या से च्युत करने के अभियान और उसकी असफलता का है।

ग्यारहवें सर्ग में वयोवृद्ध मुनि के वेष में इन्द्र के आगमन और उनके द्वारा तपस्या के सांसारिक लक्ष्य की निस्सारता का निदर्शन है, जिसके प्रत्युत्तर में अर्जुन लौकिक जीवन के मूल्यों, प्राथमिकताओं का अपना आख्यान रचते हैं। इस सर्ग के अंत में अर्जुन के तर्क से संतुष्ट देवराज अपने स्वरूप में प्रकट होकर उसके लक्ष्य के अनुरूप शिव की आराधना का उपदेश देते हैं। बारहवें सर्ग में अर्जुन घोर तपस्या आरम्भ कर देते हैं, जिससे घबराकर अन्य संन्यासी शंकर के पास जा पहुंचते हैं। शंकर किरात का वेश धरकर अर्जुन से मिलते हैं। तेरहवें सर्ग में अर्जुन और किरात रूपधारी शिव दोनों सूकर रूपधारी (मूक दानव) पर तीर से आक्रमण करते हैं।

किरातार्जुनीयम् के अंतिम पाँच सर्ग (14 से 18) अपनी गण-सेना के साथ किरातवेशधारी शिव और अर्जुन के बीच युद्ध को समर्पित हैं। 15वें सर्ग में, जिसमें युद्ध का यह चरण आता है, भारवि ने चित्रकाव्य (अलंकारिक छंद) का प्रयोगकर महाकाव्य के दायरे के भीतर एक नई परम्परा का सूत्रपात किया है।

टीका

किरातार्जुनीयम् समालोचकों को अतिप्रिय है। इस पर 42 से अधिक टीकाएँ हैं।

शिशुपालवध

महाकवि माघ द्वारा रचित संस्कृत काव्य है। 20 सर्गों तथा 1800 अलंकारिक छन्दों में रचित यह ग्रन्थ संस्कृत के छः महाकाव्यों में गिना जाता है। इसमें कृष्ण द्वारा शिशुपाल के वध की कथा का वर्णन है।

जरासंध का वध करके श्री कृष्ण, अर्जुन और भीम इन्द्रप्रस्थ लौट आये एवं धर्मराज युधिष्ठिर से सारा वृत्तांत कहा, जिसे सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुये। तत्पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ की तैयारी शुरू करवा दी। उस यज्ञ के ऋतिज आचार्य होते थे।

यज्ञ को सफल बनाने के लिये वहाँ पर भारतवर्ष के समस्त बड़े-बड़े ऋषि महर्षि - भगवान वेद व्यास, भारद्वाज, सुनत्तु, गौतम, असित, वशिष्ठ, च्यवन, कण्डव, मैत्रेय, कवष, जित, विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिन, क्रतु, पैल, पाराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्वा, कश्यप, धौम्य, परशुराम, शुक्राचार्य, आसुरि, वीतहोत्र, मधुद्वन्दा, वीरसेन, अकृतब्रण आदि - उपस्थित थे। सभी देशों के राजाधिराज भी वहाँ पधारे।

ऋतिजों ने शास्त्र विधि से यज्ञ-भूमि को सोने के हल से जुतवा कर धर्मराज युधिष्ठिर को दीक्षा दी। धर्मराज युधिष्ठिर ने सोमलता का रस निकालने के समय यज्ञ की भूल-चूक देखने वाले सद्पतियों की विधिवत पूजा की। अब समस्त सभासदों में इस विषय पर विचार होने लगा कि सब से पहले किस देवता की पूजा की जाये। तब सहदेव जी उठ कर बोले -

श्री कृष्ण देवन के देव, उन्हीं को सब से आगे लेव।
ब्रह्मा शंकर पूजत जिनको, पहिली पूजा दीजै उनको।

अक्षर ब्रह्म कृष्ण यदुराई, वेदन में महिमा तिन गाई।
अग्र तिलक यदुपति को दीजै, सब मिलि पूजन उनको कीजै।

परमज्ञानी सहदेव जी के वचन सुनकर सभी सत्पुरुषों ने साधु! साधु! कह कर पुकारा। भीष्म पितामह ने स्वयं अनुमोदन करते हुये सहदेव के कथन की प्रशंसा की। तब धर्मराज युधिष्ठिर ने शास्त्रोक्त विधि से भगवान श्री कृष्ण का पूजन आरम्भ किया। चेदिराज शिशुपाल अपने आसन पर बैठा हुआ यह सब दृश्य देख रहा था। सहदेव के द्वारा प्रस्तावित तथा भीष्म के द्वारा समर्थित श्री कृष्ण की अग्र पूजा को वह सहन न कर सका और उसका हृदय क्रोध से भर उठा। वह उठ कर खड़ा हो गया और बोला, 'हे सभासदों! मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि कालवश सभी की मति मारी गई है। क्या इस बालक सहदेव से अधिक बुद्धिमान व्यक्ति इस सभा में नहीं है, जो इस बालक की हाँ में हाँ मिला कर अयोग्य व्यक्ति की पूजा स्वीकार कर ली गई है? क्या इस कृष्ण से आयु, बल तथा बुद्धि में कोई भी बड़ा नहीं है? बड़े-बड़े त्रिकालदर्शी ऋषि-महर्षि यहां पधारे हुये हैं। बड़े-बड़े राजा-महाराजा यहाँ पर उपस्थित हैं। क्या इस गाय चराने वाल ग्वाले के समान कोई और यहाँ नहीं है? क्या कौआ हविश्यान्न ले सकता है? क्या गीदड़ सिंह का भाग प्राप्त कर सकता है? न इसका कोई कुल है न जाति, न ही इसका कोई वर्ण है। राजा ययाति के शाप के कारण राजवंशियों ने इस यदुवंश को वैसे ही बहिष्कृत कर रखा है। यह जरासंघ के डर से मथुरा त्याग कर समुद्र में जा छिपा था। भला यह किस प्रकार अग्रपूजा पाने का अधिकारी है? इस प्रकार शिशुपाल जगत के स्वामी श्री कृष्ण को गाली देने लगा। उसके इन कटु वचनों की निन्दा करते हुये अर्जुन और भीमसेन अनेक राजाओं के साथ उसे मारने के लिये उद्यत हो गये, किन्तु श्री कृष्णचन्द्र ने उन सभी को रोक दिया। श्री कृष्ण के अनेक भक्त सभा छोड़ कर चले गये, क्योंकि वे श्री कृष्ण की निन्दा नहीं सुन सकते थे।

जब शिशुपाल श्री कृष्ण को एक सौ गाली दे चुका तब श्री कृष्ण ने गरज कर कहा, 'बस शिशुपाल! अब मेरे विषय में तेरे मुख से एक भी अपशब्द निकला तो तेरे प्राण नहीं बचेंगे। मैंने तेरे एक सौ अपशब्दों को क्षमा करने की प्रतिज्ञा की थी इसी लिये अब तक तेरे प्राण बचे रहे।' श्री कृष्ण के इन वचनों को सुन कर सभा में उपस्थित शिशुपाल के सारे समर्थक भय से थर्रा गये किन्तु शिशुपाल का विनाश समीप था। अतः उसने काल के वश होकर अपनी तलवार निकालते हुये श्री कृष्ण को फिर से गाली दी। शिशुपाल के मुख से अपशब्द

के निकलते ही श्री कृष्ण ने अपना सुदर्शन चक्र चला दिया और पलक झपकते ही शिशुपाल का सिर कट कर गिर गया। उसके शरीर से एक ज्योति निकल कर भगवान श्री कृष्णचन्द्र के भीतर समा गई और वह पापी शिशुपाल, जो तीन जन्मों से भगवान से बैर भाव रखते आ रहा था, परमगति को प्राप्त हो गया। यह भगवान विष्णु का वही द्वारपाल था, जिसे कि सनकादि मुनियों ने शाप दिया था। वे जय और विजय अपने पहले जन्म में हिरण्यकश्यपु और हिरण्याक्ष, दूसरे जन्म में रावण और कुम्भकर्ण तथा अंतिम तीसरे जन्म में कंस और शिशुपाल बने एवं श्री कृष्ण के हाथों अपने परमगति को प्राप्त होकर पुनः विष्णुलोक लौट गये।

नैषधीयचरित

नैषधीयचरित, श्रीहर्ष द्वारा रचित संस्कृत महाकाव्य है। यह वृहत्त्रयी नाम से प्रसिद्ध तीन महाकव्यों में से एक है। महाभारत का नलोपाख्यान इस महाकाव्य का मूल आधार है।

संरचना

इस ग्रन्थ के दो भाग हैं- पूर्व और उत्तर। दोनों में 11-11 सर्ग हैं (कुल 22 सर्ग) इस ग्रन्थ के अन्त में यह निर्दिष्ट नहीं है कि 'ग्रन्थ समाप्त हुआ' - इस कारण संशय होता है कि यह ग्रन्थ अपूर्ण है। यह काव्य कठिन है, क्योंकि कहा गया है- नैषधं विद्वदौषधम् (नैषध विद्वानों के लिये औषध है।)

परिचय

अलंकृत काव्यरचना शैली की प्रधानतावाले माघोत्तरयुगी कवियों द्वारा निर्मित काव्यों में अलंकरण प्रधानता, प्रौढ़ोक्ति कल्पना से प्रेरित वर्णन प्रंसगों की स्फीतता तथा पांडित्यलब्ध ज्ञानगरिष्ठाता अतिसंयोजन आदि की प्रवृत्ति बढ़ी। उस रुचि का पूर्ण उत्कर्ष श्रीहर्ष के नैषधीय चरित (या जिसे केवल 'नैषध' भी कहते हैं) में देखा जा सकता है। बृहत्त्रयी के इस बृहत्तम महाकाव्य का महाकवि, न्याय, मीमांसा, योगशास्त्र आदि का उद्भट विद्वान् था और था, तार्किक पद्धति का महान अद्वैत वेदांती। नैषध में शास्त्रीय वैदुष्य और कल्पना की अत्युच्च उड़ान, आद्यंत देखने को मिलती है।

इस महाकाव्य का मूल आधार है 'महाभारत' का 'नलोपाख्यान'। मूल कथा के मूल रूप में यथावश्यक परिवर्तन भी यत्र-तत्र किया गया है। ऐसा

मालूम पड़ता है कि इस पुराणकथा की लोकप्रियता ने बड़े प्राचीन काल से ही इसे लोककथा बना दिया है। इस कारण कवि ने वहाँ से भी कुछ तत्त्व लिए। यह महाकाव्य आद्यंत शृंगारी है। पूर्वराग, विरह, हंस का दूतकर्म, स्वयंबर, नल-दमयंती-विवाह, दंपति का प्रथम समागम और अष्टयामचर्या तथा संयोगविलास की खंडकाव्यीय कथावस्तु को कवि के वर्णनचरित्रों और कल्पनाजन्य वैदुष्यविलास ने अत्यत वृहदाकार बना दिया है। शृंगारपरिकर के वर्ण्यचित्रों ने भी उस विस्तारण में योग दिया है। अपनी कल्पना की उड़ान के बल से पंडित कवि द्वारा एक ही चित्र को नई-नई अप्रस्तुत योजनाओं द्वारा अनेक रूपों में विस्तार के साथ रखा गया है। लगता है, एक प्रस्तुत को एक के बाद एक इतर अप्रस्तुतों द्वारा आंकलित करने में कवि की प्रज्ञा थकती ही नहीं। प्रकृतिजगत् के स्वभावेक्तिपथ रूपचित्रंकन, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, श्लेष आदि अर्थालंकारों की समर्थयोजना, अनुप्रासयमक, शब्दश्लेष, शब्दचित्रदि चमत्कारों का साधिकार प्रयोग और शब्दकोश के विनियोग प्रयोग की अद्‌भुत क्षमता, शास्त्रीय पक्षों का मार्मिक, प्रौढ़ और समीचीन नियोजन, कल्पनाओं और भावचित्रों का समुचित निवेशन, प्रथम-समागम-कालीन मुग्धनववधू की मनःस्थिति, लज्जा और उत्कंठा का सजीव अंकन, अलंकरण और चमत्कार की अलंकृत काव्यशैली का अनायास उद्‌भावन और अपने पदलालित्य आदि के कारण इस काव्य का संस्कृत की पंडितमंडली में आज तक निरंतर अभूतपूर्व समादर होता चला आ रहा है।

माघ कवि से भी अधिक श्रीहर्ष ने इसे काव्यबाधक पांडित्यप्रदर्शन के योग से बहुत बढ़ा दिया है, जिससे लघुकथानकवाला काव्य अति वृहत् हो गया है। शृंगारी विलासों और मुख्यतः संयोग के लिये के कुशलशिल्पी और रसिक नागरों की विलासवृत्तियों के अंकन में आसंजनशील होकर भी कवि के दार्शनिक वैदुष्य के कारण काव्य में स्थान-स्थान पर रुक्षता बढ़ गई। पुनरुक्ति, च्युतसंस्कृति आदि अनेक दोष भी यत्र-तत्र ढूँढ़ जा सकते हैं, परंतु इनके रहने पर भी अपनी भव्यता और उदात्तता, कल्पनाशीलता और वैदुष्यमत्ता, पदलालित्य और अर्थप्रौढ़ता के कारण महाकाव्य में कलाकार की अद्‌भुत प्रतिभा चमक उठी है, अलंकारमंडित होने पर भी उसकी क्रीड़ा में सहज विलास है। उसमें प्रौढ़ शास्त्रीयता और कल्पनामनोहर भव्यता है। बृहत्रयी के तीनों महाकाव्यों का अध्ययन पंडितों के लिए आज भी परमावश्यक माना जाता है।

9वें सर्ग में वाग्मिता के बारे में श्रीहर्ष की सूक्ति देखिये-

अये ! ममोदासितमेव जिह्वया
द्वयेऽपि तस्मिन्ननतिप्रयोजने।
गरौ गिरः पल्लवनार्थलाघवे
मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता ॥8॥

(यहाँ राजा नल दमयन्ती से कह रहे हैं कि हे दमयन्ती! जिसका कोई प्रयोजन नहीं था, उन दोनों में ही मेरी जिह्वा उदासीन रही (कम बोल पाया)। (इसका कारण यह है कि) वाणी का विस्तार एवं अर्थलाघव दोनों ही विषतुल्य होते हैं, (क्योंकि) संयमित (माप-तौलकर बोलना) एवं सारयुक्त वाणी ही वाग्मिता है।)

7

संस्कृत के प्राचीन कवि

वाल्मीकि

महर्षि वाल्मीकि संस्कृत भाषा के आदि कवि

हिन्दुओं के आदि काव्य 'रामायण' के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध हैं। महर्षि कश्यप और अदिति के नवम पुत्र वरुण (आदित्य) से इनका जन्म हुआ। इनकी माता चर्षणी और भाई भृगु थे। वरुण का एक नाम प्रचेत भी है, इसलिये इन्हें प्राचेतस् नाम से उल्लेखित किया जाता है। उपनिषद के विवरण के अनुसार ये भी अपने भाई भृगु की भांति परम ज्ञानी थे। एक बार ध्यान में बैठे हुए वरुण-पुत्र के शरीर को दीमकों ने अपना ढूह (बाँबी) बनाकर ढक लिया था। साधना पूरी करके जब ये दीमक-ढूह से जिसे वाल्मीकि कहते हैं, बाहर निकले तो लोग इन्हें वाल्मीकि कहने लगे।

तमसा नदी के तट पर व्याध द्वारा क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक को मार डालने पर वाल्मीकि के मुंह से व्याध के लिए शाप के जो उद्‌गार निकले वे लौकिक छंद में एक श्लोक के रूप में थे। इसी छंद में उन्होंने नारद से सुनी राम की कथा के आधार पर रामायण की रचना की। कुछ लोगों का अनुमान है कि हो सकता है, महाभारत की भांति रामायण भी समय-समय पर कई व्यक्तियों

ने लिखी हो और अतिम रूप किसी एक ने दिया हो और वह वाल्मीकि की शिष्य परंपरा का ही हो।

वाल्मीकि डाकू?

जिस वाल्मीकि के डाकू का जीवन बिताने का उल्लेख मिलता है, उसे रामायण के रचयिता से भिन्न माना जाता है। पौराणिक विवरण के अनुसार यह रत्नाकर नाम का दस्यु था और यात्रियों को मारकर उनके धन से अपना परिवार पालता था। एक दिन नारदजी भी इनके चक्कर में पड़ गए। जब रत्नाकर ने उन्हें भी मारना चाहा तो नारद ने पूछा-जिस परिवार के लिए तुम इतने अपराध करते हो, क्या वह तुम्हारे पापों का भागीदार बनने को तैयार है ? रत्नाकर नारद को पेड़ से बांधकर इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए घर गया। वह यह जानकर स्तब्ध रह गया कि परिवार का कोई भी व्यक्ति उसके पाप का भागीदार बनने को तैयार नहीं है। लौटकर उसने नारद के चरण पकड़ लिए और डाकू का जीवन छोड़कर तपस्या करने लगा। इसी में उसके शरीर को दीमकों ने अपना घर बनाकर ढक लिया, जिसके कारण यह भी वाल्मीकि के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दीमक या चींटियों की बाँबी

'मरा' या 'राम'

एक अन्य विवरण के अनुसार इनका नाम अग्निशर्मा था और इन्हें हर बात उलटकर कहने में रस आता था। इसलिए ऋषियों ने डाकू जीवन में इन्हें 'मरा' शब्द का जाप करने की राय दी। तेरह वर्ष तक मरा रटते-रटते यही 'राम' हो गया। बिहार के चंपारन जिले का भैंसा लोटन गांव वाल्मीकि का आश्रम था जो अब वाल्मीकि नगर कहलाता है।

कथा

महर्षि वाल्मीकि पहले का नाम रत्नाकर था। इनका जन्म पवित्र ब्राह्मण कुल में हुआ था, किन्तु डाकुओं के संसर्ग में रहने के कारण ये लूट-पाट और हत्याएँ करने लगे और यही इनकी आजीविका का साधन बन गया। इन्हें जो भी मार्ग में मिल जाता, ये उसकी सम्पत्ति लूट लिया करते थे। एक दिन इनकी मुलाकात देवर्षि नारद से हुई। इन्होंने नारद जी से कहा कि 'तुम्हारे पास जो

कुछ है, उसे निकालकर रख दो! नहीं तो जीवन से हाथ धोना पड़ेगा।' देवर्षि नारद ने कहा- 'मेरे पास इस वीणा और वस्त्र के अतिरिक्त है ही क्या? तुम लेना चाहो तो इन्हें ले सकते हो, लेकिन तुम यह क्रूर कर्म करके भयंकर पाप क्यों करते हो? देवर्षि की कोमल वाणी सुनकर वाल्मीकि का कठोर हृदय कुछ द्रवित हुआ। इन्होंने कहा- भगवान्! मेरी आजीविका का यही साधन है। इसके द्वारा मैं अपने परिवार का भरण-पोषण करता हूँ।' देवर्षि बोले- 'तुम जाकर पहले अपने परिवार वालों से पूछकर आओं कि वे तुम्हारे द्वारा केवल भरण-पोषण के अधिकारी हैं या तुम्हारे पाप-कर्मों में भी हिस्सा बटायेंगे। तुम्हारे लौटने तक हम कहीं नहीं जायेंगे। यदि तुम्हें विश्वास न हो तो मुझे इस पेड़ से बाँध दो।' देवर्षि को पेड़ से बाँध कर ये अपने घर गये। इन्होंने बारी-बारी से अपने कुटुम्बियों से पूछा कि 'तुम लोग मेरे पापों में भी हिस्सा लोगे या मुझ से केवल भरण-पोषण ही चाहते हो।' सभी ने एक स्वर में कहा कि 'हमारा भरण-पोषण तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुम कैसे धन लाते हो, यह तुम्हारे सोचने का विषय है। हम तुम्हारे पापों के हिस्सेदार नहीं बनेंगे।' अपने कुटुम्बियों की बात सुनकर वाल्मीकि के हृदय में आघात लगा। उनके ज्ञान नेत्र खुल गये। उन्होंने जल्दी से जंगल में जाकर देवर्षि के बन्धन खोले और विलाप करते हुए उनके चरणों में पड़ गये। नारद जी ने उन्हें धैर्य बँधाया और राम-नाम के जप का उपदेश दिया, किन्तु पूर्वकृत भयंकर पापों के कारण उनसे राम-नाम का उच्चारण नहीं हो पाया। तदनन्तर नारद जी ने सोच-समझकर उनसे मरा-मरा जपने के लिये कहा।

भगवान्नाम का निरन्तर जप करते-करते वाल्मीकि अब ऋषि हो गये। उनके पहले की क्रूरता अब प्राणिमात्र के प्रति दया में बदल गयी। एक दिन इनके सामने एक व्याध ने क्रौंच पक्षी के एक जोड़े में से एक को मार दिया, तब दयालु ऋषि के मुख से व्याध को शाप देते हुए एक श्लोक निकला। वह संस्कृत भाषा में लौकिक छन्दों में प्रथम अनुष्टुप छन्द का श्लोक था। उसी छन्द के कारण वाल्मीकि आदिकवि हुए। इन्होंने ही रामायण रूपी आदिकाव्य की रचना की। वनवास के समय भगवान श्री राम ने स्वयं इन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया। सीता जी ने अपने वनवास का अन्तिम काल इनके आश्रम पर व्यतीत किया। वहीं पर लव और कुश का जन्म हुआ। वाल्मीकि जी ने उन्हें रामायण का गान सिखाया। इस प्रकार नाम-जप और सत्संग के प्रभाव से वाल्मीकि डाकू से ब्रह्मर्षि हो गये।

वेदव्यास

महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास महाभारत ग्रंथ के रचयिता थे। महाभारत ग्रंथ का लेखन भगवान् गणेश ने महर्षि वेदव्यास से सुन सुनकर किया था। वेदव्यास महाभारत के रचयिता ही नहीं, बल्कि उन घटनाओं के साक्षी भी रहे हैं, जो क्रमानुसार घटित हुई हैं। अपने आश्रम से हस्तिनापुर की समस्त गतिविधियों की सूचना उन तक तो पहुंचती थी। वे उन घटनाओं पर अपना परामर्श भी देते थे। जब-जब अंतर्द्वंद्व और संकट की स्थिति आती थी, माता सत्यवती उनसे विचार-विमर्श के लिए कभी आश्रम पहुंचती, तो कभी हस्तिनापुर के राजभवन में आमंत्रित करती थी। प्रत्येक द्वापर युग में विष्णु व्यास के रूप में अवतरित होकर वेदों के विभाग प्रस्तुत करते हैं। पहले द्वापर में स्वयं ब्रह्मा वेदव्यास हुए, दूसरे में प्रजापति, तीसरे द्वापर में शुक्राचार्य, चौथे में बृहस्पति वेदव्यास हुए। इसी प्रकार सूर्य, मृत्यु, इन्द्र, धनजंय, कृष्ण द्वैपायन अश्वत्थामा आदि अट्ठाईस वेदव्यास हुए। इस प्रकार अट्ठाईस बार वेदों का विभाजन किया गया। उन्होने ही अट्ठारह पुराणों की भी रचना की, ऐसा माना जाता है।पाराशर एवं व्यास दोनों अलग गोत्र हैं इसलिए इंटरनेट पर कहीं भी दोनों गोत्रों को समान मानना गलत है। वह पराशर मुनि के पुत्र थे। व्यास एवं पाराशर गोत्र में विवाह निषेध है। हाँ भावी वर का स्वयं का गोत्र इन दोनों गोत्रों से भिन्न होना चाहिये।

प्राचीन ग्रंथों के अनुसार महर्षि वेदव्यास स्वयं ईश्वर के स्वरूप थे। निम्नोक्त श्लोकों से इसकी पुष्टि होती है।

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्रः।
येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्ज्वालितो ज्ञानमयप्रदीपः॥

अर्थात् - जिन्होंने महाभारत रूपी ज्ञान के दीप को प्रज्वलित किया ऐसे विशाल बुद्धि वाले महर्षि वेदव्यास को मेरा नमस्कार है।

व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे।
नमो वै ब्रह्मनिधये वासिष्ठाय नमो नमः॥

अर्थात् - व्यास विष्णु के रूप है तथा विष्णु ही व्यास हैं ऐसे वसिष्ठ-मुनि के वंशज का मैं नमन करता हूँ। (वसिष्ठ के पुत्र थे 'शक्ति', शक्ति के पुत्र पराशर, और पराशर के पुत्र व्यास।

वेदव्यास के जन्म की कथा

पौराणिक कथाओं के अनुसार प्राचीन काल में सुधन्वा नाम के एक राजा थे। वे एक दिन आखेट के लिये वन गये। उनके जाने के बाद ही उनकी पत्नी रजस्वला हो गई। उसने इस समाचार को अपनी शिकारी पक्षी के माध्यम से राजा के पास भिजवाया। समाचार पाकर महाराज सुधन्वा ने एक दोने में अपना वीर्य निकाल कर पक्षी को दे दिया। पक्षी उस दोने को राजा की पत्नी के पास पहुँचाने आकाश में उड़ चला। मार्ग में उस शिकारी पक्षी को एक दूसरी शिकारी पक्षी मिल गया। दोनों पक्षियों में युद्ध होने लगा। युद्ध के दौरान वह दोना पक्षी के पंजे से छूट कर यमुना में जा गिरा। यमुना में ब्रह्मा के शाप से मछली बनी एक अप्सरा रहती थी। मछली रूपी अप्सरा दोने में बहते हुये वीर्य को निगल गई तथा उसके प्रभाव से वह गर्भवती हो गई। गर्भ पूर्ण होने पर एक निषाद ने उस मछली को अपने जाल में फँसा लिया। निषाद ने जब मछली को चीरा तो उसके पेट से एक बालक तथा एक बालिका निकली। निषाद उन शिशुओं को लेकर महाराज सुधन्वा के पास गया। महाराज सुधन्वा के पुत्र न होने के कारण उन्होंने बालक को अपने पास रख लिया, जिसका नाम मत्स्यराज हुआ। बालिका निषाद के पास ही रह गई और उसका नाम मत्स्यगंधा रखा गया, क्योंकि उसके अंगों से मछली की गंध निकलती थी। उस कन्या को सत्यवती के नाम से भी जाना जाता है। बड़ी होने पर वह नाव खेने का कार्य करने लगी एक बार पराशर मुनि को उसकी नाव पर बैठ कर यमुना पार करना पड़ा। पराशर मुनि सत्यवती रूप-सौन्दर्य पर आसक्त हो गये और बोले, 'देवि! मैं तुम्हारे साथ सहवास करना चाहता हूँ।' सत्यवती ने कहा, 'मुनिवर! आप ब्रह्मज्ञानी हैं और मैं निषाद कन्या। हमारा सहवास सम्भव नहीं है।' तब पराशर मुनि बोले, 'बालिके! तुम चिन्ता मत करो। प्रसूति होने पर भी तुम कुमारी ही रहोगी।' इतना कह कर उन्होंने अपने योगबल से चारों ओर घने कुहरे का जाल रच दिया और सत्यवती के साथ भोग किया। तत्पश्चात् उसे आशीर्वाद देते हुये कहा, तुम्हारे शरीर से जो मछली की गंध निकलती है वह सुगन्ध में परिवर्तित हो जायेगी।'

महर्षि वेदव्यास अपनी माता के साथ

समय आने पर सत्यवती गर्भ से वेद वेदांगों में पारंगत एक पुत्र हुआ। जन्म होते ही वह बालक बड़ा हो गया और अपनी माता से बोला, 'माता! तू जब कभी

भी विपत्ति में मुझे स्मरण करेगी, मैं उपस्थित हो जाउँगा।' इतना कह कर वे तपस्या करने के लिये द्वैपायन द्वीप चले गये। द्वैपायन द्वीप में तपस्या करने तथा उनके शरीर का रंग काला होने के कारण उन्हे कृष्ण द्वैपायन कहा जाने लगा। आगे चल कर वेदों का भाष्य करने के कारण वे वेदव्यास के नाम से विख्यात हुये।

वेद व्यास के विद्वान शिष्य

1. पैल
2. जैमिन
3. वैशम्पायन
4. सुमन्तुमुनि
5. रोम हर्षण

वेद व्यास का योगदान

हिन्दू धर्म शास्त्रों के अनुसार महर्षि व्यास त्रिकालज्ञ थे। तथा उन्होंने दिव्य दृष्टि से देख कर जान लिया कि कलियुग में धर्म क्षीण हो जायेगा। धर्म के क्षीण होने के कारण मनुष्य नास्तिक, कर्त्तव्यहीन और अल्पायु हो जायेंगे। एक विशाल वेद का सांगोपांग अध्ययन उनके सामर्थ से बाहर हो जायेगा। इसीलिये महर्षि व्यास ने वेद का चार भागों में विभाजन कर दिया, जिससे कि कम बुद्धि एवं कम स्मरणशक्ति रखने वाले भी वेदों का अध्ययन कर सकें। व्यास जी ने उनका नाम रखा – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। वेदों का विभाजन करने के कारण ही व्यास जी वेद व्यास के नाम से विख्यात हुये। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को क्रमशः अपने शिष्य पैल, जैमिन, वैशम्पायन और सुमन्तुमुनि को पढ़ाया। वेद में निहित ज्ञान के अत्यन्त गूढ़ तथा शुष्क होने के कारण वेद व्यास ने पाँचवें वेद के रूप में पुराणों की रचना की, जिनमें वेद के ज्ञान को रोचक कथाओं के रूप में बताया गया है।

पुराणों को उन्होंने अपने शिष्य रोम हर्षण को पढ़ाया। व्यास जी के शिष्यों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उन वेदों की अनेक शाखाएँ और उप शाखाएँ बना दीं। व्यास जी ने महाभारत की रचना की।

गणेश महाभारत लिखते हुए।

व्यास जी गणेश सें महाभारत लिखवाते हुए, अंकोरवाट मंदिर।

पौराणिक–महाकाव्य युग की महान विभूति, महाभारत, अट्ठारह पुराण, श्रीमद्भागवत, ब्रह्मसूत्र, मीमांसा जैसे–अद्वितीय साहित्य–दर्शन के प्रणेता वेदव्यास का जन्म आषाढ़ पूर्णिमा को लगभग 3000 ई. पूर्व में हुआ था। वेदांत दर्शन, अद्वैतवाद के संस्थापक वेदव्यास ऋषि पराशर के पुत्र थे। पत्नी आरुणी से उत्पन्न इनके पुत्र थे महान बाल योगी शुकदेव। श्रीमद्भागवत गीता विश्व के सबसे बड़े महाकाव्य 'महाभारत' का ही अंश है। रामनगर के किले में और व्यास नगर में वेदव्यास का मंदिर है, जहाँ माघ में प्रत्येक सोमवार मेला लगता है। गुरु पूर्णिमा का प्रसिद्ध पर्व व्यास जी की जयन्ती के उपलक्ष्य में मनाया जाता है।

पुराणों तथा महाभारत के रचयिता महर्षि का मन्दिर व्यासपुरी में विद्यमान है, जो काशी से पाँच मील की दूरी पर स्थित है। महाराज काशी नरेश के रामनगर दुर्ग में भी पश्चिम भाग में व्यासेश्वर की मूर्ति विराजमान् है, जिसे साधारण जनता छोटा वेदव्यास के नाम से जानती है। वास्तव में वेदव्यास की यह सब से प्राचीन मूर्ति है। व्यासजी द्वारा काशी को शाप देने के कारण विश्वेश्वर ने व्यासजी को काशी से निष्कासित कर दिया था। तब व्यासजी लोलार्क मंदिर के आग्नेय कोण में गंगाजी के पूर्वी तट पर स्थित हुए।

इस घटना का उल्लेख काशी खंड में इस प्रकार है–

लोलार्कादं अग्निदिग्भागे, स्वर्घुनी पूर्वरोधसि। स्थितो ह्यद्यापि पश्चेत्सः काशीप्रासाद राजिकाम्।। स्कंद पुराण, काशी खंड 96–201

व्यासजी ने पुराणों तथा महाभारत की रचना करने के पश्चात् ब्रह्मसूत्रों की रचना भी यहाँ की थी। वाल्मीकि की ही तरह व्यास भी संस्कृत कवियों के लिये उपजीव्य हैं। महाभारत में उपाख्यानों का अनुसरण कर अनेक संस्कृत कवियों ने काव्य, नाटक आदि की सृष्टि की है। महाभारत के संबंध में स्वयं व्यासजी की ही उक्ति अधिक सटीक है– इस ग्रंथ में जो कुछ है, वह अन्यत्र है, परंतु जो इसमें नहीं है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

कालपी में यमुना के किसी द्वीप में इनका जन्म हुआ था। व्यासजी कृष्ण द्वैपायन कहलाये, क्योंकि उनका रंग श्याम था। वे पैदा होते ही माँ की आज्ञा से तपस्या करने चले गये थे और कह गये थे कि जब भी तुम स्मरण करोगी, मैं आ जाऊंगा। वे धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर के जन्मदाता ही नहीं, अपितु विपत्ति के समय वे छाया की तरह पाण्डवों का साथ भी देते थे। उन्होंने तीन वर्षों के अथक परिश्रम से महाभारत ग्रंथ की रचना की थी–

त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनोमुनिरू। महाभारतमाख्यानं कृतवादि मुदतमम। आदिपर्व - (56-52)

जब इन्होंने धर्म का ह्रास होते देखा तो इन्होंने वेद का व्यास अर्थात विभाग कर दिया और वेदव्यास कहलाये। वेदों का विभाग कर उन्होंने अपने शिष्य सुमन्तु, जैमिनी, पैल और वैशम्पायन तथा पुत्र शुकदेव को उनका अध्ययन कराया तथा महाभारत का उपदेश दिया। आपकी इस अलौकिक प्रतिभा के कारण आपको भगवान का अवतार माना जाता है।

संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि के बाद व्यास ही सर्वश्रेष्ठ कवि हुए हैं। इनके लिखे काव्य 'आर्ष काव्य' के नाम से विख्यात हैं। व्यास जी का उद्देश्य महाभारत लिख कर युद्ध का वर्णन करना नहीं, बल्कि इस भौतिक जीवन की निःसारता को दिखाना है। उनका कथन है कि भले ही कोई पुरुष वेदांग तथा उपनिषदों को जान ले, लेकिन वह कभी विचक्षण नहीं हो सकता, क्योंकि यह महाभारत एक ही साथ अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा कामशास्त्र है।

1. यो विध्याच्चतुरो वेदान् सांगोपनिषदो द्विजः। न चाख्यातमिदं विद्यूयानैव स स्यादिचक्षणः।। 2. अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं महत। कामाशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेना मितु बुद्धिना।। महा. आदि अ. 2: 28-83

अश्वघोष

संस्कृत में बौद्ध महाकाव्यों की रचना का सूत्रपात सर्वप्रथम महाकवि अश्वघोष ने ही किया था। अतः महाकवि अश्वघोष संस्कृत के प्रथम बौद्धकवि हैं। चीनी अनुश्रुतियों तथा साहित्यिक परम्परा के अनुसार महाकवि अश्वघोष सम्राट कनिष्क के राजगुरु एवम् राजकवि थे। इतिहास में कम से कम दो कनिष्कों का उल्लेख मिलता है। द्वितीय कनिष्क प्रथम कनिष्क का पौत्र था। दो कनिष्कों के कारण अश्वघोष के समय असंदिग्ध रूप से निर्णीत नहीं था।

विण्टरनित्स के अनुसार कनिष्क 125 ई. में सिंहासन पर आसीन हुआ था। तदनुसार अश्वघोष का स्थितिकाल भी द्वितीय शती ई. माना जा सकता है, परन्तु अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि कनिष्क शक संवत का प्रवर्तक है। यह संवत्सर 78 ई. से प्रारम्भ हुआ था। इसी आधार पर कीथ अश्वघोष का समय 100 ई. के लगभग मानते हैं। कनिष्क का राज्यकाल 78 ई. से 125 ई. तक मान लेने पर महाकवि अश्वघोष का स्थितिकाल भी प्रथम शताब्दी माना जा सकता है।

बौद्ध धर्म के ग्रन्थों में भी ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनके आधार पर अश्वघोष, सम्राट कनिष्क के समकालीन सिद्ध होते हैं। चीनी परम्परा के अनुसार सम्राट कनिष्क के द्वारा काश्मीर के कुण्डलव में आयोजित अनेक अन्तःसाक्ष्य भी अश्वघोष को कनिष्क का समकालीन सिद्ध करते हैं।

अश्वघोष कृत 'बुद्धचरित' का चीनी अनुवाद ईसा की पांचवीं शताब्दी का उपलब्ध होता है। इससे विदित होता है कि भारत में पर्याप्त रूपेण प्रचारित होने के बाद ही इसका चीनी अनुवाद हुआ होगा।

सम्राट अशोक का राज्यकाल ई.पू. 269 से 232 ई. पू. है, यह तथ्य पूर्णतः इतिहास-सिद्ध है। 'बुद्धचरित' के अन्त में अशोक का उल्लेख होने के कारण यह निश्चित होता है कि अश्वघोष अशोक के परवर्ती थे।

चीनी परम्परा अश्वघोष को कनिष्क का दीक्षा-गुरु मानने के पक्ष में है। अश्वघोष कृत 'अभिधर्मपिटक' की विभाषा नाम्नी एक व्याख्या भी प्राप्त होती है, जो कनिष्क के ही समय में रची गयी थी।

अश्वघोष रचित 'शारिपुत्रप्रकरण' के आधार पर प्रो0 ल्यूडर्स ने इसका रचनाकाल हुविष्क का शासनकाल स्वीकार किया है। हुविष्क के राज्यकाल में अश्वघोष की विद्यमानता ऐतिहासिक दृष्टि से अप्रमाणिक है। इनका राज्यारोहणकाल कनिष्क की मृत्यु के बीस वर्ष के बाद है। हुविष्क के प्राप्त सिक्कों पर कहीं भी बुद्ध का नाम नहीं मिलता, किन्तु कनिष्क के सिक्कों पर बुद्ध का नाम अंकित है। कनिष्क बौद्धधर्मावलम्बी थे और हुविष्क ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। अतः अश्वघोष का उनके दरबार में विद्यमान होना सिद्ध नहीं होता।

कालिदास तथा अश्वघोष की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि अश्वघोष कालिदास के परवर्ती थे। कालिदास की तिथि प्रथम शताब्दी ई. पू. स्वीकार करने से यह मानना पड़ता है कि दोनों रचनाओं में जो साम्य परिलक्षित होता है उससे कालिदास का ऋण अश्वघोष पर सिद्ध होता है। अश्वघोष के ऊपर कालिदास का प्रभूत प्रभाव पड़ा था, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि कालिदास ने कुमारसंभव और रघुवंश में जिन श्लोंकों को लिखा, उन्हीं का अनुकरण अश्वघोष ने बुद्धचरित में किया है। कालिदास ने विवाह के बाद प्रत्यागत शिव-पार्वती को देखने के लिए उत्सुक कैलास की ललनाओं का तथा स्वयम्वर के अनन्तर अज और इन्दुमती को देखने के लिए उत्सुक विदर्भ की रमणियों का क्रमशः कुमारसंभव तथा रघुवंश में जिन श्लोकों द्वारा वर्णन किया है, उन्हीं के भावों के माध्यम से अश्वघोष ने भी

राजकुमार सिद्धार्थ को देखने के लिए उत्सुक कपिलवस्तु की सुन्दरियों का वर्णन किया है। बुद्धचरित का निम्नश्लोक–

वातायनेभ्यस्तु विनिरूसृतानि परस्परायासितकुण्डलानि।

स्त्रीणां विरेजुर्मुखपंकजानि सक्तानि हर्म्येष्विव पंकजानि कुमारसंभव तथा रघुवंश के निम्नश्लोक–

तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तरा सान्द्रकुतूहलानाम्।

विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपत्रभरणा इवासन्। की प्रतिच्छाया है। उपर्युक्त श्लोकद्वय के तुलनात्मक अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि अश्वघोष कालिदास के ऋणी थे, क्योंकि जो मूल कवि होता है वह अपने सुन्दर भाव को अनेकत्र व्यक्त करता है। उस भाव का प्रचार–प्रसार चाहता है इसीलिए कालिदास ने कुमारसंभव और रघुवंश में अपने भाव को दुहराया है। परन्तु अश्वघोष ने कालिदास का अनुकरण किया है। अतः उन्होंने एक ही बार इस भाव को लिया है। फलतः अश्वघोष कालिदास से परवर्ती हैं।

व्यक्तित्त्व तथा कर्त्तव्य

संस्कृत के प्रथम बौद्ध महाकवि अश्वघोष के जीवनवृत्त से सम्बन्धित अत्यल्प विवरण ही प्राप्त है। 'सौन्दरनन्द' नामक महाकाव्य की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि इनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था तथा ये साकेत के निवासी थे। ये महाकवि के अतिरिक्त 'भदन्त', 'आचार्य' तथा 'महावादी' आदि उपाधियों से विभूषित थे। उनके काव्यों की अन्तरंग परीक्षा से ज्ञात होता है कि वे जाति से ब्राह्मण थे तथा वैदिक साहित्य, महाभारत–रामायण के मर्मज्ञ विद्वान् थे। उनका 'साकेतक' होना इस तथ्य का परिचायक है कि उन पर रामायण का व्यापक प्रभाव था।

सम्राट कनिष्क के राजकवि अश्वघोष बौद्ध धर्म के कट्टर अनुयायी थे। इनकी रचनाओं पर बौद्ध धर्म एवम् गौतम बुद्ध के उपदेशों का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। अश्वघोष ने धर्म का प्रसार करने के उद्देश्य से ही कविता लिखी थी। अपनी कविता के विषय में अश्वघोष की सुस्पष्ट उद्घोषणा है कि मुक्ति की चर्चा करने वाली यह कविता शान्ति के लिए है, विलास के लिए नहीं। काव्य–रूप में यह इसलिए लिखी गई है, ताकि अन्यमनस्क श्रोता को अपनी ओर आकृष्ट कर सके।

अश्वघोष बौद्ध-दर्शन-साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे। इनकी गणना उन कलाकारों की श्रेणी में की जाती है, जो कला की यवनिका के पीछे छिपकर अपनी मान्यताओं को प्रकाशित करते हैं। इन्होंने कविता के माध्यम से बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का विवेचन कर जनसाधारण के लिए सरलता तथा सरलतापूर्वक सुलभ एवम् आकर्षक बनाने का सफल प्रयास किया है। इनकी समस्त रचनाओं में बौद्धधर्म के सिद्धान्त प्रतिबिम्बित हुए हैं। भगवान बुद्ध के प्रति अपरिमित आस्था तथा अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता महाकवि अश्वघोष के व्यक्तित्त्व की अन्यतम विशेषता है। अश्वघोष कवि होने के साथ ही संगीत मर्मज्ञ भी थे। उन्होंने अपने विचारों को प्रभावशाली बनाने के लिए काव्य के अतिरिक्त गीतात्मकता को प्रमुख साधन बनाया।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी तथा संस्कृत के बहुश्रुत विद्वान् महाकवि अश्वघोष में शास्त्र और काव्य-सर्जन की समान प्रतिभा थी। उनके व्यक्तित्त्व में कवित्व तथा आचार्यत्व का मणिकांचन संयोग था। उन्होंने सहस्रसूची, महायानश्रद्धोत्पादशास्त्र तथा सूत्रलंकार अथवा कल्पनामण्डितिका नामक धर्म और दर्शन विषयों के अतिरिक्त शारिपुत्रप्रकरण नामक एक रूपक तथा बुद्धचरित तथा सौन्दरनन्द नामक दो महाकाव्यों की भी रचना की। इन रचनाओं में बुद्धचरित महाकवि अश्वघोष का कीर्तिस्तम्भ है। इसमें कवि ने तथागत के सात्त्विक जीवन का सरल और सरस वर्णन किया है। 'सौन्दरनन्द' अश्वघोषप्रणीत द्वितीय महाकाव्य है। इसमें भगवान बुद्ध के अनुज नन्द का चरित वर्णित है। इन रचनाओं के माध्यम से बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का विवेचन कर उन्हें जनसाधारण के लिए सुलभ कराना ही महाकवि अश्वघोष का मुख्य उद्देश्य था। इनकी समस्त रचनाओं में बौद्ध धर्म के सिद्धान्त सुस्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हैं। अश्वघोष प्रणीत महाकाव्यों में बुद्धचरित अपूर्ण तथा सौन्दरनन्द पूर्ण रूप में मूल संस्कृत में उपलब्ध है।

8

कालिदास

कालिदास संस्कृत भाषा के महान कवि और नाटककार थे। उन्होंने भारत की पौराणिक कथाओं और दर्शन को आधार बनाकर रचनाएं की और उनकी रचनाओं में भारतीय जीवन और दर्शन के विविध रूप और मूल तत्त्व निरूपित हैं। कालिदास अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण राष्ट्र की समग्र राष्ट्रीय चेतना को स्वर देने वाले कवि माने जाते हैं और कुछ विद्वान उन्हें राष्ट्रीय कवि का स्थान तक देते हैं।

अभिज्ञानशाकुंतलम् कालिदास की सबसे प्रसिद्ध रचना है। यह नाटक कुछ उन भारतीय साहित्यिक कृतियों में से है, जिनका सबसे पहले यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद हुआ था। यह पूरे विश्व साहित्य में अग्रगण्य रचना मानी जाती है। मेघदूतम् कालिदास की सर्वश्रेष्ठ रचना है, जिसमें कवि की कल्पनाशक्ति और अभिव्यंजनावादभावाभिव्यन्जना शक्ति अपने सर्वोत्कृष्ट स्तर पर है और प्रकृति के मानवीकरण का अद्‌भुत रखंडकाव्ये से खंडकाव्य में दिखता है।

कालिदास वैदर्भी रीति के कवि हैं और तदनुरूप वे अपनी अलंकार युक्त किन्तु सरल और मधुर भाषा के लिये विशेष रूप से जाने जाते हैं।

उनके प्रकृति वर्णन अद्वितीय हैं और विशेष रूप से अपनी उपमाओं के लिये जाने जाते हैं। साहित्य में औदार्य गुण के प्रति कालिदास का विशेष प्रेम है और उन्होंने अपने शृंगार रस प्रधान साहित्य में भी आदर्शवादी परंपरा और नैतिक मूल्यों का समुचित ध्यान रखा है।

कालिदास के परवर्ती कवि बाणभट्ट ने उनकी सूक्तियों की विशेष रूप से प्रशंसा की है।

समय

कालिदास किस काल में हुए और वे मूलत: किस स्थान के थे, इसमें काफी विवाद है। चूँकि, कालिदास ने द्वितीय शुंग शासक अग्निमित्र को नायक बनाकर मालविकाग्निमित्रम् नाटक लिखा और अग्निमित्र ने 170 ईसापूर्व में शासन किया था, अत: कालिदास के समय की एक सीमा निर्धारित हो जाती है कि वे इससे पहले नहीं हुए हो सकते। छठीं सदी ईसवी में बाणभट्ट ने अपनी रचना हर्षचरितम् में कालिदास का उल्लेख किया है तथा इसी काल के पुलकेशिन द्वितीय के एहोल अभिलेख में कालिदास का जिक्र है, अत: वे इनके बाद के नहीं हो सकते। इस प्रकार कालिदास के प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व से छठी शताब्दी ईसवी के मध्य होना तय है। दुर्भाग्यवश इस समय सीमा के अन्दर वे कब हुए इस पर काफी मतभेद हैं। विद्वानों में (i) द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व का मत (ii) प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व का मत (iii) तृतीय शताब्दी ईसवी का मत (iv) चतुर्थ शताब्दी ईसवी का मत (v) पाँचवी शताब्दी ईसवी का मत, तथा (vi) छठीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का मत प्रचलित थे। इनमें ज्यादातर खण्डित हो चुके हैं या उन्हें मानने वाले इक्के दुक्के लोग हैं, किन्तु मुख्य संघर्ष 'प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व का मत और 'चतुर्थ शताब्दी ईसवी का मत' में है।

प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व का मत

परम्परा के अनुसार कालिदास उज्जयिनी के उन राजा विक्रमादित्य के समकालीन हैं, जिन्होंने ईसा से 57 वर्ष पूर्व विक्रम संवत् चलाया। विक्रमोर्वशीय के नायक पुरुरवा के नाम का विक्रम में परिवर्तन से इस तर्क को बल मिलता है कि कालिदास उज्जयनी के राजा विक्रमादित्य के राजदरबारी कवि थे। इन्हें विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक माना जाता है।

चतुर्थ शताब्दी ईसवी का मत

प्रो. कीथ और अन्य इतिहासकार कालिदास को गुप्त शासक चंद्रगुप्त विक्रमादित्य और उनके उत्तराधिकारी कुमारगुप्त से जोड़ते हैं, जिनका शासनकाल

चौथी शताब्दी में था। ऐसा माना जाता है कि चंद्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य की उपाधि ली और उनके शासनकाल को स्वर्णयुग माना जाता है।

विवाद और पक्ष-प्रतिपक्ष

कालिदास ने शुंग राजाओं के छोड़कर अपनी रचनाओं में अपने आश्रयदाता या किसी साम्राज्य का उल्लेख नहीं किया। सच्चाई तो यह है कि उन्होंने पुरुरवा और उर्वशी पर आधारित अपने नाटक का नाम विक्रमोर्वशीयम् रखा। कालिदास ने किसी गुप्त शासक का उल्लेख नहीं किया। विक्रमादित्य नाम के कई शासक हुए, संभव है कि कालिदास इनमें से किसी एक के दरबार में कवि रहे हों। अधिकांश विद्वानों का मानना है कि कालिदास शुंग वंश के शासनकाल में थे, जिनका शासनकाल 100 सदी ईसापूर्व था।

अग्निमित्र, जो मालविकाग्निमित्र नाटक का नायक है, कोई सुविख्यता राजा नहीं था, इसीलिए कालिदास ने उसे विशिष्टता प्रदान नहीं की। उनका काल ईसा से दो शताब्दी पूर्व का है और विदिशा उसकी राजधानी थी। कालिदास के द्वारा इस कथा के चुनाव और मेघदूत में एक प्रसिद्ध राजा की राजधानी के रूप में उसके उल्लेख से यह निष्कर्ष निकलता है कि कालिदास अग्निमित्र के समकालीन थे।

यह स्पष्ट है कि कालिदास का उत्कर्ष अग्निमित्र के बाद (150 ई. पू.) और 634 ई. पूर्व तक रहा है, जो कि प्रसिद्ध ऐहोल के शिलालेख की तिथि है, जिसमें कालिदास का महान कवि के रूप में उल्लेख है। यदि इस मान्यता को स्वीकार कर लिया जाए कि माण्डा की कविताओं या 473 ई. के शिलालेख में कालिदास के लेखन की जानकारी का उल्लेख है, तो उनका काल चौथी शताब्दी के अन्त के बाद का नहीं हो सकता।

अश्वघोष के बुद्धचरित और कालिदास की कृतियों में समानताएं हैं। यदि अश्वघोष कालिदास के ऋणी हैं तो कालिदास का काल प्रथम शताब्दी ई. से पूर्व का है और यदि कालिदास अश्वघोष के ऋणी हैं तो कालिदास का काल ईसा की प्रथम शताब्दी के बाद ठहरेगा।

हम कोई भी तिथि स्वीकार करें, वह हमारा उचित अनुमान भर है और इससे अधिक कुछ नहीं।

जन्म स्थान

कालिदास के जन्मस्थान के बारे में भी विवाद है। मेघदूतम् में उज्जैन के प्रति उनकी विशेष प्रेम को देखते हुए कुछ लोग उन्हें उज्जैन का निवासी मानते हैं।

साहित्यकारों ने ये भी सिद्ध करने का प्रयास किया है कि कालिदास का जन्म उत्तराखंड के रूद्रप्रयाग जिले के कविल्ठा गांव में हुआ था। कालिदास ने यहीं अपनी प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण की थी और यहीं पर उन्होंने मेघदूत, कुमारसंभव और रघुवंश जैसे–महाकाव्यों की रचना की थी। कविल्ठा चारधाम यात्र मार्ग में गुप्तकाशी में स्थित है। गुप्तकाशी से कालीमठ सिद्धपीठ वाले रास्ते में कालीमठ मंदिर से चार किलोमीटर आगे कविल्ठा गांव स्थित है। कविल्ठा में सरकार ने कालिदास की प्रतिमा स्थापित कर एक सभागार का भी निर्माण करवाया है, जहां पर हर साल जून माह में तीन दिनों तक गोष्ठी का आयोजन होता है, जिसमें देशभर के विद्वान भाग लेते हैं।

कालिदास के प्रवास के कुछ साक्ष्य बिहार के मधुबनी जिला के उच्चौठ में भी मिलते हैं। कहा जाता है विद्योतमा (कालिदास की पत्नी) से शास्त्रार्थ में पराजय के बाद कालिदास यहीं गुरुकुल में रुके। कालिदास को यहीं उच्चौठ भगवती से ज्ञान का वरदान मिला। यहां आज भी कालिदास का डीह है। यहाँ की मिट्टी से बच्चों के प्रथम अक्षर लिखने की परंपरा आज भी यहाँ प्रचलित है।

कुछ विद्वानों ने तो उन्हें बंगाल और उड़ीसा का भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। कहते हैं कि कालिदास की श्रीलंका में हत्या कर दी गई थी, लेकिन विद्वान इसे भी कपोल–कल्पित मानते हैं।

जीवन

कथाओं और किंवदंतियों के अनुसार कालिदास शारीरिक रूप से बहुत सुंदर थे और विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्नों में एक थे। कहा जाता है कि प्रारंभिक जीवन में कालिदास अनपढ़ और मूर्ख थे।

कालिदास का विवाह विद्योत्तमा नाम की राजकुमारी से हुआ। ऐसा कहा जाता है कि विद्योत्तमा ने प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई उसे शास्त्रार्थ में हरा देगा, वह उसी के साथ विवाह करेगी। जब विद्योत्तमा ने शास्त्रार्थ में सभी विद्वानों को

हरा दिया तो हार को अपमान समझकर कुछ विद्वानों ने बदला लेने के लिए विद्योत्तमा का विवाह महामूर्ख व्यक्ति के साथ कराने का निश्चय किया। चलते चलते उन्हें एक वृक्ष दिखाई दिया जहां पर एक व्यक्ति जिस डाल पर बैठा था, उसी को काट रहा था। उन्होंने सोचा कि इससे बड़ा मूर्ख तो कोई मिलेगा ही नहीं। उन्होंने उसे राजकुमारी से विवाह का प्रलोभन देकर नीचे उतारा और कहा– 'मौन धारण कर लो और जो हम कहेंगे बस वही करना'। उन लोगों ने स्वांग भेष बना कर विद्योत्तमा के सामने प्रस्तुत किया कि हमारे गुरु आप से शास्त्रार्थ करने के लिए आए है, परंतु अभी मौनव्रती हैं, इसलिए ये हाथों के संकेत से उत्तर देंगे। इनके संकेतों को समझ कर हम वाणी में आपको उसका उत्तर देंगे। शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ। विद्योत्तमा मौन शब्दावली में गूढ़ प्रश्न पूछती थी, जिसे कालिदास अपनी बुद्धि से मौन संकेतों से ही जवाब दे देते थे। प्रथम प्रश्न के रूप में विद्योत्तमा ने संकेत से एक उंगली दिखाई कि ब्रह्म एक है, परन्तु कालिदास ने समझा कि ये राजकुमारी मेरी एक आंख फोड़ना चाहती है। क्रोध में उन्होंने दो अंगुलियों का संकेत इस भाव से किया कि तू मेरी एक आंख फोड़ेगी तो मैं तेरी दोनों आंखें फोड़ दूंगा, लेकिन कपटियों ने उनके संकेत को कुछ इस तरह समझाया कि आप कह रही हैं कि ब्रह्म एक है, लेकिन हमारे गुरु कहना चाह रहे हैं कि उस एक ब्रह्म को सिद्ध करने के लिए दूसरे (जगत्) की सहायता लेनी होती है। अकेला ब्रह्म स्वयं को सिद्ध नहीं कर सकता। राज कुमारी ने दूसरे प्रश्न के रूप में खुला हाथ दिखाया कि तत्त्व पांच है। तो कालिदास को लगा कि यह थप्पड़ मारने की धमकी दे रही है। उसके जवाब में कालिदास ने घूंसा दिखाया कि तू यदि मुझे गाल पर थप्पड़ मारेगी, मैं घूंसा मार कर तेरा चेहरा बिगाड़ दूंगा। कपटियों ने समझाया कि गुरु कहना चाह रहे हैं कि भले ही आप कह रही हो कि पांच तत्त्व अलग-अलग हैं पृथ्वी, जल, आकाश, वायु एवं अग्नि। परंतु यह तत्त्व प्रथक-प्रथक् रूप में कोई विशिष्ट कार्य संपन्न नहीं कर सकते, अपितु आपस में मिलकर एक होकर उत्तम मनुष्य शरीर का रूप ले लेते हैं, जो कि ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इस प्रकार प्रश्नोत्तर से अंत में विद्योत्तमा अपनी हार स्वीकार कर लेती है। फिर शर्त के अनुसार कालिदास और विद्योत्तमा का विवाह होता है। विवाह के पश्चात कालिदास विद्योत्तमा को लेकर अपनी कुटिया में आ जाते हैं और प्रथम रात्रि को ही जब दोनों एक साथ होते हैं तो उसी समय ऊंट का स्वर सुनाई देता है। विद्योत्तमा संस्कृत में पूछती है 'किमेतत्' परंतु कालिदास संस्कृत जानते नहीं थे, इसीलिए

उनके मुंह से निकल गया 'ऊट्र'। उस समय विद्योत्तमा को पता चल जाता है कि कालिदास अनपढ़ हैं। उसने कालिदास को धिक्कारा और यह कह कर घर से निकाल दिया कि सच्चे विद्वान् बने बिना घर वापिस नहीं आना। कालिदास ने सच्चे मन से काली देवी की आराधना की और उनके आशीर्वाद से वे ज्ञानी और धनवान बन गए। ज्ञान प्राप्ति के बाद जब वे घर लौटे तो उन्होंने दरवाजा खटखटा कर कहा - कपाटम् उद्घाट्य सुन्दरि! (दरवाजा खोलो, सुन्दरी)। विद्योत्तमा ने चकित होकर कहा -- अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः (कोई विद्वान लगता है)।

इस प्रकार, इस किम्वदन्ती के अनुसार, कालिदास ने विद्योत्तमा को अपना पथप्रदर्शक गुरु माना और उसके इस वाक्य को उन्होंने अपने काव्यों में भी जगह दी। कुमारसंभवम् का प्रारंभ होता है- अस्त्युत्तरस्याम् दिशि से, मेघदूतम् का पहला शब्द है- कश्चित्कांता और रघुवंशम् की शुरुआत होती है- वागार्थविव3 से।

रचनाएं

छोटी-बड़ी कुल लगभग चालीस रचनाएँ हैं, जिन्हें अलग-अलग विद्वानों ने कालिदास द्वारा रचित सिद्ध करने का प्रयास किया है। इनमें से मात्र सात ही ऐसी हैं, जो निर्विवाद रूप से कालिदासकृत मानि जाती हैं– तीन नाटक (रूपक)– अभिज्ञान शाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् और मालविकाग्निमित्रम्य दो महाकाव्यः रघुवंशम् और कुमारसंभवम्य और दो खण्डकाव्यः मेघदूतम् और ऋतुसंहार। इनमें भी ऋतुसंहार को प्रो. कीथ संदेह के साथ कालिदास की रचना स्वीकार करते हैं।

नाटक

मालविकाग्निमित्रम् कालिदास की पहली रचना है, जिसमें राजा अग्निमित्र की कहानी है। अग्निमित्र एक निर्वासित नौकर की बेटी मालविका के चित्र से प्रेम करने लगता है। जब अग्निमित्र की पत्नी को इस बात का पता चलता है तो वह मालविका को जेल में डलवा देती है। मगर संयोग से मालविका राजकुमारी साबित होती है और उसके प्रेम-संबंध को स्वीकार कर लिया जाता है।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् कालिदास की दूसरी रचना है, जो उनकी जगतप्रसिद्धि का कारण बना। इस नाटक का अनुवाद अंग्रेजी और जर्मन के अलावा दुनिया के अनेक भाषाओं में हुआ है। इसमें राजा दुष्यंत की कहानी है, जो वन में एक परित्यक्त ऋषि पुत्री शकुन्तला (विश्वामित्र और मेनका की बेटी) से प्रेम करने लगता है। दोनों जंगल में गंधर्व विवाह कर लेते हैं। राजा दुष्यंत अपनी राजधानी लौट आते हैं। इसी बीच ऋषि दुर्वासा शकुंतला को शाप दे देते हैं कि जिसके वियोग में उसने ऋषि का अपमान किया वही उसे भूल जाएगा। काफी क्षमाप्रार्थना के बाद ऋषि ने शाप को थोड़ा नरम करते हुए कहा कि राजा की अंगूठी उन्हें दिखाते ही सब कुछ याद आ जाएगा, लेकिन राजधानी जाते हुए रास्ते में वह अंगूठी खो जाती है। स्थिति तब और गंभीर हो गई जब शकुंतला को पता चला कि वह गर्भवती है। शकुंतला लाख गिड़गिड़ाई लेकिन राजा ने उसे पहचानने से इनकार कर दिया। जब एक मछुआरे ने वह अंगूठी दिखायी तो राजा को सब कुछ याद आया और राजा ने शकुंतला को अपना लिया। शकुंतला शृंगार रस से भरे सुंदर काव्यों का एक अनुपम नाटक है। कहा जाता है काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला (कविता के अनेक रूपों में अगर सबसे सुन्दर नाटक है तो नाटकों में सबसे अनुपम शकुन्तला है।)

विक्रमोर्वशीयम् एक रहस्यों भरा नाटक है। इसमें पुरूरवा इंद्रलोक की अप्सरा उर्वशी से प्रेम करने लगते हैं। पुरूरवा के प्रेम को देखकर उर्वशी भी उनसे प्रेम करने लगती है। इंद्र की सभा में जब उर्वशी नृत्य करने जाती है तो पुरूरवा से प्रेम के कारण वह वहां अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाती है। इससे इंद्र गुस्से में उसे शापित कर धरती पर भेज देते हैं। हालांकि, उसका प्रेमी अगर उससे होने वाले पुत्र को देख ले तो वह फिर स्वर्ग लौट सकेगी। विक्रमोर्वशीयम् काव्यगत सौंदर्य और शिल्प से भरपूर है।

महाकाव्य

कुमारसंभवम् उनके महाकाव्यों के नाम है। रघुवंशम् में सम्पूर्ण रघुवंश के राजाओं की गाथाएँ हैं, तो कुमारसंभवम् में शिव-पार्वती की प्रेमकथा और कार्तिकेय के जन्म की कहानी है।

रघुवंशम् में कालिदास ने रघुकुल के राजाओं का वर्णन किया है।

खण्डकाव्य

मेघदूतम् एक गीतिकाव्य है, जिसमें यक्ष द्वारा मेघ से सन्देश ले जाने की प्रार्थना और उसे दूत बना कर अपनी प्रिय के पास भेजने का वर्णन है। मेघदूत के दो भाग हैं – पूर्वमेघ एवं उत्तरमेघ।

ऋतुसंहारम् में सभी ऋतुओं में प्रकृति के विभिन्न रूपों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

अन्य रचनाएँ

इनके अलावा कई छिटपुट रचनाओं का श्रेय कालिदास को दिया जाता है, लेकिन विद्वानों का मत है कि ये रचनाएं अन्य कवियों ने कालिदास के नाम से की। नाटककार और कवि के अलावा कालिदास ज्योतिष के भी विशेषज्ञ माने जाते हैं। उत्तर कालामृतम् नामक ज्योतिष पुस्तिका की रचना का श्रेय कालिदास को दिया जाता है। ऐसा माना जाता है कि काली देवी की पूजा से उन्हें ज्योतिष का ज्ञान मिला। इस पुस्तिका में की गई भविष्यवाणी सत्य साबित हुई।

श्रुतबोधम्
शृंगार तिलकम्
शृंगार रसाशतम्
सेतुकाव्यम्
पुष्पबाण विलासम्
श्यामा दंडकम्
ज्योतिर्विद्याभरणम्
काव्य सौन्दर्य

कालिदास को कविकुलगुरु, कनिष्ठिकाधिष्ठित और कविताकामिनीविलास जैसी प्रशंसात्मक उपाधियाँ प्रदान की गयी हैं, जो उनके काव्यगत विशिष्टताओं से अभिभूत होकर ही दी गयी हैं। कालिदास के काव्य की विशिष्टताओं का वर्णन निम्नवत किया जा सकता है–

भाषागत विशिष्टताएँ

कालिदास वैदर्भी रीति के कवि हैं और उन्होंने प्रसाद गुण से पूर्ण ललित शब्दयोजना का प्रयोग किया है। प्रसाद गुण का लक्षण है – 'जो गुण मन में वैसे

ही व्याप्त हो जाये जैसे–सूखी ईंधन की लकड़ी में अग्नि सहसा प्रज्वलित हो उठती है' और कालिदास की भाषा की यही विशेषता है।

कालिदास की भाषा मधुर नाद सुन्दरी से युक्त है और समासों का अल्पप्रयोग, पदों का समुचित स्थान पर निवेश, शब्दालंकारों का स्वाभाविक प्रयोग इत्यादि गुणों के कारण उसमें प्रवाह और प्रांजलता विद्यमान है।

अलंकार योजना

कालिदास ने शब्दालंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया है और उन्हें उपमा अलंकार के प्रयोग में सिद्धहस्त और उनकी उपमाओं को श्रेष्ठ माना जाता है। उदहारण के लिये:

संचारिणी दीपशिखेव रात्रै यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।।

अर्थात् स्वयंवर में बारी-बारी से प्रत्येक राजा के सामने गमन करती हुई इन्दुमती राजाओं के सामने से चलती हुई दीपशिखा की तरह लग रही थी, जिसके आगे बढ़ जाने पर राजाओं का मुख विवर्ण (अस्वीकृत कर दिए जाने से अंधकारमय, मलिन) हो जाता था।

अभिव्यंजना

कालिदास की कविता की प्रमुख विशेषता है कि वह चित्रों के निर्माण में सब कुछ न कह कर भी अभिव्यंजना द्वारा पूरा चित्र खींच देते हैं। जैसे:

एवं वादिनि देवर्शौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीला कमल पत्रणि गणयामास पार्वती।।

अर्थात् देवर्षि के द्वारा ऐसी (पार्वती के विवाह प्रस्ताव की) बात करने पर, पिता के समीप बैठी पार्वती ने सिर झुका कर हाथ में लिये कमल की पंखुड़ियों को गिनना शुरू कर दिया।

कालिदास जी की रचनाओं की खास बातें

कालिदास जी अपनी रचनाओं में अलंकार युक्त, सरल और मधुर भाषा का इस्तेमाल करते थे। अपनी रचनाओं में शृंगार रस का भी बखूबी वर्णन किया है। कालिदास जी ने अपनी रचनाओं में ऋतुओं की भी व्याख्या की है, जो कि सराहनीय है। कालिदास जी के साहित्य में संगीत प्रमुख अंग रहा। संगीत के

माध्यम से कवि कालिदास ने अपनी रचनाओं में प्रकाश डाला। कालिदास जी अपनी रचनाओं में आदर्शवादी परंपरा और नैतिक मूल्यों का भी ध्यान रखते थे।

आधुनिककाल में कालिदास

कूडियट्टम् में संस्कृत आधारित नाटकों का एक रंगमंच है, जहां भास के नाटक खेले जाते हैं। महान कूडियट्टम कलाकार और नाट्य शास्त्र के विद्वान स्वर्गीय नाट्याचार्य विदुषकरत्तनम पद्मश्री गुरू मणि माधव चक्यार ने कालिदास के नाटकों के मंचन की शुरूआत की। कालिदास को लोकप्रिय बनाने में दक्षिण भारतीय भाषाओं के फिल्मों का भी काफी योगदान है। कन्नड़ भाषा की फिल्मों कविरत्न कालिदास और महाकवि कालिदास ने कालिदास के जीवन को काफी लोकप्रिय बनाया। इन फिल्मों में स्पेशल इफेक्ट और संगीत का बखूबी उपयोग किया गया था। वी शांताराम ने शकुंतला पर आधारित फिल्म बनायी थी। ये फिल्म इतनी प्रभावशाली थी कि इस पर आधारित अनेक भाषाओं में कई फिल्में बनाई गई।

हिन्दी लेखक मोहन राकेश ने कालिदास के जीवन पर एक नाटक आषाढ़ का एक दिन की रचना की, जो कालिदास के संघर्षशील जीवन के विभिन्न पहलुओं को दिखाता है। 1976 में सुरेंद्र वर्मा ने एक नाटक लिखा, जिसमें इस बात का जिक्र किया गया है कि पार्वती के शाप के कारण कालिदास कुमारसंभव को पूरा नहीं कर पाए थे। शिव और पार्वती के गार्हस्थ जीवन का अश्लीलतापूर्वक वर्णन करने के लिए पार्वती ने उन्हें यह शाप दिया था। इस नाटक में कालिदास को चंद्रगुप्त की अदालत का सामना करना पड़ा, जहां पंडितों और नैतिकतावादियों ने उनपर अनेक आरोप लगाए। इस नाटक में न सिर्फ एक लेखक के संघर्षशील जीवन को दिखाया गया है, बल्कि लेखक की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के महत्व को भी रेखांकित किया गया है।

अस्ति कश्चित वागर्थीयम् नाम से डॉ. कृष्ण कुमार ने 1984 में एक नाटक लिखा, यह नाटक कालिदास के विवाह की लोकप्रिय कथा पर आधारित है। इस कथा के अनुसार, कालिदास पेड़ की उसी टहनी को काट रहे होते हैं, जिस पर वे बैठे थे। विद्योत्तम से अपमानित दो विद्वानों ने उसकी शादी इसी कालिदास के करा दी। जब उसे ठगे जाने का अहसास होता है, तो वे कालिदास को ठुकरा देती है। साथ ही, विद्योत्तमा ने ये भी कहा कि अगर वे विद्या और प्रसिद्धि अर्जित कर लौटते हैं तो वह उन्हें स्वीकार कर लेगी। जब कालिदास

विद्या और प्रसिद्धि अर्जित कर लौटे तो सही रास्ता दिखाने के लिए कालिदास ने उन्हें पत्नी न मानकर गुरू मान लिया।

गाथाएँ

कालिदास और दंडी में कौन श्रेष्ठ कवि थे, इस सवाल को दोनों ने माता सरस्वती के सामने रखा। सरस्वती ने जवाब दिया, दंडी। दु:खी कालिदास ने पूछा, 'तो माँ मैं कुछ भी नहीं'? माता ने जवाब दिया, त्वमेवाहं, यानी तुम और मैं दोनों एक जैसे हैं।

माघ (कवि)

माघ, मारवाड़ के प्राचीनतम महाकाव्य 'शिशुपालवध' के रचियता थे। 'माघ' का जन्म भीन-माल के एक प्रतिष्ठित धनी श्रीमाली ब्राह्मण-कुल में हुआ था। उनकी पत्नी का नाम विद्यावती था। वे सर्वश्रेष्ठ संस्कृतमहाकवियों की त्रयी (माघ, भारवि, कालिदास) में अन्यतम हैं। उन्होंने शिशुपाल वध नामक केवल एक ही महाकाव्य लिखा। इस महाकाव्य में श्रीकृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चेदिनरेश शिशुपाल के वध का सांगोपांग वर्णन है। उपमा, अर्थगौरव तथा पदलालित्य - इन तीन गुणों का सुभग सह-अस्तित्त्व माघ के कमनीय काव्य में मिलता है, अत: 'माघे सन्ति त्रयो गुणा:' उनके बारे में सुप्रसिद्ध है।

निरूपण

माघ को संस्कृत आलोचकों व विद्वानों द्वारा प्राय: एक प्रकाण्ड सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ विद्वान् माना जाता है। दर्शनशास्त्र, संगीतशास्त्र तथा व्याकरणशास्त्र में उनकी विद्वत्ता थी। उनका पाण्डित्य एकांगी नहीं, प्रत्युत सर्वगामी था। अतएव उन्हें 'पण्डित-कवि' भी कहा गया है। महाकवि भारवि द्वारा प्रवर्तित 'अलंकृत शैली' का पूर्ण विकसित स्वरुप माघ के महाकाव्य 'शिशुपालवध' में प्राप्त होता है, जिसका प्रभाव बाद के कवियों पर बहुत ही अधिक पड़ा। उनके 'शिशुपालवध' के प्रत्येक पक्ष की विशेषता का बहुत गहरा साहित्यिक अध्ययन संस्कृत विद्वानों व शिक्षाविदों द्वारा किया गया है।

उनके बारे में पं. बलदेव उपाध्याय ने कहा है -अलंकृत महाकाव्य की यह आदर्श कल्पना महाकवि माघ का संस्कृतसाहित्य को अविस्मरणीय योगदान

है, जिसका अनुसरण तथा परिबृहण कर हमारा काव्य साहित्य समृद्ध, सम्पन्न तथा सुसंस्कृत हुआ है।

माघ की प्रशंशा में कहा गया है–

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।

दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।।

(कालिदास उपमा में, भारवि अर्थगौरव में, और दण्डी पदलालित्य में बेजोड़ हैं। लेकिन माघ में ये तीनों गुण हैं।)

घंटा माघ– शिशुपालवध में रेवतक पर्वत की हाथी से और हाथी के बंधे घंटे की तुलना नहीं, बल्कि रेवतक पर्वत के दोनो ओर जो सूर्य और चन्द्रमा हैं उसकी उपमा स्वर्ण और रजत से निर्मित घंटे से की गई है, अतः माघ को घंटा माघ कहा जाता है।

❐❐❐